प्रकाशक : भारती साहित्य सदन
: ९/१ कनॉट सरकस
नई दिल्ली-१

प्रथम संस्करण १९६१

मूल्य आठ रुपये

आवरण शिल्पी : पाल बन्धु

मुद्रक रामस्वरूप शर्मा
: राष्ट्र भारती प्रेस
: २१४१/४२ कूचा चेलान
: दिल्ली-६

धारों एवं परम्पराओं के विषय में वे भ्रांति फैलाने वाले हैं। स्वामी जी के संकेत मात्र से कई विद्वानों ने इतिहास पर भारतीय ढंग से प्रकाश डालने का यत्न किया है। उनमें से श्री भगवद्दत्त दयानन्द महाविद्यालय के भूतपूर्व अनुसन्धानाध्यक्ष एक हैं। हमने भी इनके कार्य से वर्तमान पुस्तक (इतिहास में भारतीय परम्पराएँ) के संकलन में भारी सहायता ली है। दूसरे हैं पंडित रघुनन्दन शर्मा साहित्य भूषण। इनकी पुस्तक 'वैदिक सम्पत्ति' से भी हमने प्रेरणा और सहायता ली है। कई अन्य लेखक भी हैं जो इस ओर ध्यान कर रहे हैं। वे भी भारतीय इतिहास को भारतीय आधारों पर संकलन कर रहे हैं।

मेरा यह प्रयास न तो एक इतिहास की पुस्तक है, न ही यह इतिहास में खोज का परिणाम है। यह अन्य खोज करने वालों के प्रयासों से अपनी समझ में आये परिणाम हैं। उनमें से दो विद्वानों के नाम मैंने दिये हैं। इनके अतिरिक्त मैंने रामायण और महाभारत ग्रंथों से भी भरपूर सहायता ली है। यद्यपि स्वामी दयानन्द के ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश से भी मुझे सहायता मिली है।

इन ग्रंथों से मैंने अपने निकाले हुए परिणाम इस पुस्तक में लिखे हैं। ग्रंथ के आकार एवं मूल्य का ध्यान रखकर बहुत कुछ संक्षेप में ही लिखना पड़ा है। इस पर भी इतिहास के विषय में भारतीय परम्पराओं का एक चित्र खींचने का यत्न किया है। यह चित्र कितना स्पष्ट है यह तो इसको देखने वालों के ही अनुमान का विषय है।

यदि यहाँ पर अत्यन्त संक्षेप में लिख दें तो इस विषय में भारतीय परम्पराएँ ये हैं—(१) विकासवाद मान्य नहीं। (२) काल गणना में ज्योतिष-शास्त्र ही शुद्ध प्रमाण है। (३) वेदों में इतिहास नहीं। (४) पुराणादि ग्रंथ मूलतः इतिहास के ग्रंथ हैं केवल उनकी शैली और प्रयोजन भिन्न है। (५) वाल्मीकीय रामायण और महाभारत भारत का इतिहास समझने की अमूल्य निधि हैं। (६) इतिहास लिखने का प्रयोजन मनुष्य के मन में विकारों से उत्पन्न होने वाली घटनाओं का उल्लेख है। (७) इन विकारों में आदि सृष्टि से आज तक कोई अन्तर नहीं आया अतः इतिहास अपने को दुहराता रहता है। (८) इस कारण पूर्ण इतिहास न लिखकर इन विकारों के कारण युग प्रवर्तक घटनाओं का उल्लेख ही इतिहास माना गया है। (९) लाखों और करोड़ों वर्ष का इतिहास लिखने में वंशावलियाँ न देकर नामावलियाँ ही दी गई हैं। (१०) इतिहास को केवल विद्वानों का विषय न रखकर जन-साधारण के उपभोग की वस्तु बनाने के लिए इसको पुराणादि के रूप में रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इसमें उपमा इत्यादि अलंकार भरे पड़े हैं।

इन्हीं और इस प्रकार की परम्पराओं को विस्तार से लिखने के लिए इस पुस्तक को लिखा गया है।

यह आशा की जाती है कि इससे लोक-कल्याण होगा। विद्वान् मनीषियों से आग्रह है कि वे पुस्तक को पढ़कर अपनी सम्मति सुझाव अथवा इसमें आई भूलों को लिखने की कृपा करें।

अन्त में मैं उन विद्वानों और ऋषियों तथा महर्षियों का अत्यन्त धन्यवाद करता हूँ जिनके ग्रन्थों से मैंने अपनी इस पुस्तक में कुछ भी सहायता ली है। विशेष रूप से पंडित भगवद्दत्त की जिनके भारतवर्ष का बृहत् इतिहास" में से मैंने बहुत कुछ लिया है का मैं आभारी हूँ।

—गुरुदत्त

विषय-क्रम

•

प्रथम परिच्छेद

वर्तमान युग के इतिहासज्ञों का आधार

आज के तथाकथित इतिहासज्ञों ने इतिहास लिखने में इतनी धांधली मचा रखी है कि सत्य-असत्य में निर्णय करना भी कठिन हो रहा है। यह पाश्चमी योरुप के नास्तिकवाद और मिथ्याविज्ञानवाद के कारण है। इन दोनों की जड़ों में भी यहूदी ईसाई और इस्लाम की अयुक्तियुक्त जीवन-मीमांसा ही प्रतीत होती है।

यूनान और मिस्र की प्राचीन जीवन-मीमांसा का वेदवर्णित मीमांसा के साथ घना सम्बन्ध था। कालिडयन और बाबुल (Babylonian) सभ्यताएँ भी ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय सभ्यता एवं और भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित थीं। परन्तु यहूदियों ने इन सब—मध्य एशिया और पूर्वी योरुप की जातियों को पद-दलित कर उनके ज्ञान-विज्ञान उनकी जीवन-मीमांसा और उनकी संस्कृति को नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

यहूदी जाति जिस समय अपनी विजय पताका फहरा रही थी तब वह एक जाहिल थी। वह अपने उत्थान में अपनी अपेक्षा अधिक सभ्य तथा ज्ञान विज्ञान में उन्नत जातियों को पराजित कर-करके उनकी सभ्यता एवं उनकी संस्कृति को भी नष्ट कर बैठी।

यूनान मिस्र तथा इराक बाबुल (कॅल्डियन) सभ्यताओं का स्रोत भारतवर्ष का [illegible] था परन्तु [illegible] प्रभाव के कारण इन जातियों ने अपनी सभ्यताओं तथा ज्ञान विज्ञान का [illegible] के साथ सम्बन्ध [illegible] दिया और [illegible]। इन [illegible] ने [illegible] को [illegible] दिया। इसका परिणाम एक ओर तो यह हुआ कि इनकी उन्नति रुक गई और दूसरे [illegible] ज्ञान विज्ञान को [illegible] करने की भी क्षमता [illegible] है। [illegible]-विचार के [illegible] के साथ इनका [illegible] हो गया।

[illegible] तथ्य को स्पष्ट करने के लिए भारतवर्ष का [illegible]

किया जा सकता है। वेद आदि शास्त्रों में तथा प्राचीन स्मृतियों में भी यह कहीं नहीं लिखा कि ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य सन्तान ही ब्राह्मण क्षत्रिय इत्यादि होती हैं। वहाँ तो स्पष्ट लिखा है कि जब तक यज्ञोपवीत न मिले तब तक बालक अथवा बालिका द्विज नहीं होते। और यज्ञोपवीत गुरु देता है बच्चों की द्विज बनने में योग्यता देखकर। यह भी लिखा है कि ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य के क्या कर्म हैं? स्मृतिकार ने यहाँ तक लिखा दिया है कि इन कार्यों के न करने से ब्राह्मण काठ के हरिण के समान हो जाता है अथवा कर्मानुसार ब्राह्मण की सन्तान शूद्र और शूद्र की सन्तान ब्राह्मण बन जाती है।

परन्तु कालान्तर में कुछ ब्राह्मणों ने वेदों तथा स्मृतियों का सार महाभारत आदि ग्रन्थों में लिखने का यत्न किया और यह प्रचार करने का यत्न किया कि महाभारतादि ग्रन्थों को पढ़ने के उपरान्त वेदों को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। अनेक धर्म के ग्रन्थ पढ़ने की अपेक्षा केवल एक गीता पढ़ लेनी पर्याप्त है। परिणाम यह हुआ कि जनता और विद्वानों का वेदों से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया।

महाभारतादि ग्रन्थों में सत्य के प्रतिपादन के लिए लौकिक गाथाएँ लिखी हैं। प्रत्येक गाथा में एक बल-पात्र रहता है। कभी बल-पात्र में भी कुछ अच्छे गुण होते हैं परन्तु वह अपने अच्छे गुणों को भी बल-व्यवहार में सहायक बना देता है और पाठकों के लिए यह कठिनाई उत्पन्न हो जाती है कि वे उस पात्र के सत्य गुणों और दुर्गुणों में भेदभाव कर सकें।

जब विद्वान ही धर्म और सच्चाई के मूल स्रोत वेदों से विरक्त हुए तो उन गाथाओं को समझने वाले नहीं रहे। ब्राह्मण सन्तान भ्रष्ट आचार होने पर भी ब्राह्मण मानी जाने लगी किन्तु इतर वर्णों की सन्तान गुण कर्म में ब्राह्मण समान होने पर भी शूद्र ही रही और ब्राह्मणत्व का आदर प्राप्त नहीं कर सकी। यह रूढ़िवाद था।

ऐसा ही रूढ़िवाद उन सभ्यताओं में उत्पन्न हो गया जिनका सम्बन्ध अपने मूल स्रोत से टूट गया।

इस रूढ़िवाद के कारण इन राज्यों में अन्यायाचरण हुआ और इनके अन्यायाचरण से पीड़ित हो लोगों ने विद्रोह किया और विद्रोह में ये रूढ़िवादी सभ्य पराजित हुए। उनकी पराजय के साथ उनका ज्ञान-विज्ञान जो कुछ भी था नष्ट भ्रष्ट हो गया और उसके स्थान पर विद्रोहियों की सभ्यता तथा उनका ज्ञान-विज्ञान जो बहुत निम्न कोटि का था प्रचलित हो गया।

यूनान मिस्र इत्यादि देशों की सभ्यताएँ तो उच्चकोटि की थीं परन्तु

Willem Van Loon) अपनी (The Story of the Bible) 'बाईबल की कहानी' नामक पुस्तक में लिखते हैं—

In the begining however the particular Semitic tribe which later was to develop into the Jewish nation worshipped several divinities just as all their neighbours had done before them for countless ages. The stories of the creation however which we find in the Old Testament were written more than a thousand years after the death of Moses when the idea of One God had been accepted by the Jews as an absolutely established fact and when doubt of His Existence meant exile or death.

आरम्भ में उस विशेष कुटुम्ब में जो कालान्तर में यहूदी कौम बन गया अनेक देवी-देवताओं की पूजा होती थी। ठीक वैसी ही जैसी अन्य अनेक पड़ोसी कुटुम्बों में अनगिनत शताब्दियों से हो रही थी। सृष्टि निर्माण की कहानी जैसी हम पुरानी पुस्तक (Old Testament) में पढ़ते हैं मूसा से एक सहस्र वर्ष पीछे लिखी गयी थी।

उस समय यहूदियों में एकेश्वरवाद एक मान्य सिद्धान्त के रूप में स्वीकार हो चुका था। उस ईश्वर के होने में संदेह करने के अर्थ देश निर्वासन अथवा मृत्यु होता था।

इसके विपरीत सुकरात की एक उक्ति की ओर ध्यान देना लाभप्रद होगा। प्लेटो जो सुकरात का शिष्य था लिखता है—

सदाचार के अनुवर्तन (यम नियम के पालन) से सम्यक ज्ञान उत्पन्न होता है। यह ज्ञान साधारण मनुष्य में उत्पन्न होने वाले सामान्य ज्ञान से भिन्न होता है। सम्यकज्ञान उत्कृष्ट गुणयुक्त है। व्यापक विचारों से उसकी उत्पत्ति होती है।"

यही बात पूर्ण रूपेण भारतीय दर्शन शास्त्र भी लिखते हैं—

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा। श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्॥

योग दर्शन॥

यम नियम के पालन से जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह ऋतम्भरा कहलाती है और यह प्रज्ञा श्रोत्रादि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान से भिन्न परिणामों पर पहुँचाने वाली है।

और भी—सुकरात अपने एक शिष्य केबेस को कहता है—

the truth and the life: no man cometh unto the Father but by me
जोन १४—६

All that ever came before me are thieves and robbers.
जोन १ —८

अर्थात्—तुमको चिन्ता नहीं करनी चाहिए। तुम ईश्वर पर विश्वास रखो और मुझ पर भी विश्वास करो।

जीसस (ईसा) ने उसको कहा—मैं ही ठीक मार्ग हूँ। मैं ही सच्चाई हूँ और मैं ही जीवन हूँ। कोई व्यक्ति मेरे आश्रय बिना परमात्मा तक नहीं पहुँच सकता। जो मुझसे पहले आये चोर और डाकू थे।

जो मत-मतान्तर किसी सत्य मीमांसा पर टिके हुए नहीं वे ही अपने अनुयायियों की निष्ठा के आश्रय चलते हैं। निष्ठावान युक्ति से घबराते हैं और अपनी बात बलपूर्वक मनाने का यत्न करते हैं।

ईसाई धर्म की निष्ठा रोम के सैनिक संगठन से टकरा गई। निष्ठा के सम्मुख सैनिक संगठन तो चूर-चूर हो गया परन्तु एक निष्ठा दूसरी निष्ठा से टकराई जब इस्लाम का प्रादुर्भाव हुआ। यहाँ केवल निष्ठाओं का विरोध नहीं था प्रत्युत दोनों निष्ठाओं की पीठ पर तलवार का सामना भी था और निष्ठाओं के साथ शारीरिक प्रलोभनों में भी मुकाबिला था। इस कारण दोनों निष्ठाओं में अन्तिम निर्णय न हो पाया।

Gibbon describes the Mohammadon onslaught thus:—While the State was exhausted by the Persian War and the Church was distracted by the Nestorian and the Monophysite sects Mohammed with the sword in one hand and the Koran in the other erected his throne on the ruins of Christianity and of Rome

गिब्बन ने मुसलमानों के आक्रमण का इस प्रकार वर्णन किया है—'फारसियों से युद्ध के कारण राज्य दुर्बल पड़ गया था और ईसाई मत नैस्टोरियन और मानोफिसाइट फिरकों के कारण विक्षिप्त हो रहा था तब मुसलमानों ने एक हाथ मे तलवार और एक हाथ मे कुरआन लिये हुए ईसाई मत और रोम के खंडहरों पर अपना राज्य स्थापित कर लिया।

इस्लाम के विषय मे मिस्र की काहिरा यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर मुहम्मद अमुस्सा लिखते हैं

The ea l Muslim governments rarely allowed them

(Non Muslims) to occupy official posts other than those of accountants and tax-gatherers in which they excelled, They were rarely raised to influential or confidential posts or charged with any important mission or interest the entering of a Zimmi into Islam did not always enable him at first to enjoy all the rights and privileges of the Muslims. But to embrace Islam was a first step in liberating him from oppressive charges and humiliating regulations and traditions

प्रारम्भिक मुस्लिम शासन मुसलमानेतरों को कभी सरकारी पदवियों पर आसीन नहीं होने देते थे। केवल लेखा-जोखा रखने तथा कर प्राप्त करने का काम उनको दिया जाता था। इन कार्यों में वे बहुत योग्य होते थे। उनको कभी भी किसी प्रभावशाली अथवा विश्वसनीय पदवी पर नियुक्त नहीं किया जाता था। उनको किसी आवश्यक काम पर लगाया नहीं जाता था।

किसी गैर मुसलमान को इस्लाम स्वीकार करते ही तुरन्त उन सब अधिकारों और सुविधाओं को नहीं दिया जाता था जो मुसलमानों को प्राप्त होती थीं। परन्तु इस्लाम स्वीकार करना उन सब पीस देने वाले करों और अपमानजनक नियमों तथा व्यवहार से बचने के लिए प्रथम पग होता था।

एक और स्थान पर यही लेखक इसी पुस्तक में लिखता है—

But religious enthusiasm and the spirit of Jahad (religious war) did not attain in Christianity the same fervour as in the Muslim world.

—*Decisive Moments in the History of Islam Page. 98*

परन्तु जहाद (मजहबी युद्ध) के लिए मजहबी जोश जितना मुसलमानों में था उतना इसाईयों में नहीं था।

और भी When Abu Hafs landed in the Island (Crete) he orderd the ships to be burnt and when his troops protested he addressed them in the following words; What do you complain of ? I have brought you to a land flowing with milk and honey Here is your true country repose and forget the barren places of your native land.

"And our wives and children ?" said they His reply was, "your beautiful captives will supply the places of your

यह है हमारा अभिप्राय जब हम वर्तमान युग के इतिहास-लेखकों की धांधली का उल्लेख करते हैं। योरुप और अमेरिका में ईसाई धर्म का प्रचार है और इन देशों में सत्य इतिहास के मार्ग में बाइबल एक महान् बाधा रही है। इस पर भी राज्यबल और राज्य-प्रलोभनों की अवहेलना कर कुछ लेखक निर्भीकतापूर्वक अपना मत लिखते हैं। परन्तु मुसलमानी राज्यों में और कम्यूनिस्ट राज्यों में तो ऐसा सम्भव ही नहीं। वहाँ जब भी कोई लेखक कुछ ऐसा लिखता है जो वहाँ के राजनीतिक प्रभुओं को पसन्द नहीं वह लेख रह नहीं सकता और लेखक भी नहीं रह सकता।

भारत में इतिहास लेखन

यह धांधली केवल योरुप इस्लामी देशों तथा कम्यूनिस्ट देशों में ही नहीं चली प्रत्युत भारत में भी चली। मुसलमानों के काल में और अंग्रेजों के राज्य में यह धांधली चली थी और अब भी इस स्वराज्य के काल में चल रही है।

मुसलमानी राज्यकाल में भारत के प्राचीन ग्रन्थ जलाने का भरसक प्रयत्न किया गया। ग्रन्थ लिखने वालों को राज्य का प्रोत्साहन और शान्त वातावरण नहीं मिला। अपना राजनीतिक प्रभुत्व जमाने के लिए एक ओर तथा इस्लाम के प्रचार के लिए दूसरी ओर सात सौ वर्ष तक निरन्तर प्रयास जारी रहा। इस प्रयास का विरोध हिन्दू जो भारत के निवासी थे अपनी जान की बाजी लगाकर करते रहे। संघर्ष में शान्ति से बैठकर न तो ज्ञान-विज्ञान की ओर किसी का ध्यान जा सका और न ही इतिहास लिखने में। बहुत कठिनाई से प्राचीन साहित्य की केवल वे ही पुस्तकें सुरक्षित रखी जा सकीं जिनको हिन्दू विद्वान् हिन्दू समाज के अस्तित्व के लिए परमावश्यक मानते थे। यह सात सौ वर्ष का काल जाति की संस्कृति और धर्म के लिए अति कठिनाई का काल था। हिन्दू समाज ने यह दुस्तर सागर भी पार किया।

इसके उपरान्त अंग्रेजी राज्य आया। अंग्रेजों ने हिन्दू के मन पर आधिपत्य जमाने के लिए भारत की शिक्षा को अपने हाथ में ले कर मैकाले साहब की योजना चलाई। इस शिक्षा प्रणाली के लिए जहाँ साहित्य के अन्य अंगों को अपनी रुचि के अनुसार चलाने का प्रयास हुआ वहाँ इतिहास का विकृत करने के लिए भी यत्न किया गया। इसके साथ

ही अंग्रेजी भाषा अंग्रेजी साहित्य तथा उनके दृष्टिकोण से बनाया हुआ इतिहास पढ़ा विद्यार्थी तो सरकार का दामाद बन सब प्रकार की सुविधाओं को प्राप्त करने वाला बना और संस्कृत-साहित्य तथा भारतीय ढंग से लिखा इतिहास पढ़ने वाले के लिए अपमान निरादर और निर्धनता प्राप्त हुई। अतः जाति के श्रेष्ठ परिवारों के बालक सरकार के तथा योरपियन सभ्यता के भक्त बन गये।

अंग्रेजी सरकार, भारत जैसे विशाल देश को अपने अधीन रखने के लिए यहाँ के रहने वालों की मनोवृत्ति को बदलना आवश्यक समझती थी। उसने इसके लिए कई साधनों का प्रयोग किया। सरकार ईसाई पादरियों को सहायता दे देकर उनके द्वारा देश की बहुसंख्यक जाति के घटकों को जाति से विमुख करती रही। वे अंग्रेजी साहित्य कला तथा विज्ञान का प्रचार कर यहाँ के ज्ञान विज्ञान को अयुक्ति-संगत और निष्क्रिय सिद्ध करते रहे जाति की मान्यताओं को निरर्थक और हानिकारक बताते रहे इतिहास के विषय में ऐसी धारणाएँ उत्पन्न करते रहे जिससे जनता में यह सिद्ध हो सके कि यहाँ की मुख्य जाति आर्य इस देश में बाहर से आई है और यहाँ के मूल निवासी हैं भील गौंड एवं अन्य वनवासी जातियाँ।

इस देश को एक महाद्वीप का नाम देकर वे इसमें अनेक जातियों के बसे होने का प्रचार करते रहे। इस बात से इन्कार न कर सकने पर भी कि वेद संसार के साहित्य म सबसे पुरानी पुस्तक है उन्होंने यह प्रचार किया कि यह किस्से कहानियों की पुस्तकें हैं तथा अशिक्षित मन की कल्पनाओं और प्राकृतिक घटनाओं से भयभीत हो उनकी पूजा बनाने वाली पुस्तकें हैं। फिर ये पुस्तकें ईसा से दो-तीन सहस्र वर्ष से अधिक पुरानी नहीं हैं।

अंग्रेजी सरकार ने सब शिक्षा-केन्द्रों को अपने हाथ में लेकर उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों के मन में भारतीय धर्मशास्त्र आचार-विचार और परम्पराओं के लिए अश्रद्धा और अविश्वास उत्पन्न करने का यत्न किया।

अंग्रेज यह तो जानते थे कि इतना बड़ा देश सदा इंगलैण्ड जैसे दूरवर्ती देश के अधीन नहीं रहेगा। परन्तु वे यहाँ की जनता को ऐसा बना देना चाहते थे जो सदा इंगलैण्ड के आश्रय रहे और उनका सहायक रहे।

अंग्रेजों को अपने अनुमान से पहले ही यहाँ राजनीतिक स्वतंत्रता देनी पड़ गई। यहाँ की जनता में अपने राष्ट्र, संस्कृति और धर्म में श्रद्धा लोप होने से पूर्व ही उनको यहाँ से जाना पड़ गया। भारत में दो महायुद्धों के होने से इंग्लैण्ड अत्यन्त दुर्बल पड़ चुका था और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का दबाव

wives and then you will become fathers of a new generation."
Page 79

जब मुहम्मद बिन कासिम सिंध के तीर पर सेना लेकर उतरा तो उसने अपने जहाजों को आग लगा फूंक देने की आज्ञा दे दी। इस पर सेना ने आपत्ति की। उसने यह कहा 'क्या आपत्ति है तुम को ? मैं तुम को एक ऐसे देश में ले आया हूँ जहाँ दूध और मधु की नदियाँ बहती हैं। यह है तुम्हारा असली देश। लूट खसोटो और लूट खाओ अपनी बीरान मरु भूमि को।

सैनिकों ने पूछा और हमारी बीबियाँ तथा बच्चे ?

उसका उत्तर था तुम्हारी सुन्दर दासियाँ तुम्हारी पत्नियाँ होंगी और तुम एक नयी सन्तति के पिता होवे।

इस सब का अर्थ यह है कि एक भार धर्मनिष्ठा दूसरी ओर लूट में औरतें धन जमीन आदि का प्रलोभन तथा तीसरी ओर तलवार का प्रयोग' ये सब मिलकर इसाई संस्कृति का विरोध करने लगे थे। इसाई भी सत्ताधारी होने के कारण धन और राज्य में सुविधाओं के प्रलोभन देते थे। जहाँ-जहाँ बिना तलवार के इन प्रलोभनों और निष्ठा का मुकाबिला हुआ इस्लाम द्वारा दिये गए प्रलोभन और निष्ठा प्रबल सिद्ध हुए और वहाँ साथ में राज्य-बल लग गया वहाँ मुसलमानी राज्य हार गए।

निष्कर्ष यह है कि यहूदी इसाई और मुसलमान कोरी निष्ठा को लेकर तलवार के माध्यम अपनी अपनी दुंदुभी बजाते रहे हैं। इस अन्धेरगर्दी का विरोध करने के लिए युक्ति और विचार ने सिर उठाया। इस सिर उठाने को पुनरुद्धार (Renaissance) कहते हैं। यह ईसा की सोलहवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ और इस काल को रिनेसाँ का काल कहा जाता है। इसका प्रथम संघर्ष इसाई मत से हुआ। इससे पूर्व यहूदी मत एक राजनैतिक शक्ति के रूप में मिट चुका था। अतः इसके साथ संघर्ष का अवसर नहीं मिला।

यह रिनेसाँ जिसके कारण इसाई मत की जड़ें हिल गई प्रतीत होती थीं मुसलमानों द्वारा कुस्तुनतुनियाँ के विजय के उपरान्त वहाँ पर बैठे अध्ययन करते हुए विचारकों के भागकर योरुप में फैल जाने से आरम्भ हुआ था। इन विचारकों का आधार निरीश्वरवाद रहा है। वास्तव में उनका यह निरीश्वर वाद मुसलमान इसाई और यहूदियों का अयुक्ति-संगत ईश्वरवाद की तथा उनकी अंधनिष्ठा की प्रतिक्रिया ही था।

यह रिनेसाँ का काल अभी भी योरुप में चल रहा है। यह न तो इसाई धर्म को और न ही इस्लाम धर्म को पूर्णरूप से पराजित कर सका है। निरीश्वर

बाद मानव प्रकृति के प्रतिकूल होने से स्वतः इसाई धर्म का अथवा इस्लाम का विरोध कर नहीं सका। इसको भी अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए तलवार का आश्रय लेना पड़ा है। अंधविश्वास मानव के लिये अस्वाभाविक वस्तु है। इसी प्रकार निरीश्वरवाद भी मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है। विचार-विचार के संघर्ष में निरीश्वरवाद तो अंधनिष्ठा के सम्मुख भी टिक नहीं सका। अब इसने मनुष्य प्रकृति को ही बदलने के लिये राज्यों में बच्चों की शिक्षा को पूर्णरूप में अपने हाथ में लेकर बच्चों के संस्कार ही बदलने का प्रयास आरम्भ कर दिया है। ऐसे राज्यों ने अपना नाम Secular State रखा है। रिवैसी का पराकाष्ठा कम्यूनिस्ट देशों में हो रही है। इन सब राज्यों में जो सम्मुख है शिक्षा पूर्ण-रूपेण राज्य ने अपने हाथ में ले ली है। वे राज्य चाहते हैं कि कुछ ही काल में मानव मन से ईश्वर शब्द का लोप हो जाये।

शिक्षा केवल स्कूलों कालिजों और विश्वविद्यालयों में ही नहीं मिलती। इन संस्थाओं के अतिरिक्त स्थानों पर भी शिक्षा दी जाती है। वर्तमान युग में सामान्य-साहित्य समाचार-पत्र साहित्यिक-पत्रिकाएँ और पढ़ने वाले समाचार भी शिक्षा देते हैं। प्राचीन इतिहास भी इसमें भाग लेता है। इन नास्तिक राज्यों ने इन सब पर भी पूर्ण अधिकार जमा लिया है। वे केवल वही पत्रिकाएँ और साहित्य अपने देशों में चलने देते हैं जो उनके मापदंड से ठीक है। वे अन्य बहुत-सी बातों के साथ ईश्वरवाद की पुस्तकें साहित्य और इतिहास तथा समाचार भी अपने देश में घुसने नहीं देते। इस प्रकार मानव मन पर नास्तिकवाद का अधिपत्य जमाने का यत्न किया जा रहा है। अभी तक इसाई धर्म इस प्रकार के बलात्कार का विरोध करने में असफल सिद्ध हुआ है।

इतिहास विचार प्रोत्साहन में एक महान् साधन है। इन नास्तिक राज्यों ने विचार पर नियन्त्रण (Thought control) के लिये इतिहास की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करनी आरम्भ कर दी है।

जहाँ मुसलमान इतिहास में किसी प्रकार की भी इस्लाम तथा मुहम्मद साहब के विषय में आलोचना का विरोध करते हैं वहाँ इसाई अपने धर्म और राज्यबल से इतिहास में अपनी धर्म पुस्तक (Bible) में लिखी किसी बात का खंडन होने नहीं देते। मुसलमान तो अपनी बात छुरे भौंककर मनाते हैं और इसाई राज्य अपनी बात धन तथा राजनीतिक प्रभाव से स्वीकार कराना चाहते हैं। इनके विरोधी नास्तिक राज्यों (सेक्युलर स्टेट) वालों तो राज्यबल से अपने राज्यों में अपने मत की पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य कोई पुस्तक मीमांसा विज्ञान धर्म तथा इतिहास इत्यादि को चलने नहीं देते।

यह है हमारा अभिप्राय जब हम वर्तमान युग के इतिहास-लेखकों की चालबाजी का उल्लेख करते हैं। योरप और अमेरिका में ईसाई धर्म का प्रचार है और उन देशों में सत्य इतिहास के मार्ग में बाइबल एक महान् बाधा रही है। इस पर भी राज्यबल और राज्य प्रलोभनों की अवहेलना कर कुछ लेखक निर्भीकतापूर्वक अपना मत लिखते हैं। परन्तु मुसलमानी राज्यों में और कम्यूनिस्ट राज्यों में तो ऐसा सम्भव ही नहीं। वहाँ जब भी कोई लेखक कुछ ऐसा लिखता है जो वहाँ के राजनीतिक प्रमुखों को पसन्द नहीं वह लिख छप नहीं सकता और लेखक जी नहीं सकता।

भारत में इतिहास लेखन

यह चालबाजी केवल योरप इस्लामी देशों तथा कम्यूनिस्ट देशों में ही नहीं चली प्रत्युत भारत में भी चली। मुसलमानों के काल में और अंग्रेजों के राज्य में यह चालबाजी चली थी और अब भी इस स्वराज्य के काल में चल रही है।

मुसलमानी राज्यकाल में भारत के प्राचीन ग्रन्थ जलाने का भरसक प्रयत्न किया गया। ग्रन्थ लिखने वालों को राज्य का प्रोत्साहन और शान्त वातावरण नहीं मिला। अपना राजनीतिक प्रभुत्व जमाने के लिए एक ओर तथा इस्लाम के प्रचार के लिए दूसरी ओर, सात सौ वर्ष तक निरन्तर प्रयास जारी रहा। इस प्रयास का विरोध हिन्दू जो भारत के निवासी थे अपनी जान की बाजी लगाकर करते रहे। संघर्ष में शान्ति से बैठकर न तो ज्ञान-विज्ञान की ओर किसी का ध्यान जा सका और न ही इतिहास लिखने में। बहुत कठिनाई से प्राचीन साहित्य की केवल वे ही पुस्तकें सुरक्षित रखी जा सकीं जिनको हिन्दू विद्वान् हिन्दू समाज के अस्तित्व के लिए परमावश्यक मानते थे। यह सात सौ वर्ष का काल जाति की संस्कृति और धर्म के लिए अति कठिनाई का काल था। हिन्दू समाज ने यह दुस्तर सागर भी पार किया।

इसके उपरान्त अंग्रेजी राज्य आया। अंग्रेजों ने हिन्दू के मन पर आधिपत्य जमाने के लिए भारत की शिक्षा को अपने हाथ में ले कर मैकाले साहब की योजना चलाई। इस शिक्षा प्रणाली के लिए जहाँ साहित्य के ग्रन्थ ग्रंथों को अपनी रुचि के अनुसार बनाने का प्रयास हुआ वहाँ इतिहास को विकृत करने के लिए भी प्रयत्न किया गया। इसके साथ

ही अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी साहित्य तथा उसके दृष्टिकोण से बनाया हुआ इतिहास पढ़ा विद्यार्थी तो सरकार का दामाद बन सब प्रकार की सुविधाओं को प्राप्त करने वाला बना और संस्कृत-साहित्य तथा भारतीय ढंग से लिखा इतिहास पढ़ने वाले के लिए अपमान, निरादर और निर्धनता प्राप्त हुई। अतः जाति के श्रेष्ठ परिवारों के बालक सरकार के तथा योरुपियन सभ्यता के भक्त बन गये।

अंग्रेजी सरकार, भारत जैसे विशाल देश को अपने अधीन रखने के लिए यहाँ के रहने वालों की मनोवृत्ति को बदलना आवश्यक समझती थी। इसने इसके लिए कई साधनों का प्रयोग किया। सरकार ईसाई पादरियों को सहायता दे-देकर उनके द्वारा देश की बहुसंख्यक जाति के घटकों को जाति से विमुख करती रही। वे अंग्रेजी साहित्य, कला तथा विज्ञान का प्रचार कर यहाँ के ज्ञान विज्ञान को अयुक्ति-संगत और निष्क्रिय सिद्ध करते रहे, जाति की मान्यताओं को निरर्थक और हानिकारक बताते रहे, इतिहास के विषय में ऐसी धारणाएँ *उत्पन्न करते रहे जिससे जनता में यह सिद्ध हो सके कि यहाँ की मुख्य जाति* आर्य इस देश में बाहर से आई है और यहाँ के मूल निवासी हैं भील, गोंड एवं अन्य वनवासी जातियाँ।

इस देश को एक महाद्वीप का नाम देकर वे इसमें अनेक जातियों के बसे होने का प्रचार करते रहे। इस बात से इन्कार न कर सकने पर भी कि वेद संसार के साहित्य में सबसे पुरानी पुस्तक है, उन्होंने यह प्रचार किया कि यह किस्से कहानियों की पुस्तकें हैं तथा अशिक्षित मन की कल्पनाओं और प्राकृतिक घटनाओं से भयभीत हो उनकी पूजा बताने वाली पुस्तकें हैं। फिर ये पुस्तकें ईसा से दो-तीन सहस्र वर्ष से अधिक पुरानी नहीं हैं।

अंग्रेजी सरकार ने सब शिक्षा-केन्द्रों को अपने हाथ में लेकर उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों के मन में भारतीय धर्मशास्त्र, आचार-विचार और परम्पराओं के लिए अश्रद्धा और अविश्वास उत्पन्न करने का यत्न किया।

अंग्रेज यह तो जानते थे कि इतना बड़ा देश सदा इंग्लैण्ड जैसे दूरवर्ती देश के अधीन नहीं रहेगा। परन्तु वे यहाँ की जनता को ऐसा बना देना चाहते थे जो सदा इंग्लैण्ड के आश्रय रहे और उनका सहायक रहे।

अंग्रेजों को अपने अनुमान से पहले ही यहाँ राजनीतिक स्वतंत्रता देनी *पड़ गई। यहाँ की जनता में अपने राष्ट्र, संस्कृति और धर्म में श्रद्धा लोप होने* से पूर्व ही उनको यहाँ से जाना पड़ गया। योरुप में दो महान् युद्धों के होने से इंग्लैण्ड अत्यन्त दुर्बल पड़ चुका था और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का दबाव

इतना बढ़ गया था कि इंग्लैण्ड को हिन्दुस्तान से ही नहीं प्रत्युत अनेकों अन्य देशों से भी अपने साम्राज्य का पूर्ण विस्तार समेटना पड़ गया।

इस समय यहाँ अंग्रेजों ने दोहरी चाल चली। एक तो यह कि भारत के एक विशिष्ट भू-भाग को उन लोगों के हाथों में दे देना स्वीकार कर लिया जिनका न तो देश के साथ प्रेम था न ही देश की मुख्य जाति हिन्दू से किंचित् मात्र भी लगाव था। दूसरे उन्होंने हिन्दुओं मे उन नेताओं को बनाया दिया जिनका झुकाव अंग्रेजी सभ्यता साहित्य और परम्पराओं की ओर प्रबल था। भारत की प्राचीन संस्कृति को तथा इसके रीति-रिवाजों को निकृष्ट समझने वाले लोग यहाँ राजा बने तो वे इतिहास के विषय में भी वही नीति अपनाने लग जो अंग्रेज शासक अपना रहे थ।

यहूदी इसाई और योरपियन नास्तिकों ने अपने-अपने विचार से संसार का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया हुआ है। इस इतिहास को विकृत करने में सबका अपना-अपना उद्देश्य है और उसके अनुरूप ही वर्तमान स्वराज्य प्राप्तिकाल के लेखक-कार्य कर रहे हैं। इसम एक कारण तो यह है कि परतंत्रता के युग में स्वाभाविक रूप म उन लेखकों को मान प्राप्त था जो अंग्रेजों और योरुपियन लेखकों के स्वर-में-स्वर मिलाते थे। स्वराज्य प्राप्ति के उपरान्त शासक-वर्ग भी योरुपियन अथवा नास्तिक मनोवृत्ति रखते हैं और अंग्रेजी काल के विद्वानों को ही विद्वान् मानते हैं।

अत: इस समय भी वे लोग ही भारत का इतिहास लिख रहे हैं जो इसाई यहूदी और अनीश्वरवादी लेखकों के शिष्य हैं। ये सब लेखक क्या लिखते हैं इसका दिग्दर्शन कराने के लिए नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं। इनके विपरीत कितनी भी युक्तियाँ तथा प्रमाण क्यों न दिये जायें न तो योरूपीय विद्वान इनको मानने को तैयार होते हैं न ही आज के भारत के शासक।

इतिहास को विकृत करने का उद्देश्य

हम यह बता चुके हैं कि इसाई और यहूदी यह बात कभी समझ नहीं सकते कि उनकी धर्म पुस्तक बाइबल मे लिखे इतिहास के विपरीत भी कोई बात सत्य हो सकती है। अत: वे बाइबल की ऐनक से सारे संसार को देखने का यत्न कर रहे हैं।

बाइबल में इस पृथ्वी पर मानव सृष्टि का उदय आदम से हुआ लिखा

मिलता है और आदम तथा उसकी स्त्री हव्वा को जब स्वर्ग से निकाला गया और उन्होंने सृष्टि आरम्भ की तब से इस पृथ्वी पर मानव की सृष्टि हुई मानी जाती है। बाइबल में आदम की वंशावलि और उसका जीवन-काल तथा जन्म-काल लिखा है। इसके विषय में व्याख्या से आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ तो यह बताना चाहते हैं कि उस वंशावलि के हिसाब से आदम के स्वर्ग से उतरने से आज तक ४७०२+१९६१=७४१६ वर्ष ही व्यतीत हुए हैं। अतः बाइबल को प्रामाणिक पुस्तक मानने वाले किसी भी सभ्यता को इससे पुरानी सभ्यता मानने के लिए तैयार नहीं होते। यदि वे मानें तो उनको बाइबल को गलत मानना पड़ेगा।

मानव सृष्टि इससे काम से है यह तो वैज्ञानिक भी नहीं मानते। इस पर भी वे लोग अपना अनुमान लगाते समय डरते हैं।

इस विषय में निम्न वक्तव्य पढ़ने योग्य है। रॉयल ऐन्थ्रोपोलोजी संस्थान ग्रेट ब्रिटेन तथा आयरलैण्ड के जर्नल के ६ वें अंक (जुलाई दिसम्बर १९३) में एक लेख सभ्य मनुष्य की प्राचीनता' पर दिया गया है। उसमें लिखा है—

But as far as man was concerned, his history was still limited by the dates in the margins of our Bible Even to-day the old idea of his recent appearance still prevails in quarters where we should least expect to find it and so called critical historians still occupy themselves in endeavouring to reduce the dates of his earlier history

आगे चल कर फिर लिखा है—

To a generation which had been brought up to believe that 4004 B C or there-abouts the world was being created the idea that man him-self went back to 100 000 years ago was both incredible and inconceivable.

(From an article on Antiquity of civilized man in the vol. 60 (July-Dec 1930) of Journal of the Royal Anthropological Institute of Great-Britain and Ireland.)

जहाँ तक मनुष्य का सम्बन्ध है उसका इतिहास अभी भी बाइबल से निकाली तिथियों तक ही सीमित है। आज भी मनुष्य का अभी-अभी भूतल पर उत्पन्न होना उन क्षेत्रों में भी प्रचलित है जहाँ हमको इसकी आशा नहीं करनी चाहिए। तथाकथित आलोचक इतिहासज्ञ भी यत्न करते हैं कि प्राचीन

इतिहास की तिथियाँ कम से कम पुरानी लिखी जायें।

उस मानव के लिए जिसको शिक्षा में विश्वास दिलाया गया है कि ४ ४ वर्ष ईसा पूर्व में अथवा इसके आस-पास में सृष्टि उत्पन्न हो रही थी यह मानना कि मानव प्राणी एक लाख वर्ष पूर्व यहाँ था असम्भव प्रतीत होता है।

Custodians of the pentateuch were alarmed by the prospect that Sanskrit would bring down the tower of Babel.

'यहूदियों की बाइबल गत पाँच पुस्तक के रक्षक संस्कृत साहित्य से बाबल का स्तूप गिर पड़ने की सम्भावना देखकर भयभीत हो गये हैं।

इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारत के इतिहास को विकृत करने वालों में बाइबल के भक्तों का कितना बड़ा हाथ है। इनको भय है कि भारत का इतिहास तथा संस्कृत साहित्य का ज्ञान फैल गया तो बाइबल झूठी सिद्ध हो जायगी।

ईसाई पादरियों ने संस्कृत का अध्ययन ही इस कारण किया था कि भारत में ईसाई मत का प्रचार कर सकें। इसके लिए इंग्लैंड में संस्कृत-अंग्रेजी का शब्दकोष लिखने का वृहद् प्रयास किया गया। इस प्रयास के विषय में सर मोनियर विलियम अपने शब्दकोष के प्राक्कथन में लिखते हैं—

I must draw attention to the fact that I am only the second occupant of the Boden Chair and that its founder Colonel Boden, stated most explicitly in his will (dated Aug 15 1811) that the special object of his munificent bequest was to promote the translation of the Scriptures into Sanskrit; so as to enable his country-men to proceed in the convertion of the natives of India to the Christian Religion. (Sanskrit English Dictionary by Sir Monier Williams. Preface P IX 1899)

मैं यह बताना चाहता हूँ कि मैं बोडन आसंदी (Chair) पर बैठने वाला दूसरा व्यक्ति हूँ। यह कर्नल बोडन ने स्थापित की थी। और उसने अपनी वसीयत में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि इस चेयर के स्थापित करने का विशेष उद्देश्य यह है कि बाइबल का संस्कृत में अनुवाद किया जाए जिससे हिन्दुस्तान के रहने वालों को इस धर्म में लाया जा सके।

जब पादरी लोग संस्कृत का अध्ययन इस उद्देश्य से कर रहे थे तब कुछ ऐसे लोग भी थे जो संस्कृत साहित्य का अध्ययन स्वतन्त्र रूप से और ठीक नियत से कर रहे थे। उन लोगों को भारत का धर्म और धारणा अत्यन्त श्रेष्ठ प्रतीत हुए हैं।

ऐसे लोगों ने भारत के साहित्य की प्रशंसा आरम्भ कर दी। उदाहरण के रूप में प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक आर्थर शॉपनहावर ने फ्रेंच लेखक अक्वेतील डूपेरान का उपनिषद् का लैटिन में भाष्य पढ़ा था। उसने दाराशिकोह द्वारा किया गया उपनिषद् का फारसी में अनुवाद भी पढ़ा था। शॉपनहावर ने इन ग्रन्थों के विषय में लिखा है—

'उपनिषद् सर्वोच्च-मानव बुद्धि की उपज है। इसमें लगभग अति-मानव (Super-human) विचार हैं। यह सबसे सन्तोषप्रद और उन्नत करने वाला पाठ है जो संसार में सम्भव है। यह मेरे जीवन के लिए आश्वासन रहा है और मृत्यु के समय आश्रय रहेगा।

इसी प्रकार के विद्वान का एक और उदाहरण लीजिए। चन्द्र नगर के प्रधान न्यायाधीश फ्रेंच विद्वान लुई जैकालियट ने सन् १८२६ में एक पुस्तक लिखी। इसका नाम था La Bible Dans India (भारत में बाइबल)। सन् १८७० में इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद छप गया। इसमें भी लुई जैकालियट ने सिद्ध किया है कि संसार की सब प्रधान विचारधाराएँ आर्य विचारधारा से निकली हैं। उसने भारत को मानव-सभ्यता का पालना लिखा है।

वह अपनी पुस्तक में लिखता है— 'प्राचीन भूमि ! मनुष्य मात्र का जन्म स्थान ! तेरी जय हो ! पूजनीय और समर्थ धात्री ! जिसको नृशंस शताब्दियों के आक्रमणों ने अभी तक विस्मृति की धूल के नीचे दबाया हुआ है तेरी जय हो ! श्रद्धा प्रेम कविता और विज्ञान की पितृभूमि ! तेरी जय हो ! क्या कभी ऐसा दिन भी आयेगा जब हम अपने पश्चात्य देशों में तेरे अतीत काल की-सी उन्नति देखेंगे ?

ये और अन्य अनेकों ऐसे विद्वान जब भारत के ज्ञान-विज्ञान की प्रशंसा करने लगे तो ईसाई पादरी जल भुन गये और उनको गालियाँ देने लगे। इन गालियों का भी एक उदाहरण देखिये—

शॉपनहावर के विषय में ईसाई पादरी विन्टरनित्ज़ लिखता है—

Yet I believe it is a wild exaggeration when Schopen-Hauer says that the teaching of the Upanishad represents, 'The fruit of the highest human knowledge and wisdom.

मैं विश्वास से कहता हूँ कि शॉपन हावर का उपनिषद् के विषय में कथन अतिरंजित है।"

एक अन्य जर्मन विद्वान डॉ॰ [illegible] के बारे में मैक्स-मूलर साहब लिखते हैं—

A writer like Dr Spiegel should know that he can expect no mercy nay he should himself wish for no mercy but invite the heaviest artillery against the floating battery which he has launched into the troubled waters of Biblical criticism.

'डॉक्टर स्पीगल सदृश लेखक को जानना चाहिए कि वह किसी दया की आशा नहीं कर सकता। उसे स्वयं किसी दया की इच्छा करनी भी नहीं चाहिए। बाइबल की आलोचना के विरोधरूपी सागर में जो जल-पोत उसने उतारा है उस पर भारी गोला-बारी होगी।"

डॉक्टर स्पीगल का अपराध यह था कि उसने लिखा था कि यहूदी धर्म में उत्पत्ति का विचार पारसी धर्म से आया है।

इसी प्रकार लुई जैकालियट के विषय में मैक्समूलर ने लिखा है कि जैकालियट किसी ब्राह्मण के धोखे में आ गया है।

इतिहास की विकृति में राजनीतिक उद्देश्य

इन यहूदियों और पादरियों का भारतीय धर्म और संस्कृति पर आघात तो था ही साथ ही भारत में अंग्रेजी सरकार ने न केवल इन ईसाई पादरियों को भारत की संस्कृति तथा धर्म को तुच्छ प्रकट करने में प्रोत्साहन दिया अपितु ऐसे विद्वान चुन चुन कर इतिहास लिखने में लगाये जो भारत के इतिहास को विकृत कर दिखाने लगे। वे लिखने लगे कि भारत अंग्रेजियों का देश है जहाँ अनेक आक्रमणकारी आये और यहाँ के लोग उनसे परास्त होते रहे; उन आक्रमणकारियों में आर्य भी एक हैं। वे यहाँ के मूल निवासी नहीं हैं। यहाँ के मूल निवासी (aboriginal tribes) भील गोंड नागा इत्यादि जातियाँ हैं। द्रविड़ दक्षिण में रहते थे और आर्य उन पर भी आक्रान्त हैं।

इस प्रकार का इतिहास लिखने वालों में एलफिंस्टन तथा मैकडॉनल्ड के नाम उल्लेखनीय हैं। उन्होंने लिखा है कि भारतीयों को इतिहास लिखना नहीं आता था। इस कारण देश का इतिहास जानने के लिए शिलालेख और पुराने खण्डहरों पर लिखे लेखों से अनुमान लगाने पड़ते हैं। इत्यादि इत्यादि।

ये इतिहासज्ञ अंग्रेजी सरकार के वेतनधारी थे और कॉलेजों में प्रोफेसर थे। इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र विचार के लोग भी थे जो इनकी कुटिलता को प्रकट करते रहते थे। परन्तु वे स्वतन्त्र विचार के लोग सदा सरकार की ओर से विरोध और अवहेलना के पात्र रहे।

भारांश यह है कि ईसाई तथा यहूदी मत से प्रभावित लोग भारत के साहित्य की निन्दा और भारत के इतिहास को विकृत तो करते ही थे साथ ही अंग्रेजी सरकार के वेतनधारी भी ऐसे थे जो भारत की मुख्य जाति हिन्दू और इस जाति के इतिहास को निन्दनीय बताते रहते थे।

इस विषय में मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास के प्राध्यापक महा महोपाध्याय नीलकण्ठ शास्त्री के विचार पठनीय हैं। प्रोफेसर नीलकण्ठ पाश्चात्य पद्धति के ही विद्वान थे। इस पर भी वे भारत के निन्दकों की तामसी वेस क्रोध से भर गए। वे लिखते हैं—

What is this but a critique of Indian Society and Indian history in the light of the nineteenth century prepossessions of Europe? This criticism was started by the English Administrators and European missionaries and has been neatly focussed by the vast erudition of Lassen, the unfulfilled aspirations of Germany in the early nineteenth century doubtless had their share in shaping the line of Lassen's thought.

यह महामहोपाध्याय नीलकण्ठ शास्त्रीजी के भाषण का वह अंश है जो उन्होंने अखिल भारतीय ओरिएण्टल कॉन्फ्रेन्स दिसम्बर १९४१ में पढ़ा और उसकी रिपोर्ट के दूसरे भाग पृष्ठ ६४ पर छपा। छपने की तिथि १९४६ की है।

इसका अर्थ है— भारतीय समाज और भारतीय इतिहास के विषय में जो आलोचना की गई है वह उन्नीसवीं शती के योरूप के पूर्व स्वीकृत विचार से प्रभावित है। यह आलोचना अंग्रेज शासकों और योरूपीय ईसाई पादरियों द्वारा आरम्भ की गई है और लैसन की युक्ति से तीव्र कर दी गई है। १९वीं शती के प्रारम्भ में जर्मनी की पराजित अभिलाषाओं का प्रभाव लैसन की विचारधारा पर पहुँचा था।"

इसी प्रकार रायबहादुर सी० वी० आर० कृष्णमचारलू को भी उक्त पक्षपात का आभास हुआ था।

Cradle of Indian History जो अडियार लायब्रेरी मद्रास द्वारा १९४७ में प्रकाशित की गयी है उसमें वे लिखते हैं—

"ये लेखक जो नवीन बनी जातियों के व्यक्ति हैं और जो सांस्कृतिक सहृदयता के अतिरिक्त उद्देश्यों से लिखते हैं कई बार तो स्पष्ट रूप में जातिवाद और पक्षपात से प्रभावित होकर भारतवर्ष का इतिहास लिखते हैं। उनमें न तो ऐतिहासिक तथ्य दिखाई देते हैं न ही सांस्कृतिक सहानुभूति

आज भारत में स्वराज्य हो जाने पर भी उन्हीं पाश्चात्य लेखकों के निष्कर्षों से प्रभावित तथा अंग्रेज राजनीतिज्ञों से विचारित योजना से लिखा इतिहास पढ़ाया जा रहा है और भारत सरकार विपुल धन व्यय करके उसका प्रचार कर रही है।

यह राष्ट्र की अवहेलना ही कही जा सकती है। यह हम आगे चल कर बताने का यत्न करेंगे कि योरुपीय विद्वानों द्वारा लिखे गये इस इतिहास में सैद्धान्तिक भूल कहाँ है। यहाँ तो हम इतना लिखना चाहते हैं कि हमारी स्वराज्य सरकार ने मकॉले की योजनानुसार शिक्षित विद्वानों को ही विद्वान मान रखा है। युक्ति तथा प्रमाण उन द्वारा प्रकट किये निष्कर्षों को रद्द करते हैं। इस पर भी माननीय वे ही होते हैं।

स्वराज्य सरकार की इस भूल में भी कारण यही है। आज नेतागण भी उसी मैकॉले द्वारा नियोजित शिक्षा द्वारा ही शिक्षित हैं। मैकॉले की शिक्षा ने तीन प्रकार के काले अंग्रेज पैदा किये हैं। एक वे जो इसाई मिशनरियों द्वारा खोले गये स्कूलों में जूनियर कैम्ब्रिज अथवा सीनियर कैम्ब्रिज की पद्धति में शिक्षित हुए हैं। इन महानुभावों ने प्रथम तो भारतीय दर्शन शास्त्र ज्ञान विज्ञान के ग्रन्थ इतिहास पुराण इत्यादि को देखा तक नहीं। यदि किसी ने कुछ देखा है तो केवल मात्र उसके अंग्रेजी लेखकों द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद ही देखे हैं। इन लोगों को तो Benign शब्द से मता' शब्द लिखने तथा पढ़ने में कठिन प्रतीत होता है। उनको राम कृष्ण से क्रामवैल और नैलसन अधिक समीप प्रतीत होते हैं। उनको शैक्सपियर और मिल्टन अधिक प्रिय है और वाल्मीकि तथा व्यास से उनका परिचय नहीं है।

दूसरी श्रेणी के काले-अंग्रेज वे हैं जो सामान्य सरकारी स्कूल-कालेजों में पढ़े हुए हैं। उनके ज्ञान में राम कृष्ण वाल्मीकि और व्यास तो हैं परन्तु उनके विषय में सत्य परिचय नहीं। उनको कुछ-कुछ हिन्दी भी आती है। परन्तु अभ्यास के अभाव में उनको यह वाक्य India s Policy of non-alignment is rational अधिक मधुर प्रतीत होता है और भारत की नीति निष्पक्ष है कहना कठोर लगता है।

एक तीसरे प्रकार के काले-अग्रज भी हैं। वे प्राय: यूनिवर्सिटियों और सरकारी शिक्षा विभाग से सम्बद्ध परन्तु प्राइवेट स्कूलों व कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त हैं। वे भारतीय परम्पराओं से परिचित हैं। प्राय: उनको इन से लगाव भी होता है। परन्तु शिक्षा के प्रभाव से परेशान रहते हैं और नहीं जानते कि भारतीय बातों को और भारतीय चलन को ठीक कैसे सिद्ध करें। चूंकि नेतृत्व

प्रथम और द्वितीय श्रेणी के अंग्रेजों के हाथ में है इस कारण तृतीय श्रेणी के अंग्रेज उनके पीछलग्गू हो जाते हैं ।

प्रथम श्रेणी के लोग नेता बन गये हैं। यह केवल इस कारण कि वे अंग्रेजी भाषा के जानकार हैं। अंग्रेजों के काल में इनकी महिमा थी। तब के बने नेता अभी भी बने हुए हैं।

भौतिकवादियों द्वारा इतिहास की विकृति

योरप के भौतिकवादी इसाई तथा मुसलमानों को संसार से निःक्षेप नहीं कर सके। इसाई तथा मुसलमान जैसा बताया जा चुका है कोरी मिथ्या का आश्रय लेकर चल रहे हैं और इससे काम न चलता देख तलवार धन और बल के बल से अपना काम निकालते रहे हैं। रिनेसाँ से उत्पन्न क्रांति का परिणाम निरीश्वरवाद हुआ। यह निरीश्वरवाद भी शक्ति का आश्रय लेकर ही आगे बढ़ा है। तोपों और बन्दूकों के बिना यह वाद भी अपना अस्तित्व नहीं रख सका। प्रारम्भ में १६वीं और १७वीं सदी में यह वाद युक्ति के बल पर चलना चाहता था परन्तु इसका परिणाम हुआ भयंकर अराजकता और अन्यायाचरण की सृष्टि। इस अन्यायाचरण का मूल स्रोत अनीश्वरवादियों के हाथ में आर्थिक उन्नति का आ जाना था। इसी की प्रतिक्रिया हुई कम्यूनिज्म। यदि कम्यूनिज्म ईश्वरवाद का आश्रय लेता तो क्या होता ? कहना कठिन है। परन्तु तत्कालीन इसाईयों के व्यवहार से कम्यूनिज्म अनीश्वरवाद की एक शाखा मात्र बन गया। कम्यूनिज्म अनीश्वरवाद और शक्ति का संयोग है।

भौतिकवाद शक्ति सम्पन्न हो इसाईमत का विरोधी हो गया। भौतिकवाद अर्थात् अनीश्वरवाद मानव मन को तो प्रेरित नहीं कर सका। अतः यह शक्ति द्वारा जन मन की हत्या करने पर तुल गया है। इस हत्या में इतिहास एक महान बाधा थी। अतः अवसर मिलते ही कम्यूनिस्ट इतिहास को तोड़ मरोड़ कर जनता के सम्मुख उपस्थित करने लगे हैं। अब वे विलक्षण बात यह है कि वे अपने देशों में उस इतिहास के अतिरिक्त अन्य कुछ भी इतिहास के नाम पर जो प्रकाशित होना अथवा प्रचारित होने नहीं देते।

इतिहास के तोड़-मरोड़ को उन्होंने इतिहास की कम्यूनिस्ट विवेचना (Communist interpretation of history) का नाम दिया है। इसाई तथा महूदियों ने इतिहास के विषय में मिथ्या कल्पना की और उस मिथ्या कल्पना की

विकृत विवेचना कम्यूनिस्टों ने कर दी। मिथ्या इतिहास की विवेचना भी मिथ्या ही बन पाई है।

कम्यूनिस्टों की विवेचना का मुख्यतः सिद्धान्त यही है कि आदि काल में मनुष्य भी एक पशु के समान था। वह पशुओं से ही विकसित हुआ था। पशु की भाँति वह भी शारीरिक माँगों से प्रेरित लड़ता-झगड़ता संघर्ष करता हुआ वर्तमान युग का मानव बन गया है। अभी भी शारीरिक आवश्यकताएँ अर्थात् भूख प्यास वस्त्र मकान और विषयवासना मानव को उन्नति करने में प्रेरणा दे रही हैं और इन्हीं बातों को लेकर परस्पर युद्ध होते हैं। उनका विचार है कि *शारीरिक आवश्यकताएँ तृप्त हो जायें तो संसार में शान्ति हो जायेगी।*

इतिहास की भौतिकवादी मीमांसा भारतीय परम्पराओं के अनुकूल नहीं है। भारतीय परम्पराओं के विषय में तो पुस्तक के अगले परिच्छेदों में लिखेंगे परन्तु इतना तो यहाँ पर लिखा ही जा सकता है कि मानव-उन्नति के विषय में भौतिकवादियों और भारतीय विचार-धारा के मानने वालों में अन्तर है। भौतिकवादी सुख-साधनों को ही उन्नति का लक्षण समझते हैं और भारतीय परम्परा के अनुसार यह उन्नति का एक अंश मात्र ही है। इसमें दुःख की निवृत्ति को ही उन्नति माना है। दुःख और कष्ट में अन्तर है। कष्ट शरीर का विषय है। कष्ट से भी दुःख होता है परन्तु दुःख में शारीरिक कष्ट के अतिरिक्त भी कारण हो सकते हैं। उदाहरण के रूप में एक लखपति की जेब में से बीस रुपये चोरी हो जाने से उसे भारी दुःख हो सकता है परन्तु एक निर्धन का सब-कुछ चोरी हो जाने पर उसको दुःख नहीं भी हो सकता। यह दोनों की मानसिक अवस्था में अन्तर होने के कारण है।

अतः भारतीय परम्पराओं के अनुसार दुःख की निवृत्ति जो शारीरिक कष्ट से निवृत्ति से अधिक व्यापक अवस्था है जो उन्नत अवस्था माना जाता है। दुःख सब प्रकार के सुख-साधनों से सम्पन्न नगर में एक महल के सुखी वातावरण में रहते हुए भी मनुष्य को अपने प्रिय सम्बन्धी की आकस्मिक दुर्घटना से मृत्यु होने पर हो सकता है। अर्थात् महल के सब प्रकार से सुखी वातावरण के होने पर भी व्यक्ति दुःखी हो सकता है।

इसी प्रकार भारतीय परम्पराओं के अनुसार निर्धन अथवा शक्तिशाली जातियाँ इस कारण नहीं लड़तीं कि इनकी शारीरिक आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं होतीं। प्रत्युत झगड़े और युद्ध इस कारण होते हैं कि कुछ मानवों की मनोवृत्ति आसुरी हो जाती है। आदि काल से युद्ध इसी कारण हुए हैं कि *किन्हीं* राज्यों का संचालन जब असुर प्रवृत्ति वाले शासकों के हाथों में चला जाता है

तो वे शासक सब प्रकार से सम्पन्न होते हुए भी दूसरों पर आक्रमण कर देते हैं। अतः युद्ध होते हैं। प्रायः आक्रमण करने वाले अथवा युद्ध करने वाले समृद्ध सम्पन्न और भौतिक दृष्टि से उन्नत देश होते हैं। उनमें यदि कभी होती है तो यथार्थ ज्ञान की होती है। इतिहास की कम्यूनिस्ट विवेचना कि मनुष्य शारीरिक आवश्यकताओं को प्राप्त करने का यत्न करता हुआ दूसरों से झगड़ा करता है गलत है। वास्तव मे जब व्यक्ति अथवा समाज की मनोवृत्ति आसुरीबन जाती है तब व्यक्तियों में अथवा समाजों में परस्पर युद्ध होते हैं।

दैवी अथवा आसुरी मनोवृत्ति आवश्यकता अथवा अभाव से नहीं बनती प्रत्युत शिक्षा-दीक्षा के गुण-दोष से बनती है। अतः युद्ध और लड़ाई झगड़े वस्तुओं के अभाव अथवा वस्तुओं की प्रचुरता के कारण नहीं होते प्रत्युत दूषित शिक्षा-दीक्षा से होते हैं।

द्वितीय परिच्छेद

भारतवर्ष की ऐतिहासिक खोजों में भूल

भारतवर्ष के इतिहासज्ञों की इतिहास लिखने की एक विधि थी। विदेशी इतिहास लेखक एक दूसरी विधि से इतिहास लिखते रहे हैं। इन दोनों विधियों में अन्तर है। इस अन्तर के विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ तो हम यह बताना चाहते हैं कि विदेशीय लेखक जब भारत का इतिहास ढूँढने लगे तो उनको अपनी विधि के अनुसार लिखा हुआ इतिहास मिला नहीं। अतः उन्होंने समझा कि भारतीयों को इतिहास लिखना नहीं आता था और यहाँ का इतिहास भी कुछ है ही नहीं।

इन लेखकों ने बाइबल में से तो इतिहास ढूँढ लिया परन्तु वे भारत में पहुँचकर किसी ऐसी पुस्तक की खोज में लग गये जैसी इंग्लैण्ड में Life of King Henery the VIII) (राजा हेनरी अष्टम का जीवन चरित्र) की अथवा जैसी Reign of Queen Elizebeth (महारानी एलिज़बेथ का राज्य काल) पुस्तक हो।

ऐसी पुस्तक यहाँ मिली नहीं। इससे उन्होंने यह मान लिया कि भारतीयों को इतिहास लिखने का ढंग आता ही नहीं था। अतः वे अपने ढंग से खोज करने लगे।

इंग्लैण्ड के प्राचीन निवासी तो जाहिल थे वे लिखना-पढ़ना जानते नहीं थे। अतः वहाँ के इतिहास की खोज का ढंग वह नहीं हो सकता था जो भारतवर्ष का होना चाहिए था। भारत के लोग बहुत ही प्राचीन काल से लिखना पढ़ना जानते थे। इनके प्राचीन ग्रन्थ भी मिलते हैं। यह ठीक है कि मुसलमानी काल में बहुत से ग्रन्थ नष्ट कर दिये गये। इस पर भी अभी भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं और उनसे भारत के इतिहास का बहुत अच्छा अनुमान लग सकता था। परन्तु योरुपीय लेखकों ने भारतीय ग्रन्थों में खोज करने के स्थान पत्थर पर खुदे लेखों मुद्राओं और विदेशीय लेखकों के लेखों से भारत का इतिहास खोजना आरम्भ कर दिया।

हमारा यह अभिप्राय नहीं कि इतिहास के ये स्रोत अवांछनीय हैं और उनसे सहायता नहीं लेनी चाहिए। इस पर भी हमारा दृढ़ मत है कि भारत के इतिहास का मुख्य स्रोत रामायण महाभारत ब्राह्मण-ग्रन्थ पुराण तथा अन्य ग्रन्थ थे। इसके पश्चात् प्रचलित लोक-गाथाएँ थीं। तब जाकर कहीं यहां के शिला-लेख और राज्य-मुद्राएँ आती हैं और सबसे अन्तिम स्तर पर विदेशीय पर्यटकों के लेख हो सकते थे।

विदेशियों का ज्ञान वे कितने ही बड़ देश में क्यों न रहे हों उतना पूर्ण नहीं हो सकता जितना कि देशीय लेखकों का होता है। उदाहरण के रूप में अलबरूनी ने जो कुछ तत्कालीन भारत के विषय में लिखा है वह बहुत अच्छा होते हुए भी कभी भी पूर्ण और सर्वथा सत्य नहीं हो सकता। अलबरूनी पंजाब के कुछ उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों में ही रहा और वहाँ के कुछ लोगों से ही मिला। इस कारण उसके अधूरे ज्ञान की तुलना में हम तत्कालीन भारतीय लेखकों के लेखों को प्रथम स्थान ही देंगे।

इन विदेशीय लेखकों की अनर्गल बातों के हम एक दो उदाहरण देना चाहते हैं।

मैगस्थनीज यूनान का रहने वाला था। वह आज से लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व भारत में आया था। ऐसा कहा जाता है कि उसकी एक पुस्तक के कुछ पन्ने फटे हुए मिले हैं और उन पन्नों का अनुवाद "स्वान बैक" ने प्रकाशित किया है। इन पन्नों म एक स्थान पर लिखा है कि मैगस्थनीज सैल्यूकस का राजदूत बन कर सण्ड्राकोटस के दरबार में और उसकी राजधानी पालीबोथा में रहा है। वह विलुप्त पुस्तक जिसके कुछ फटे हुए पन्ने ही मिले हैं उस नगर में बैठकर लिखी गई थी।

इस वक्तव्य का अर्थ एक अंग्रेज ने यह लगाया है कि मैगस्थनीज चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र में आकर रहा था। इस अंग्रेजी लेखक का नाम है सर विलियम जोन्स और उसने सैण्ड्राकोटस को चन्द्रगुप्त और पालिबोथा को पाटलिपुत्र का अपभ्रंश माना है। ये जोन्स साहब रायल ऐशियाटिक सोसायटी के मन्त्री रहे हैं।

कुछ अन्य प्रमाणों से पता चलता है कि सैल्यूकस का राज्य ईसा पूर्व सन् ३२२ में था। केवल मात्र इस प्रमाण के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि चन्द्रगुप्त मौर्य भी ईसा पूर्व ३२२ के लगभग हुआ था।

भारतीय प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्या-रोहण-काल विक्रम पूर्व १४४२ अथवा ईसा पूर्व १४ है। दोनों गणनाओं में

बहुत बड़ा अन्तर है। इसमें कारण है सर जोन्स की मिथ्या कल्पना कि सैण्ड्राकोटस चन्द्रगुप्त मौर्य का अपभ्रंश है।

मैगस्थनीज भारत में आया होगा। वह भारत के किसी नगर और किसी राजा के दरबार में रहा होगा परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह नगर पाटलिपुत्र और वह राजा चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं होगा। यह सम्भव है कि सैण्ड्राकोटस चन्द्रगुप्त शब्द का अपभ्रंश हो परन्तु वह सैण्ड्राकोटस चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं था और न ही वह पालिबोथा पाटलिपुत्र जो आज पटना के नाम से विख्यात है। हमारे इस कथन का प्रमाण तो उन्हीं मैगस्थनीज की पुस्तक के बिखरे पन्नों में से मिलता है।

इस पुस्तक में लिखा है कि एक डायनुसस नाम का व्यक्ति पश्चिम से भारत में आया था। उसी के वंश में एक हेराक्लीज नाम का राजा हुआ है। वह साधारण मनुष्यों से बल-बुद्धि में बड़ा था और उसने बहुत-सी स्त्रियों से विवाह किया था तथा बहुत से पुत्र उत्पन्न किये थे। इस हेराक्लीज ने बहुत से नगर बसाये जिनमें सबसे बड़ा पालिबोथा था।

इसी पुस्तक के एक और पन्ने पर लिखा है कि हेराक्लीज से सैण्ड्राकोटस तक १३८ पीढ़ियाँ हुई हैं। एक अन्य स्थान पर लिखा है कि पालिबोथा नगर गंगा और इरानो-बोअस नदी के संगम से २ मील ऊपर की ओर स्थित है।

श्री एम॰ श्री॰ अल्लविल्ले का मत है कि इरानो-बोअस यमुना नदी का नाम है। इससे तो यह सिद्ध होता है कि सैण्ड्राकोटस चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं था। चन्द्रगुप्त मौर्य तो अपना वंश चलाने वाला स्वयं था। वह किसी वंश की १३८ अथवा १३९ वीं पीढ़ी में उत्पन्न नहीं हुआ था। साथ ही पाटलिपुत्र पालिबोथा भी नहीं था। पाटलिपुत्र किन्हीं दो बड़ी नदियों के संगम से २ मील ऊपर बसा हुआ नहीं है।

यह बात लिखी हुई मिलती है कि उदयिन ने जो दर्शक का पुत्र था तेंतीस वर्ष राज्य कर अपने अभिषेक के चार वर्ष उपरान्त गंगा के दक्षिण-तट पर कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) नामक नगर बसाया।

वायु पुराण अ॰ ९९ श्लोक ३१ ३१९ में इस प्रकार लिखा है

उदायीभविता तस्मात् वर्षाणित्रिंशत् समा नृपः ॥
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति ॥

कुसुमपुर पुष्पपुर पाटलि-ग्राम पाटलिपुत्र पर्यायवाचक हैं।

इस बात के प्रमाण अन्यत्र भी मिलते हैं। ब्रह्माण्ड पुराण पाद ३

अध्याय ७४—श्लोक १३२ के में भी उक्त उल्लेख है।

विदेशीय पर्यटकों के लेखों से यहाँ के इतिहास में उलझन ही पड़ी है। इस प्रकार का एक अन्य उदाहरण दिया जाता है। चीनी पर्यटक ह्यूनसांग ने हर्षवर्धन के पिता प्रभाकरवर्धन और उसके भाई राज्यवर्धन को भी कन्नौज का राजा बताया है। इसके स्पष्ट प्रमाण इतिहास में मिलते हैं कि वे दोनों तो स्थानेश्वर के राजा थे।

इसी प्रकार के कई अन्य उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिनसे विदेशीय पर्यटकों के लेखों पर लिखा इतिहास विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। हमारा कहना है कि भारत का इतिहास भारतवर्ष में उपस्थित प्रमाणों पर निर्मित होना चाहिये।

मैगस्थनीज के उक्त भ्रम मूलक लेख से भारत का पूर्ण इतिहास ही विकृत हो गया है। बहुत-सी बातें इसी संवत् से आगे पीछे हो गयी हैं।

यह ठीक है कि भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास उस शैली पर नहीं लिखा गया जिस पर आज के इतिहास लिखने वाले लिख रहे हैं। इसमें कारण है। यह कारण हम आगे चलकर विस्तार से लिखेंगे। साथ ही यह भी ठीक है कि असंख्य प्राचीन पुस्तकें बौद्ध और मुसलमान राजाओं की मूर्खता के कारण विनष्ट हो गयी हैं। इस कारण प्राचीन ग्रन्थों से इतिहास खोज निकालने के लिए अति परिश्रम की आवश्यकता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि विदेशीय ढंग पर इतिहास निर्माण सुगम कार्य है अथवा अधिक तथ्यपूर्ण है। विदेशीय ढंग और भारतीय प्रमाण दोनों भ्रम मूलक हो सकते हैं। इस पर भी जब दोनों में भिन्नता आये तो भारतीय प्रमाण सत्य के अधिक समीप माने जाने चाहिएँ।

विदेशीय शैली से इतिहास संकलन करने वालों के दुर्बल आधार का एक और उदाहरण दिया जाता है—

A New History of Indian People v 1 VI में गुप्त साम्राज्य का बयान है। इस पुस्तक में श्री रमेश चन्द्र मजुमदार M. A. Ph. D. P. R., A.S.B तथा अनन्त सदाशिव अल्तेकर M A L L.B D Litt. लिखते हैं—

W th the accession of Samudra Gupta our knowledge of the political history becomes fuller and more precise Thi is due to a large number of records, engraved on stones and copper plates during the reign of this monarch.

इसी पुस्तक के इसी पृष्ठ पर कुछ ही पंक्तियाँ आगे चलकर लिखा है—

बहुत बड़ा अन्तर है। इसमें कारण है सर जोन्स की मिथ्या कल्पना कि सैण्ड्राकोट्स चन्द्रगुप्त मौर्य का पर्याय है।

मैगस्थनीज भारत में आया होगा। वह भारत के किसी नगर और किसी राजा के दरबार में रहा होगा परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह नगर पाटलिपुत्र और वह राजा चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं होगा। यह सम्भव है कि सैण्ड्राकोटस चन्द्रगुप्त शब्द का अपभ्रंश हो परन्तु वह सैण्ड्राकोटस चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं था और न ही वह पालिबोथा पाटलिपुत्र जो आज पटना के नाम से विख्यात है। हमारे इस कथन का प्रमाण तो उन्हीं मैगस्थनीज की पुस्तक के बिखरे पन्नों में से मिलता है।

इस पुस्तक में लिखा है कि एक डायनूसस नाम का व्यक्ति पश्चिम से भारत में आया था। उसी के वंश में एक हेराक्लीज नाम का राजा हुआ है। वह साधारण मनुष्यों से बल-बुद्धि में बड़ा था और उसने बहुत-सी स्त्रियों से विवाह किया था तथा बहुत से पुत्र उत्पन्न किये थे। इस हेराक्लीज ने बहुत से नगर बसाये जिनमें सबसे बड़ा पालिबोथा था।

इसी पुस्तक के एक और पन्ने पर लिखा है कि हेराक्लीज से सैण्ड्राकोट्स तक १३८ पीढ़ियाँ हुई हैं। एक अन्य स्थान पर लिखा है कि पालिबोथा नगर गंगा और इरानाबोअस नदी के संगम से २ मील ऊपर की ओर स्थित है।

मी एम डी अम्मविले का मत है कि इरानाबोअस यमुना नदी का नाम है। इससे तो यह सिद्ध होता है कि सैण्ड्राकोटस चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं था। चन्द्रगुप्त मौर्य तो अपना वंश चलाने वाला स्वयं था। वह किसी वंश की १३ अथवा १३८ वीं पीढ़ी में उत्पन्न नहीं हुआ था। साथ ही पाटलिपुत्र पालिबोथा भी नहीं था। पाटलिपुत्र किन्हीं दो बड़ी नदियों के संगम से २ मील ऊपर बसा हुआ नहीं है।

यह बात लिखी हुई मिलती है कि उदयिन ने जो दर्शक का पुत्र था तैंतीस वर्ष राज्य कर अपने अभिषेक से चार वर्ष उपरान्त गंगा के दक्षिण-तट पर कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) नामक नगर बसाया।

वायु पुराण अ० ९९ श्लोक ३१८-३१९ में इस प्रकार लिखा है

उदायीभविता तस्मात् त्रयस्त्रिंशत् समा नृप ॥
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति ॥

कुसुमपुर, पुष्पपुर, पाटलि-ग्राम पाटलिपुत्र पर्यायवाचक हैं।

इस बात के प्रमाण अन्यत्र भी मिलते हैं। ब्रह्माण्ड पुराण पाद ३

थे कि भारत में सभ्यता और श्रेष्ठता अंग्रेजी राज्य से ही आई है। वे भारतीय जनता के मन पर यह अंकित करना चाहते थे कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की देन के रूप में आया है।

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि वर्तमान स्वराज्य सरकार भी अंग्रेजी शासकों अथवा ईसाई पादरियों के दुःसाहस को चालू रख रही है। इसमें कारण तो यह प्रतीत होता है कि वर्तमान शासक उन पुरुषों के पास पड़े हैं जो भारत की निन्दा करने में अपना लाभ मानते थे। अतः शासक वर्ग भी अपने पुरुषों की भाँति ही वास्तविक ज्ञान से रहित और प्राचीन भारत के ज्ञान तथा वैभव को अस्वीकार मानने वाले हैं। अंग्रेज और योरुपीय कूटनीतिज्ञों के कई सौ वर्ष के निर्माण किए से शिक्षित मस्तिष्क वाले भारतीय आज शासक बन गये हैं और वे उसी मार्ग को ठीक समझ रहे हैं जो मार्ग विदेशीय शासकों ने जाति को दासता के बन्धनों में बाँधने के लिए बनाया था।

वर्तमान शासकों के इतिहास को विकृत करने में योगदान के दो भिन्न निम्नलिखित उदाहरणों से हमारे उक्त कथन की प्रामाणिकता सिद्ध हो जायेगी। यह निश्चित है कि वर्तमान शासन भी भारत के इतिहास को विकृत करने में सिर-तोड़ यत्न कर रहा है और सत्य इतिहास के प्रकट होने में बाधाएँ खड़ी कर रहा है।

स्वराज्य के प्रारम्भ से लेकर १९५५ तक मौलाना आज़ाद भारत के शिक्षा मन्त्री रहे हैं। वे सांस्कृतिक विषयों के भी मन्त्री थे। वे अपने मन्त्रित्व काल में सदा उन विद्वानों के मार्ग में बाधा बने रहे जो प्राचीन ढंग पर खोज करने में संलग्न थे। ये महानुभाव सदा उन विद्वानों को ही बढ़ावा देते रहे जो अंग्रेजी काल में इतिहास और सांस्कृतिक विषयों के विशेषज्ञ माने जाते थे और जो विदेशियों के भारत की निन्दा करने में सहायक रहे थे।

मौलाना आज़ाद की हिन्दी तथा संस्कृत विरोधी नीति तो सर्वविदित ही है। जब तक वे भारत के शिक्षा-मन्त्री रहे हिन्दी टाइप-राइटर का 'की बोर्ड' निश्चय ही नहीं हो पाया। उनके विभाग का पूर्ण प्रभाव हिन्दी भाषा को अपना स्थान लेने में बाधक बना रहा। सबसे बड़ी हास्यास्पद बात यह रही कि हिन्दी भाषा में ज्ञान विज्ञान के ग्रंथ लिखाने का कार्य मुसलमानी संस्थाओं को ही दिया जाता रहा है।

इतिहास की खोज में भी उन विद्वानों को ही लगाया गया जो भारत के प्राचीन वाङ्मय से सर्वथा अनभिज्ञ और उस पर अविश्वास रखते थे।

सन् १९४८ के लगभग मौलाना आज़ाद ने एक शिक्षा आयोग नियुक्त

"Of Samudra Gupta himself we posess two records on stone and two on copper The first two bear no date but the others are dated respectively 5 and 9 The genuineness of these two dated copper plates has been doubted by many "

इन उद्धरणों के अर्थ इस प्रकार हैं—

(१) समुद्रगुप्त के राज्यारोहण के समय से भारत के राजनीतिक इतिहास का हमारा ज्ञान अधिक विस्तृत और ठीक हो जाता है। यह इस कारण है कि इस सम्राट ने पत्थर और ताम्र-पत्रों पर बहुसंख्या में लेख छोड़े हैं।

इस बहुसंख्या की व्याख्या अगले उद्धरण में लिखी है।

(२) समुद्रगुप्त के अपने दो पत्थर पर खुदे लेख मिलते हैं और दो ताम्र पत्रों पर। इनमें प्रथम दो पर तिथि नहीं लिखी और दो (ताम्र पत्रों) पर संवत् ५ और ९ लिखा है। इन दो ताम्र पत्रों की जिन पर संवत लिखे हैं सच्चाई पर बहुत लोग सन्देह करते हैं।

देखिये कितने दुर्बल आधार पर इतिहास लिखा जा रहा है। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान काल के इतिहास लेखक अपने लिखे इतिहास को किन स्रोतों पर लिख रहे हैं। एक राजा के दो पत्थर पर लेख और दो ताम्र पत्र पर लेखों के आधार पर इतिहास लिखा जा रहा है। इन चार प्रमाणों में भी दो संदिग्ध हैं और दो पर तिथि ही नहीं। लेखक more fuller and precise (अधिक मात्रा में और ठीक-ठीक) मानते हैं इनको। इन प्रमाणों के अतिरिक्त पुराणादि ग्रन्थों से उपलब्ध सामग्री को तो ये देखना भी नहीं चाहते।

वर्तमान सरकार भी अंग्रेजी राज्य के मार्ग पर

हमने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि भारत के इतिहास को विकृत करने में ईसाई और यहूदी मतावलम्बियों का पक्षपात मुख्य कारण है। वे यह सहन नहीं कर सके कि ईसा और मूसा से ऊपर कोई अन्य व्यक्ति दिखाई दे। न ही वे कभी यह मान सकते हैं कि उनकी बाइबल में लिखी सृष्टि की उत्पत्ति की तिथि गलत है। भारत के इतिहास के सत्यान्वेषण से यही होने वाला था। यह उनको रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ।

यहाँ यह भी उल्लेख किया गया है कि भारत के इतिहास को विकृत करने में ब्रिटिश शासकों का भी निश्चित उद्देश्य था। वे यह प्रकट करना चाहते

थे कि भारत में सभ्यता और श्रेष्ठता अंग्रेजी राज्य से ही आई है। वे भारतीय जनता के मन पर यह अंकित करना चाहते थे कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की देन के रूप में आया है।

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि वर्तमान स्वराज्य सरकार भी अंग्रेजी शासकों अथवा ईसाई पादरियों के दुःसाहस को चालू रख रही है। इसमें कारण तो यह प्रतीत होता है कि वर्तमान शासक उन पुरुषों के पास पढ़े हैं जो भारत की निन्दा करने में अपना लाभ मानते थे। अतः शासक वर्ग भी अपने गुरुओं की भाँति ही वास्तविक ज्ञान से रहित और प्राचीन भारत के ज्ञान तथा वैभव को अरुचिकर मानने वाले हैं। मैकाले और योरुपीय कूटनीतिज्ञों के ढाई सौ वर्ष के पिलाये विष से सिंचित मस्तिष्क वाले भारतीय आज शासक बन गये हैं और वे इसी मार्ग को ठीक समझ रहे हैं जो मार्ग विदेशीय शासकों ने जाति को दासता के बन्धनों में बाँधने के लिए बनाया था।

वर्तमान शासकों के इतिहास को विकृत करने में योगदान के दो निम्न लिखित उदाहरणों से हमारे उक्त कथन की प्रामाणिकता सिद्ध हो जायेगी। यह निश्चित है कि वर्तमान शासन भी भारत के इतिहास को विकृत करने में सिर-तोड़ यत्न कर रहा है और सत्य इतिहास के प्रकट होने में बाधाएँ खड़ी कर रहा है।

स्वराज्य के आरम्भ से लेकर १९५९ तक मौलाना आजाद भारत के शिक्षा मन्त्री रहे हैं। वे सांस्कृतिक विषयों के भी मन्त्री थे। वे अपने मन्त्रित्व काल में सदा उन विद्वानों के मार्ग में बाधा बने रहे जो प्राचीन ढंग पर खोज करने में संलग्न थे। ये महानुभाव सदा उन विद्वानों को ही बढ़ावा देते रहे जो अंग्रेजी काल में इतिहास और सांस्कृतिक विषयों के विशेषज्ञ माने जाते थे और जो विदेशियों के भारत की निन्दा करने में सहायक रहे थे।

मौलाना आजाद की हिन्दी तथा संस्कृत विरोधी नीति तो सर्वविदित ही है। जब तक वे भारत के शिक्षा-मन्त्री रहे हिन्दी टाइप राइटर का भी कोई निश्चय ही नहीं हो पाया। उनके विभाग पर पूर्ण प्रभाव हिन्दी भाषा को अपना स्थान लेने में बाधक बना रहा। सबसे बड़ी हास्यास्पद बात यह रही कि हिन्दी भाषा में ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ लिखाने का कार्य मुसलमानी संस्थाओं को ही दिया जाता रहा है।

इतिहास की खोज में भी उन विद्वानों को ही लगाया गया जो भारत के प्राचीन वाङ्मय से सर्वथा अनभिज्ञ और उस पर अविश्वास रखते थे।

सन् १९४८ के लगभग मौलाना आजाद ने एक शिक्षा आयोग नियुक्त

किया। इस आयोग के सदस्यों में दो तो अंग्रेज थे तथा अन्य सदस्य अंग्रेजी काल के भारतीय सदस्य थे। इन लोगों को भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों का तथा विद्यार्थियों में सदाचार तथा ब्रह्मचर्य की महिमा का अणुमात्र भी ज्ञान नहीं था। ये लोग भारत को योरपीय ढर्रे पर अग्रसर करने में ही सम्मति दे सकते थे और यही कुछ उन्होंने किया भी।

इसी काल में मौलाना आजाद ने यह योजना प्रस्तुत की कि भारत के वेद-काल से आरम्भ होने वाले भारतीय दर्शन-शास्त्र का इतिहास भारतीय शासन की ओर से प्रकाशित किया जाय। यह काम भी वेद दर्शनशास्त्रादि ग्रंथों के अंग्रेजी में अनुवादों को पढ़ने वालों के हाथ में दिया गया। ये लोग वेदों से जैमिनी पर्यन्त ग्रन्थों को मिथिकल्स (कल्पना) मानने वाले थे।

सन् १९५१ नवम्बर मास की ८ तारीख के हिन्दुस्तान टाइम्स में एक समाचार छपा

'देहली में नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस इन इण्डिया' (भारतस्थ विज्ञान के राष्ट्रीय संस्थान) द्वारा एक सभा बुलाई गई है। इसमें यू० एन० ई० एस० सी० ओ० (Unesco) के साउथ-एशिया को-ऑपरेशन कार्यालय की सहायता है। इस सभा को भारत के शिक्षा-मन्त्री मौलाना आजाद का आश्रय प्राप्त था।

इस सभा में भारत के प्रतिनिधि डॉक्टर मजूमदार का वक्तव्य था :

Dr R. C. Majumdar emphasized the necessity of distinguishing between empirical knowledge and scientific knowledge based on observations followed by systematized and classified conclusions.

श्री मस्तेकारजी भी इस सभा में उपस्थित थे। इन दोनों महानुभावों के Scientific Knowledge based on observations etc का एक उदाहरण हम पिछले अध्याय में दे चुके हैं।

श्री मस्तेकारजी ने इस सभा में भविष्य के साहित्यिक कार्य के लिये निम्न काल क्रम रखा था।

The table placed among others, the origin of Rigveda as between 2000 and 1500 B. C. of old Upanishads from 800 to 500 B. C. of Charaka 100 A.D. of Vedanga jyotisha, as 500 B. C. Dharmasutras from 600 to 200 B. C. and of Mahabharata Manusmriti and Ramayana between 200 B. C. and 200 A. D.

ये तिथियाँ भारतीय परम्पराओं के अनुसार सर्वथा गलत हैं। परन्तु मौलाना आजाद और अन्य स्वराज्य शासकों को ये ही विद्वान् ही उपलब्ध हो सके। ये लोग अंग्रेज इतिहास लेखकों को परमात्मा का अवतार मानते हैं।

विद्या भवन द्वारा लिखित The History and Culture of the Indian People के सम्पादन के लिये भी उक्त भारतीय विद्वान् ही मिले। विद्याभवन के संस्थापक श्री के एम मुन्शी हैं और उनके इस भवन द्वारा लिखित इतिहास के प्रथम भाग के सम्पादक हैं श्री आर सी मजूमदार जिन्होंने इस पुस्तक में रामायण इत्यादि को Traditional History और Events of pre-historic age लिखकर अपनी अज्ञानता का ही प्रदर्शन किया है। वे भारतीय इतिहास लेखन-शैली से अनभिज्ञ ही सिद्ध हुए हैं।

इसी पुस्तक की भूमिका में मुन्शी ने लिखा है

In the past, Indians laid little store by history। यह कथन भी इतिहास लिखने के भारतीय ढंग से अनभिज्ञता ही प्रकट करता है।

हमारा मत है कि आधुनिक पद्धति बहुधा गप्पों और कल्पनाओं से भरी पड़ी है। उसे वैज्ञानिक कहना विज्ञान का शत्रु बनना है।

विद्या भवन की उक्त पुस्तक में विदेशीय इतिहास लेखकों का ही अनुकरण किया गया है। वास्तव में श्री मजूमदारजी से किसी अन्य बात की आशा भी नहीं की जा सकती थी।

स्वराज्य के शासकों की प्रचार रीति प्रवृत्ति रखने का एक उदाहरण हम और देना चाहते हैं। उस विद्वानों को चुनौती देने वाले एक विद्वान् पंडित भगवद्दत्त का एक वक्तव्य हम यहाँ दे रहे हैं। उस पर किसी प्रकार की टीका टिप्पणि किये बिना हम इतना ही लिखेंगे कि पं भगवद्दत्त अनेकों ग्रंथों के रचयिता तथा दयानन्द महाविद्यालय लाहौर के भूतपूर्व अनुसन्धान वैदाध्यक्ष रिसर्च में पंजाब विश्वविद्यालय के कैम्प कालिज में प्राध्यापक थे और पंजाब विश्वविद्यालय के [illegible] । गए हैं। आप लिखते हैं

"सन् १६४ जन मास की २८ तारीख को मैं श्री डा राजेन्द्रप्रसादजी से मिला। इस मिलने का प्रयोजन विशेष था। वे (डा राजेन्द्रप्रसाद) Peoples History of India के प्रकाशन की योजना के संचालक थे। डॉक्टर जी से जो वार्तालाप हुआ उसका सार निम्न पत्र से ज्ञात हो जायगा। यह पत्र उनसे भेंट के तीन चार दिन पश्चात् लिखा था।

पत्र इस प्रकार है—

आदरणीय माननीय डिप्टर प्रसाद जी।

आपके साथ इतिहास विषयक जो वार्ता २८-१-४८ की सायं को हुई थी उसमें जो आदेश आपने दिया था तदनुसार निम्नलिखित परामर्शात्मक बातें संक्षिप्त रूप में लिखी हैं। आशा है आप इस पर विचार करके निर्णय से मुझे शीघ्र अवगत करेंगे।

इस समय भारतीय इतिहास लिखने के चार यत्न भारत में हो रहे हैं।

१ आप द्वारा (Peoples History) के रूप में।
२ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस द्वारा।
३ श्री मुंशी द्वारा।
४ मेरे द्वारा।

ये चारों स्वयं को निष्पक्ष और सत्य मार्ग का अन्वेषी कहते हैं। इनमें (१) और (२) लगभग सदृश प्रयत्न हैं। श्री मुंशी जी का प्रयत्न कुछ अन्य प्रकार का है। मेरे इतिहास में तो भारतीय परम्परा की सत्यता का दिग्दर्शन है। इस प्रकार ये यत्न तीन प्रकार के हैं। इनमें मत-विभिन्नता बहुत अधिक रहेगी। पुराने काल में विवादास्पद विषयों का निर्णय मित्र-व्यवहार-युक्त वाद में होता था। महान् सम्राट् ऐसे वादों का प्रबन्ध करते थे। चीनी-यात्री ह्युेन-सांग के यात्रा विवरण में ऐसे कई वादों का इतिहास मिलता है। वर्तमान युग में आपका स्थान वही है जो पुरातन काल में सम्राटों का था। यदि आप ऐसे वाद का प्रबन्ध न करेंगे तो महान् हानि होगी। जब हम सब का ध्येय एक है तो ऐसे आयोजन से लाभ ही होगा। लेखों द्वारा मनुष्य को अपने निर्बल पक्ष का उतना ज्ञान नहीं होता जितना वाद में हो जाता है। अतः आप इसका कोई उपादेय मार्ग अवश्य निकालें।

'यह काम अक्तूबर से दिसम्बर तक किसी मास में १५ दिन में हो सकता है।

"कुछ विद्वान् न्यायकर्ताओं की भी नियुक्ति करें। वे इतना मात्र घोषित करते रहें कि अमुक विषयों का उत्तर नहीं बना। उनके इतने कथन मात्र से ऐतिहासिक उन विषयों का उत्तर निकालने के लिए यत्नशील रहेंगे। उस वाद के लिए थोड़े से विषयों का संकेत मैं नीचे करता हूँ।

(१) भारत युद्ध घटना सत्य थी अथवा नहीं? भारत का युद्ध काल क्या था? महाभारत ग्रन्थ कृष्ण द्वैपायन रचित है या नहीं? इसके पाठान्तर और प्रक्षेप। शेक्सपियर के ग्रन्थों में पाठान्तर और प्रक्षेप होने पर भी वह कल्पित नहीं माना जाता।

(२) शौनक ऋषि का काल। भारत युद्ध के लगभग १ वर्ष पश्चात्।

पस समय कैसा पुराण संकलन हुआ ?

(३) पुराणों का प्रद्योत-वंश मागध प्रद्योत-वंश या उज्जयिनी का प्रद्योत वंश नहीं। इस विषय में रेप्सन और उसके अनुगामियों के मत की आलोचना।

(४) तथागत बुद्ध का काल।

(५) पुरातन जैन वाङ्मय में महावीर स्वामी जी का काल।

(६) शक काल का आरम्भ कब हुआ ?

(७) विक्रम काल का आरम्भ ?

(८) गुप्त काल का आरम्भ ?

(९) सिद्धसेन दिवाकर और संवत् प्रवर्तक विक्रम का काल। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित साहित्यिक प्रश्नों के विषय पर कुछ विचार आवश्यक होगा।

(१) वेद वेदों के चरण तथा शाखा ग्रन्थ और ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन कब हुआ ? इत्यादि।

"वार्तालाप में आपने एक बहुमूल्य बात कही थी। अर्थात् इतिहास में अपना पक्ष लिखकर दूसरे पक्षों का वर्णन अवश्य करना चाहिए। यदि यह बात मान ली जावे तो बहुत कल्याण हो सकता है। फिर वाद बहुत सरल हो जायेगा। पर आप द्वारा इतिहास का जो पष्ठ भाग प्रकाशित किया गया है उसमें इस बात का जान-बूझ कर वर्णन नहीं किया गया कि चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का एक नाम साहसांक था तथा उसका विक्रम् सवत से सम्बन्ध था। इस प्रकार की और बातें भी बताई जा सकती हैं अस्तु। आशा है जिस भाव से प्रेरित होकर मैंने यह प्रार्थना की है आप उस पर पूरा ध्यान देकर इस काम को सफल बनावेंगे।

आप कृपया ध्यान रखें कि यह काम राजनीतिक या सामाजिक इतिहास में ही अपेक्षित नहीं प्रत्युत दर्शनशास्त्र संस्कृत साहित्य आयुर्वेद वैदिक वाङ्मय आदि के इतिहासों में भी उपकारी होगा। इन सब विषयों के प्रतिपादन से भावी म कुछ-न-कुछ ऐक्य उत्पन्न होगा। इस समय जर्मन विचार का अनुयायी होकर जो सब कुछ लिखा जा रहा है, उसका परीक्षण होगा।

कृपा बनाये रखें।

भगवद्दत्त।

'डाक्टर जी ने पहिले ही कह दिया था कि उन्हें इस विषय में सफलता की आशा नहीं। फिर भी मुझे अपने सुझाव लिखित रूप में उन्हें दे देने चाहिएं।

इस लिखित पत्र का कोई उत्तर मेरे पास नहीं आया। मैंने जान लिया कि राष्ट्रपति जी सफल नहीं हुए। इतने मात्र से प्रकट हो गया कि पाश्चात्य मतों का अनुकरण करने वाले लेखक समानत विचार विनिमय से बहुत भयभीत होते हैं। सत्य भारतीय इतिहास के शीघ्र सर्वत्र प्रचलित होने का अन्तिम यत्न व्यर्थ गया। मैंने वृहद इतिहास के शीघ्र प्रकाशन का संकल्प दृढ़ कर लिया है।

यह तो हम नहीं कह सकते कि भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति जो इतिहास लिखाने में विशेष रुचि रखते थे इस कार्य मे सफल क्यों न हुए। इस पर भी भगवद्दत्त जी के उक्त कथन से एक बात स्पष्ट होती है कि पाश्चात्य पद्धति के विद्वान मूढ़ और भ्रम का भण्डार खड़ा कर रहे हैं। वे पहिले अंग्रेजी सरकार के आश्रय पर जीवित थे अब नेहरू सरकार पर आश्रित हैं।

जहाँ तक भारत के इतिहास और संस्कृति का प्रश्न है वर्तमान सरकार उतनी ही विरोधीय है जितनी अंग्रेजी सरकार थी। पंडित भगवद्दत्त जी यह चाहते हैं कि भारत का इतिहास मुख्यतया भारतीय धर्म शास्त्रों महाभारत रामायण तथा पुराणों के आधार पर तैयार किया जाय। विदेशियों के कथन तथा लेख दूसरी श्रेणी के प्रमाण हो सकते हैं। शिला-लेख मुद्राएं तथा पुराने नगरों के भग्नावशेष तो बहुत ही घटिया प्रमाण हैं। इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता। अथवा इससे जो कुछ भी हम चाहें सिद्ध कर सकते हैं।

पंडित जी के उक्त विचारों को आधार बना कर ही हम इतिहास में भारतीय परम्पराओं पर कुछ लिख रहे हैं।

विकासवाद

इतिहास की विकृति मे दो सैद्धान्तिक कारण हैं। हमने यह लिखा है कि योरोपीय पद्धति पर इतिहास लिखने वाले भ्रम-जनक इतिहास लिख रहे हैं। हमने यह भी लिखा है कि वर्तमान स्वराज्य सरकार भी उन लेखकों द्वारा प्रसारित भ्रान्ति में सहायक हो रही है। इस भ्रान्ति में दो सैद्धान्तिक कारण हैं। इस समय योरोपीय विद्वान मण्डली उन दो सैद्धान्तिक भूलो मे पड़ी हुई अपने भ्रान्त मार्ग को छोड़ने के लिए न तो उद्यत है न ही वह छोड़ सकती है।

वर्तमान भारत के शासक भी तो उन्ही सिद्धान्तों को मानने वाले हैं। अतः उनको अन्य कुछ भी करणीय प्रतीत नहीं होता। वे दो सैद्धान्तिक भूलें

है—विकासवाद और भौतिकवाद।

इस अध्याय में हम विकासवाद के विषय में लिखेंगे। यद्यपि ये दोनों सिद्धान्त अर्थात् विकासवाद और भौतिकवाद परस्पर आश्रित हैं इस पर भी ये स्वतः स्वतन्त्र रूपमें अपना अपना पक्ष उपस्थित करते हैं। इस कारण हम दोनों का पृथक्-पृथक् वर्णन करना चाहते हैं।

भारतीय परम्पराओं के अनुसार ये दोनों वाद असत्य हैं। विकासवाद कोई सिद्धान्त नहीं है। यह अभी वाद (मत) मात्र ही है। अंग्रेजी में इसको (theory) ही कहते हैं। थ्योरी उस मत को कहते हैं जिसके विषय में कोई निश्चयात्मक निर्णय न हो सका हो। सिद्धान्त उस मत को कहते हैं जिसके विषय में पूर्ण रूप से निश्चयात्मक निर्णय हो चुका है। विकासवाद (Evol tion theory) अभी एक वाद-मात्र है। परन्तु योरप के सब विद्याओं के विद्वान इस वाद को सिद्धान्त मान इसका प्रयोग मानव के सब कार्यों पर करने लगे हैं और जो कुछ भी तथा कहीं भी वाद के प्रतिकूल कुछ मिलता है उसको बिना विचार के त्याज्य मान लिया जाता है। इतिहास के क्षेत्र में यही कुछ हो रहा है।

विकासवाद में अभी तक कुछ भी प्रमाणित नहीं। जिनको प्रमाण कहा जाता है वे प्रमाण ही नहीं हैं। यही कारण है कि यह अभी वाद (Theory) मात्र ही है। इस पर भी इस वाद को सत्य मानकर इतिहास में तो अनर्थ किया जा रहा है। संसार में घटने वाली प्रत्येक घटना पर विकास वाद के सिद्धान्त का प्रयोग कर सत्य को असत्य के रूप में और असत्य को सत्य के रूप में परिणित किया जा रहा है। भारत की प्राचीन महानता को असत्य और काल्पनिक माना जाता है। यह इस कारण कि यह महानता विकास वाद में फिट' नहीं बैठती।

उदाहरण के रूप में यदि कहीं यह मिले कि कुछ दिव्य व्यक्ति आकाश में विचरते थे तो बिना इस विषय पर विचार किये इस पर हँस दिया जाता है। कारण यह बताया जाता है कि विकासवाद के अनुसार वर्तमान युग प्राचीन युग से उन्नत होना चाहिए।

अतः यह उचित समझा गया है कि पहिले इस विकासवाद की सत्यता प्रमाणिकता अथवा युक्ति-युक्तता पर विचार किया जावे।

विकासवाद का सब प म रूप है सरलता से जटिलता की ओर अविकसित अवस्था से विकसित अवस्था की ओर अनुपयोगी से उपयोगी दिशा की ओर तथा अज्ञानता से ज्ञान की ओर संसार का चलना।

विकासवाद को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक तो है एक-

कोषाणु (uni-cellular) प्राणी से मनुष्य जो एक अति जटिल प्राणी है का निर्माण और दूसरा भाग है एक असभ्य अविकसित मस्तिष्क वाले मनुष्य से रूस और अमेरिका के वैज्ञानिक का प्रादुर्भाव।

प्रथम भाग को दो शब्दों में कहा जाये तो वह यह है (Life from simple from to Complex form) सरल रूप के जीवन से विषम रूप के जीवन की ओर प्रगति।

एक प्राणी का सरलतम शरीर अमीबा (amoeba) है। यह एक कोषाणु जन्तु है। इस जन्तु का शरीर एक समभय गोलाकार कोषक (रवले) के समान है। इसमें तीन भाग होते हैं। एक है कोषक की दीवार (cell wall)। यह भाग दूसरे दो भागों से कड़ी होती है। यही इस प्राणी के शरीर का बाहरी रूप बनाती है। इस दीवार के भीतर एक प्रकार का अर्ध-तरल पदार्थ होता है। यह प्रोटा-प्लाज्म (Prota-plasm) कहलाता है। इस अर्ध तरल पदार्थ में कहीं-कहीं छोटे-छोटे वायु के बुलबुले भी पाये जाते हैं। परन्तु यह प्राणी के शरीर का आवश्यक अंग नहीं होते। ये वायु के बुल-बुले संख्या तथा परिमाण में न्यूनाधिक होते रहते हैं। कभी ये नहीं भी होते। इस प्राणी के शरीर का तीसरा भाग एक पीत रंग का अधिक ठोस बिन्दु मात्र पदार्थ होता है जिसको न्यूक्लियस (Neucleus) कहते हैं।

यह प्राणी स्वतन्त्रतापूर्वक अपने शरीर की आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता रखता है। ऐसा माना गया है कि इसमें विकास होकर अन्य सब जन्तु बने हैं। इस प्रारम्भिक कोषाणु की बनावट में तो अन्तर नहीं पड़ा। हाँ वे कोषाणु स्वतन्त्र जीवन छोड़कर इकट्ठे रहने का स्वभाव बना बैठे हैं। और अब इकट्ठे रहते हुए इन्होंने जीवन-भार का परस्पर बँटवारा कर लिया है। इस बँटवारे से ही उन्नत तथा जटिल प्राणी का अस्तित्व बना है। एक उन्नत प्राणी में शरीर की गतियों के लिए पाचन-क्रिया के लिए तथा शरीर की रक्षा के लिए पृथक-पृथक कोषाणु समूह कार्य करने लगते हैं। प्राणी का एक आवश्यक कार्य है जनन क्रिया। इस क्रिया से एक प्राणी दूसरे प्राणी का निर्माण करता है। उन्नत प्राणियों में इस कार्य के लिए पृथक कोषाणु समूह नियत होता है।

यह कहा जाता है कि पहिले एक-एक स्वतन्त्र कोषाणुओं से कोषाणु समूह (colonies of cells) बने। इन समूहों में रहते हुए भी ये कोषाणु स्वतन्त्र जीवन रखते थे। पीछे इन कोषाणुओं ने संयुक्त-जीवन (corporate life) अपनाया अर्थात् भिन्न भिन्न कोषाणु समूह जीवन के भिन्न-भिन्न कार्यों

में अपने को विशेषज्ञ (specialist) बनाने लगे। इससे प्राणी जो प्रारम्भिक कोषाणुओं का समूह मात्र होता है और जिसमें कोषाणु समूह ने भिन्न-भिन्न जीवनोपयोगी कार्य करने का स्वभाव बना लिया है, उन्नत हो गया माना जाता है।

यह है विकास प्रक्रिया का प्रथम अंग। विकास प्रक्रिया का दूसरा अंग है मनुष्य के जो एक सर्वाधिक जटिल प्राणी है एक जंगली (वन-मानुषी) अवस्था से न्यूयार्क अथवा लन्दन व मास्को में रहने वाला सभ्य नागरिक बन जाना। प्रारम्भिक मनुष्य का मस्तिष्क तथा शरीर भी सरल बनावट का टाँगें छोटी बाहें लम्बी सिर छोटा छाती और कमर झुकी हुई मानी गयी है और वर्तमान युग के उन्नत शरीर वाले मनुष्य की बनावट उससे भिन्न देखी जाती है।

यह है विकासवाद का दूसरा अंग।

विकासवाद के प्रथम प्रवक्ता एक डारविन नाम के व्यक्ति हुए हैं। लोग इस विकासवाद को विज्ञान-मूलक बताते हैं।

पहले हम विज्ञान का ही अर्थ लिखते हैं।

विज्ञान संस्कृत परिभाषा में तो आत्मा-परमात्मा विषयक ज्ञान को कहते हैं। वास्तव में किसी भी वस्तु के विशेष ज्ञान को विज्ञान का नाम दिया गया है। वर्तमान प्रचलन में विज्ञान का पर्यायवाचक शब्द साइन्स है और वर्तमान साइन्स एक विशेष प्रकार से प्राप्त ज्ञान का नाम है। जब परीक्षण कर इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के उपयोग में आ सकने वाले उपकरणों द्वारा प्रत्यक्ष किये प्रमाणों से कुछ सिद्ध परिणाम निकाले जायें तो इस प्रक्रिया को साइन्स कहते हैं। इसमें प्रथम अंग है इन्द्रियाँ। द्वितीय उपकरण (Apparatus) तृतीय है उपकरणों के प्रयोग का ढंग तथा उनसे निरीक्षण करने की क्षमता और अन्तिम अंग है उन उपकरणों से इन्द्रियों द्वारा जानी बातों पर विचार कर परिणाम निकालना। इस सब कुछ करने पर भी कोई सिद्ध बात विज्ञान मूलक नहीं समझी जा सकती जब तक कि उस बात के आधारभूत परीक्षण को पुनः दुबारा कर वैसे ही परिणाम निकलते न देख लिए जायें।

उदाहरण के रूप में किसी परीक्षणकर्ता ने गंधक के घोल में यशद (Zinc) डाल कर देखा कि एक प्रकार की वायु वेग से बनने और निकलने लगती है। यह वायु हाईड्रोजन (Hydrogen) होती है। पीछे जब भी गंधक के घोल में यशद डाला गया हाईड्रोजन वायु ही निकलती देखी गयी। इससे यह सिद्ध होता है कि गंधक के तेज़ाब में यशद डालने से हाईड्रोजन बन

जाती है। यह घटना वैज्ञानिक मानी जाती है और इस वक्तव्य को विज्ञान मूलक समझा जाता है।

जिस घटना को दुहराया नहीं जा सकता उसको सिद्ध अर्थात् वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। कई बार किसी घटना को देखकर एकधारणा बनाई जाती है। उस धारणा को अंग्रेजी में हाईपौथेसिस (Hypothesis) कहते हैं। इस धारणा को सिद्ध करने के लिए परीक्षण किये जाते हैं। बहुत से परीक्षणों के कल्पित कारण को वाद (theory) कहते हैं। जब तक कोई भी बात धारणा और वाद के स्तर पर रहती है यह वैज्ञानिक नहीं मानी जाती। वही धारणा अथवा वाद एक वैज्ञानिक सिद्धान्त (Scientific fact) माना जाता है जब उस वाद की सत्यता नये-नये परीक्षणों से सिद्ध की जा सके।

इस कसौटी पर विकासवाद अभी वाद के स्तर से ऊपर नहीं आया। इसको अभी तक सिद्धान्त और वह भी वैज्ञानिक सिद्धान्त का पद प्राप्त नहीं। इस पर भी विकासवाद अनीश्वरवादियों को परमात्मा तथा आत्मा के अस्तित्व को न मानने में एक बहाना प्रस्तुत करता है। इस कारण इस असिद्धवाद को सिद्धान्त (सिद्ध हो चुकी बात) मान कर ये लोग पूर्ण जीवन-मीमांसा को उलट पुलट करने में लग गये हैं। इसी आधार पर इतिहास को भी गलत करने का यत्न किया गया है।

विकासवाद के प्रथम अंग में यह माना जाता है कि एक-कोषाणु (uni-cellular) प्राणी से बहु-कोषाणु प्राणी तथा और कोषाणुओं के अपने अपने कार्य की विशेषज्ञता (Specialization) प्राप्त करने पर प्राणी अधिक और अधिक उन्नत हो गया है। अर्थात् प्राणियों की एक जाति से दूसरी जाति का निर्माण हुआ। बाघ से कुत्ता बना कुत्ते से बिल्ली बनी। इसी प्रकार बन्दर की किस्म के जन्तु से बनमानुष बना और बनमानुष से वर्तमान मनुष्य बन गया। ये परिवर्तन प्रकृति में संघर्ष का परिणाम होते हैं। संघर्ष में दुर्बल प्राणी (प्राणियों की जातियाँ) नष्ट हो जाते हैं और सबल प्राणी बच जाते हैं। ये संघर्ष भूख-प्यास और इन्द्रियों के सुख के हेतु होते हैं। इन संघर्षों में दुबलों के स्थान पर सबलों के आ जाने को विकास-वादियों ने प्रकृति के निर्वाचन (Natural Selection) का नाम दे दिया है।

विकासवाद के पूर्व भाग को संक्षेप में और सरल भाषा में लिखें तो यह इस प्रकार होगा—

प्राकृतिक पदार्थों का आदि और मूल पदार्थ ईथर (Ether) है। इसमें

तरंग उठने को विद्युत प्रकाश सम्भ और गर्मी मानी है। इसी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों को इलैक्ट्रोन (Electron) कहते हैं। इन इलैक्ट्रोन के संघात से ही विद्युत अथवा शक्ति के रूप बने। शक्ति का स्थूल रूप ही मैटर है। मैटर तीन अवस्थाओं में दिखाई देता है वायु तरल तथा ठोस।

ईथर से उत्पन्न पदार्थ घनीभूत होकर और आकर्षणानुकर्षण के नियम से चक्राकार गति में हो जाते हैं। कुछ समय में वही चक्र सूर्य हो जाता है। सूर्य में गर्मी और गति के कारण चक्कर (Ring) पड़ जाते हैं। तदनन्तर वे चक्कर पृथक होकर ग्रह बन जाते हैं। ग्रहों से इसी प्रकार उपग्रह उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार के ग्रहों में एक हमारी पृथ्वी है। यह पृथ्वी पहिले गर्म थी। धीरे-धीरे ठण्डी हुई। समुद्र बन उनसे भूमि निकली और जीवन आरम्भ हुआ।

उक्त प्रक्रिया का घटन तो पृथ्वी के बाहर हुआ है। इसको हम परीक्षण (Experiment) में ला नहीं सकते। परन्तु भूतल पर जो कुछ हुआ वह विकासवादियों के मतानुसार नीचे दिया जा रहा है। इसी में सन्देह है। उसी को हम अवैज्ञानिक असिद्ध केवल वाद मात्र कहते हैं।

पृथ्वी पर चेतन वस्तु उत्पन्न हुई और धीरे धीरे बढ़ी। उससे पूर्व न वनस्पति थी और न ही वस्तु। इन दोनों को उत्पन्न करने वाली थी चेतना (Life)। उसकी एक शाखा अमीबा (एक कोपाश वाला प्राणी) बन गया। अमीबा इतने बढ़े कि उनको खाने-पीने की कठिनाई होने लगी। इस कठिनाई को पार करने के लिए वे नाना प्रकार के प्रयत्न करने लगे। इन प्रयत्नों में जो शारीरिक बल और मानसिक अभ्यास से बलवान थे बच गये। वे फिर बढ़े। भोजन की तंगी के कारण संग्राम चलता रहा। योग्य बचे और अयोग्य मारे गये। बचे हुए सदा कुछ भिन्न प्रकार के थे। इनमें भी यही क्रम चलता गया और बहुत काल के पश्चात् मरते-बचते तथा परिस्थितियों के अनुसार आकार-प्रकार बदलते-बदलते मछली मेंढक सर्प पक्षी गाय बैल बन्दर वनमानुष और मानुष की उत्पत्ति हुई।

विकास के इस अंग पर हमें सन्देह है और इसी को हम अवैज्ञानिक कहते हैं।

इसके साथ वनमानुष से मनुष्य हब्शी रैड इण्डियन मोंगोलियन आर्य चीनी और जापानी बन गये। ये सब परिस्थितियों और संघर्षों में योग्य-अयोग्य होने के कारण हैं। इस भाग पर भी हमको संदेह है और इसका भी कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है।

विकासवाद की अप्रमाणिकता

विकासवाद में सबसे प्रबल युक्ति है सब प्राणियों में वैसे ही जीवित जीवाणुओं का होना जैसा अमीबा नाम का एक जीवाणु-जन्तु है। उन्नत प्राणियों के (मनुष्य के भी) शरीर में वैसी ही जीवाणु प्रोटो-प्लाज्म और न्यूक्लियस होते हैं जैसे अमीबा में देखे जाते हैं। इससे विकासवादियों का अनुमान है कि सरलतम प्राणी एक अमीबा और एक जटिल प्राणी (Higher animal) में अन्तर यही है कि एक जीवाणु वाले प्राणी मिलकर जुट गये हैं और फिर परस्पर काम विभाजन कर एक जटिल प्राणी बन गये हैं।

इस अनुमान में वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। इस सम्बन्ध में छिद्र हैं और वे वैज्ञानिक ढंग से पूर्ण नहीं किये गये।

(१) उदाहरण के रूप में विकासवादी समझ नहीं सकते कि प्रथम जीव का निर्माण कैसे हुआ। यह देखा जाता है कि जीव से ही जीव की उत्पत्ति होती है। अतः जब निर्जीव प्रकृति से ही सब कुछ बना है तो प्रथम जीव कहाँ से आया। इसका उत्तर वैज्ञानिकों के पास नहीं है।

सरलतम प्राणी अमीबा लगभग सोलह रासायनिक तत्त्वों (Chemical elements) का बना है। इनमें हाईड्रोजन, ऑक्सीजन और कार्बन मुख्य हैं। सब-के-सब रासायनिक तत्त्व जड़ हैं।

इन जड़ तत्त्वों का आज तक कोई ऐसा संयोग नहीं बनाया जा सका जो जीवन-युक्त (Living) अर्थात् चेतनामय हो। जीवका निर्माण हम नित्य प्राणी के द्वारा देखते हैं परन्तु बिना प्राणी की सहायता के इसका निर्माण होता न देखा गया है न ही कोई वैज्ञानिक ऐसा करके दिखा सका है।

(२) इसके साथ ही कुत्ते से कुत्ता बिल्ली से बिल्ली और घोड़े से घोड़ा होता देखा जाता है। यदि यह जटिल (उन्नत) प्राणी केवल मात्र जीवाणुओं का ही संग्रह होता तो बहुधा यह होना चाहिए था कि किसी जटिलतम जन्तु की सन्तान अधजटिल जन्तु भी हो जावे। ऐसा कभी होता नहीं। कभी अर्धनिर्मित सन्तान होती है तो वह जीवित नहीं रह सकती मर जाती है।

(३) योनि से जाति होती है। एक योनि से उसी योनि का प्राणी उत्पन्न होता है। वर्तमान वैज्ञानिक भी प्राचीन वैज्ञानिकों की भाँति एक योनि से दूसरी योनि वाले प्राणी के संयोग से सन्तानोत्पत्ति का यत्न करते रहे हैं। यह कोई नवीन बात नहीं। भारत में तो घोड़े और गधे से खच्चर उत्पन्न करने

में सफलता भी मिली थी। प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से यह भी प्रकट होता है कि अन्य वस्तुओं में भी ऐसे परीक्षण किये जाते थे। कलमी आम पैदा करने की तो बहुत पुरानी विद्या है। परन्तु यह प्रक्रिया विकासवाद के लिए प्रमाण प्रस्तुत नहीं करती प्रत्युत इसके प्रमाण तो विकासवाद का खण्डन करते हैं।

एक बात तो यह है कि जहाँ भी मिश्रित योनियों से जन्म उत्पन्न होते हैं वहाँ योनियों में समानता अत्यावश्यक है। गधा और घोड़ा प्रायः समान योनि हैं। भेड़िया और कुत्ता भी समान योनि हैं। बीज का आम और कलमी आम भी समान योनि हैं। गुलाब के फूलों में विभिन्नता अथवा रस और गंध में विभिन्नता भी समान योनि के कारण ही हो सकती है। यह तो सम्भव है कि नींबू और सन्तरे में पैवंद लग जाये परन्तु यह किसी ने करके नहीं दिखाया कि अखरोट और अमरूद में पैवंद लग जायें। अथवा आम और सन्तरे में पैवंद लग जाये।

इसके साथ यह भी देखा गया है कि मिश्रित योनि से उत्पन्न जन्तु आगे सन्तान उत्पन्न करने में अयोग्य होते हैं। गधे और घोड़े के संयोग से उत्पन्न खच्चर सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता। इसी प्रकार के बीज जो भेड़िया और कुत्ते की योनि के मिश्रण से बनते हैं वे आगे चलकर सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकते। इसी प्रकार जो फल अथवा फूल मिश्रित योनि के होते हैं उनके बीज पुनः जम कर पेड़ नहीं बनते। कलम से उनकी श्रेणी चलती है बीज से नहीं।

कभी बीज से पेड़ बनता भी है तो दो चार पीढ़ियों में यह दुर्बल हो सन्तान पैदा करने में अयोग्य हो जाता है।

इससे तो यही सिद्ध होता है कि प्रकृति में योनि परिवर्तन नहीं होता। कहीं होता भी है तो वह या तो सन्तानरहित होकर समाप्त हो जाता है अथवा एक-दो पीढ़ियों में समाप्त हो जाता है। किसी भी अवस्था में यहाँ कुछ भिन्नता रखने वाली योनियों के समागम से सन्तान होती है वे अपनी पृथक् एक योनि चलाने में समर्थ नहीं होती। मिश्रित योनि की सन्तान सन्तान उत्पन्न करने के अयोग्य हो जाती है। वनस्पतियों में भी यह देखा गया है। वनस्पतियों में यह विलक्षणता देखी गयी है कि एक पेड़ की शाख दूसरे पेड़ से जुड़ जाती है। यह इस प्रकार जैसे किसी का नाक कट जावे तो दूसरे मनुष्य का एक मांस का लोथड़ा काटकर पहिले के नाक पर जोड़ दिया जाय। एक प्रकार के गुलाब के पेड़ की शाखा दूसरे प्रकार के गुलाब के पेड़ की शाख के साथ लगा देने से एक ही पेड़ पर दो रंग के अथवा गंध के फूल उग पड़ते हैं।

परन्तु उनके गुलाब के बीज गुलाब का वैसा पेड़ उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं रखते।

यह तो सही सिद्ध करता है कि प्रकृति में योनि परिवर्तन का नियम नहीं। कुछ सीमा तक लगभग समान योनियों से मिश्रित सन्तान उत्पन्न की जा सकती है। परन्तु वह नवीन योनि बनाती नहीं।

ये परीक्षण तो विकासवाद का खण्डन करते हैं।

विकासवादी मानते हैं कि सब प्राणियों के जीवन के लक्षण समान हैं। अतः वे सब एक ही परिवार के सदस्य हैं। वे मानते हैं कि (क) सब के शरीर चेतन कोषाणुओं (Living cells) से बने हैं। पेड़ पौधे कृमि पतंगे मक्खी सांप छिपकली बन्दर रीछ मनुष्य इत्यादि सब प्राणियों के शरीर, इन चेतन कोषाणुओं का समूह हैं। (ख) सब प्राणी भोजन लेकर पचाकर उनको अपने शरीर का अंग बनाते हैं अर्थात् जीवित कोषाणुओं में परिवर्तित कर लेते हैं। (ग) स्वास्थ्य के लिए सब प्राणियों के प्रयत्न समान हैं। (घ) सब में सन्तानो त्पत्ति का प्रकार और प्रक्रिया समान है।

इन समानताओं से यह मान लिया गया है कि सब एक ही पिता अमोबा (Amoeba) की सन्तान है। यह मान्यता भी कोई दृढ़ प्रमाण पर अथवा परीक्षण पर आधारित नहीं। उपर्युक्त सब गुण जीवन के हैं शरीर के नहीं। जीवन-शक्ति समान है परन्तु शरीर में समानता नहीं। अतः शरीरों की उत्पत्ति का एक ही स्रोत मानने में कोई कारण नहीं। जीवन शक्ति तो आत्मा के कारण है। आत्मा सब में समान है। सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न ये आत्मा के गुण हैं। चेतनता का स्रोत आत्मा है। अतः यह सब में समान है। आत्मा की समानता प्रकट करने के लिए शरीर की बनावट में कहीं-कहीं समानता का आ जाना स्वाभाविक ही है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि भिन्न भिन्न प्रकार के शरीरों की उत्पत्ति का एक ही स्रोत है इसको मानने की आवश्यकता नहीं।

भारतीय विज्ञान यह मानता है कि शरीर पंच भौतिक है। परन्तु शरीर प्राणी नहीं है। सब शारीरिकों के शरीर पंच भौतिक होते हुए भी उनको एक ही योनि से उत्पन्न मानने में कोई कारण नहीं। पंच-भौतिक शरीर के निर्माण होने पर भी जब तक उसमें मन और आत्मा का संयोग न हो तब तक प्राणी नहीं बनता। सब प्राणी समान नहीं क्योंकि सब आत्माएं समान नहीं हैं।

इसी बात को हम वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में भी कह सकते हैं। रासायनिक तत्त्वों के संयोग से शरीर बनता है। परन्तु रासायनिक तत्त्व Chemical

elements) मिल कर प्राणी नहीं बना सकते। इन तत्वों के संयोग में जीवन-तत्व (आत्मा) के समावेश होने पर ही प्राणी बनता है। ये सब प्राणी समान नहीं। अतः यह एक ही योनि से उत्पन्न नहीं हुए। जहाँ शरीर भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं वहाँ आत्मा भी भिन्न-भिन्न है।

जीवन प्रवाह में समानता है। परन्तु प्राणी केवल आत्मा (जीवन तत्व) भी नहीं। दोनों के संयोग को ही प्राणी मानते हैं। यह संयोग योनि के भीतर होता है और आत्मा उसी शरीर मे प्रवेश करता है जो उसके कर्मफल के अनुकूल होता है।

आत्म-तत्व वर्तमान वैज्ञानिकों के उपकरणों में परीक्षण का विषय नहीं बन सका। जीवन-तत्व को ये लोग अपनी टैस्टट्यूब में निर्माण नहीं कर सके। यही कारण है कि ये प्राणी निर्माण नहीं कर सके। ये योनि के भीतर भी किसी भिन्न योनि से प्राणी नहीं बना सके और योनि के बाहर भी इसका निर्माण नहीं कर सके।

अतएव विज्ञान-वेत्ता भली भाँति जानते हैं कि विकासवाद वाद मात्र ही है और रहेगा। यह सिद्धान्त का पद ग्रहण नहीं कर सकता।

विकासवाद उच्चकोटि के वैज्ञानिकों को भी अमान्य

सन् १६१४ में लन्दन में वार्ल्डिंग हॉल में तत्कालीन सात परम मान्यनीय वैज्ञानिकों का एक सम्मेलन हुआ था। उन वैज्ञानिकों के नाम और परिचय इस प्रकार हैं।

(१) सर औलिवर जोसफ लोज एफ आर एस डी एस-सी० एल एल डी।

आप लिवरपूल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे। बिरहम्म विश्वविद्यालय के प्रिंसिपल फिजिकल सोसायटी लन्दन के प्रेजिडन्ट रिसर्च फिजिकल सोसायटी के प्रधान और ब्रिटिश एसोसिएशन के प्रधान थे। आपने विज्ञान पर अनेकों पुस्तकें लिखी हैं तथा अनेक उपाधियों व पदकों से विभूषित थे। आप वायरलैस व विद्युत शास्त्र के विशेषज्ञ थे।

(२) प्रोफेसर जान एम्बोज फलैमिंग एम ए डी एस-सी एफ आर एस

आप रायल कॉलिज में कैमिस्ट्री के डिमान्स्ट्रेटर नॉटिंघम कॉलिज में साइंस मास्टर लन्दन के डाक्टर आफ साइंस थे। यूनिवर्सिटी कॉलिज नौटिंघम

में गणित और विज्ञान के प्रोफ़ेसर, एडिसन कम्पनी के इलैक्ट्रिकल इन्जीनियर, मोरस कॉलिज के प्रोफ़ेसर, यूनिवर्सिटी कॉलिज लन्दन में इलैक्ट्रिकल इन्जीनियरिंग के प्रोफ़ेसर और मारकोनी कम्पनी के वैज्ञानिक सलाहकार थे।

रायल सोसायटी के फ़ैलो। अनेक ग्रन्थों के कर्ता और अनेकों पदक प्राप्त कर चुके थे। आप विद्युत विज्ञान के विशेषज्ञ थे।

(३) प्रो० डब्ल्यू० बी० बाटमली एम० ए० पी-एच० डी० एफ० एल० एस० एफ० सी० एस०। आप प्राणी शास्त्र के ज्ञाता थे। कार्टिकस किंग्स कालिज के प्रोफ़ेसर थे। कृषि शास्त्र के ज्ञाता और अनेकों पद तथा पदक प्राप्त कर चुके थे।

(४) प्रो० एडवर्ड हल एम० एस० डी० एफ० आर० एस०। आप जियो-लौजिकल सर्वे के मेम्बर, आयरलैण्ड भूगर्भ विभाग के डायरेक्टर, जियो-लौजिकल सोसायटी के प्रतिनिधि, एटलांटिक में कई टापुओं की खोज करने वाले तथा अनेकों भूगर्भ सम्बन्धी कार्यों के ज्ञाता हैं।

(५) जॉन एलन हार्कर डी० एस-सी० एफ० आर० एस०। आप गर्मी और विद्युत के विशेषज्ञ, विज्ञान सम्बन्धी अनेकों समितियों के सदस्य, प्रधान और कार्यकर्ता थे।

(६) प्रो० अर्नेस्ट विल्सन बरट्रैंड एम० ए० एल-एल० डी० एफ० आर० सी० पी० एफ० आर० एस० ई०। आप कैम्ब्रिज मैडिकल यूनिवर्सिटी में मेडीसीन के प्रोफ़ेसर, रायल मैडिकल सोसायटी के प्रधान और माइक्रोस्कोपिक सोसायटी के प्रतिनिधि, रायल कॉलेज के डायरेक्टर और मैडिकल विभाग के विशेषज्ञ थे।

(७) प्रोफ़ेसर सिलवनिस फ़िलिप्स थाम्पसन बी० ए० एम० डी० एस० एल० डी० डी० एस-सी० एफ० आर० एस०। आप लन्दन यूनिवर्सिटी में फ़िज़िक्स के प्रोफ़ेसर, विद्युत और भौतिक-विज्ञान के विशेषज्ञ थे।

ये सातों विद्वान प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता थे। इनकी बात उस समय वैज्ञानिक संसार में वैसे ही मान्य थी, जिस प्रकार भारत में ऋषियों की। तीन दिन तक उक्त वैज्ञानिकों ने अधिवेशनों में ईश्वर, जीव, धर्म और विकासवाद इत्यादि विषयों पर विचार किया। जो कुछ उन्होंने वहाँ कहा, वह Science and Religion (धर्म और विज्ञान) नामक पुस्तक में छपा है। उनके ये विचार तब तक की स्थिति के सूचक (up to date) थे।

ऐसा सम्मेलन उसके पश्चात् संसार के किसी भाग में अभी तक नहीं हुआ। इसके पश्चात् विज्ञान ने उन्नति तो बहुत की है, परन्तु इस दिशा में जिस

पर इस सम्मेलन में विचार हुआ इंच मात्र भी प्रगति नहीं हुई।

इस सम्मेलन में प्रोफेसर आटमसी का एक कथन इस प्रकार था—

The old materialistic school Heckel s school if you like—which let me tell you is hopelessly out of date and antiquated (Science and Religion P 63)

हैकल का यह पुराना भौतिकवाद अप्रामाणिक और युग से दूर रह गया है।

हैकल ने उससे पहिले एक पुस्तक लिखी थी—The Riddle of Universe। उस पुस्तक का उत्तर भी दिया जा चुका था। The old Riddle and the Newest answer धर्म और विज्ञान नामक पुस्तक में उक्त काम्फरेन्स में कहे एक अन्य वाक्य में लिखा गया है—

Not very long ago it was to some extent fashionable in scientific circle to be an Agnostic But today a man who glories in his ignorance is blamed and lionised. The attitude is quite out of fashion Thanks to the labours of science Science and Religion Page 85-86

अर्थात्—कुछ ही काल पहिले वैज्ञानिक समुदाय में नास्तिक होना फैशन बन गया था। परन्तु आज उसको जो अपनी अज्ञानता में गर्व करता है मूर्ख कहा जाता है। यह प्रशंसा का पात्र नहीं माना जाता। यह दृष्टिकोण अब फैशन नहीं रहा। विज्ञान के प्रयासों का धन्यवाद करना चाहिए।

इस पुस्तक में एक अन्य स्थान पर लिखा है।

And it is just here that religion completes the wonderful story of evolution gives us the purpose of the universe and reveals *the enternal energy behind* all not as simply an Impersonal infinite Energy which is non-material something but reveals the infinite as a personal God. (Science and Religion P 86)

विकासवाद की अद्भुत कहानी धर्म में आकर समाप्त होती है। यह हमको बताता है कि इस ब्रह्माण्ड का क्या उद्देश्य है और प्रकट करता है कि इस सब के पीछे कौन सी अनादि शक्ति काम करती है। यह शक्ति केवल जड़ और असीम नहीं है। यह कुछ ऐसी है जो केवल जड़ नहीं। यह साक्षात् परमात्मा है।

एक अन्य महोदय कहते हैं—

To sum up this part of our argument we can say that scientific study must certainly show us the presence in this physical universe of an order stability directing power and Intelligibility and capability of being under-stood by us. These qualities are not spontaneously produced. They do not come by chance They are not the the result of mere accident. They always imply thought and Intelligence This universe is not merely a thing; it is a thought and thought implies and necessitates a thinker Hence there is in this universe a supreme thinker or Intelligence of which our own intell gence is but the faint copy and image (Sc. and Rel. P-43)

अर्थात्—इस विषय में अपनी युक्ति का निष्कर्ष निकालते हुए हम कह सकते हैं कि विज्ञान का अध्ययन हमको निश्चय रूप से बताता है कि इस जड़ संसार में एक-विधान स्थिरता पथ प्रदर्शिता ज्ञान और शक्ति विद्यमान है जो हम समझ सकते हैं। संसार में ये गुण स्वयंभू नहीं न ही ये सहसा आ गये हैं। ये घटनावश भी नहीं। उनमें विचार और ज्ञान निहित है। यह संसार केवल मात्र एक वस्तु नहीं है। यह एक विचारित आयोजन है और विचार के पीछे विचार करने वाला होना आवश्यक है। ऐसे विचारक के लिए आवश्यक है कि वह ज्ञानवान् हो। अतः इस ब्रह्मांड में एक महान् ज्ञानवान विचारक उपस्थित है जिसकी हम एक धीमी-सी प्रतिलिपि मात्र और परछाईं मात्र हैं।

उक्त उद्धरणों से यह तो विदित होता है कि पाश्चात्य विज्ञान-वेत्ता भी इस जड़ संसार के पीछे किसी अनन्त सर्वज्ञ आत्मशक्ति का ज्ञान करते हैं परन्तु वे अभी भी उस दूरी तक नहीं पहुँच सके जो वेद और उपनिषद् में प्राप्त हो चुकी है।

ईशा वास्यमिदꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

इस वेद वाक्य का ही उक्त वैज्ञानिकों ने समर्थन किया है।

एक पुस्तक *The nature and origin of life* पृष्ठ १७१ पर विज्ञ लेखक लिखता है—

Dead matter cannot become living without coming under the influence of matter previously living This seems to me

as sure a teaching of science as the law of gravitation

अर्थात्—एक जड़ पदार्थ किसी अन्य जड़ पदार्थ के जो चेतन हो प्रभाव में आये बिना चेतनता प्राप्त नहीं कर सकता। मुझको यह नियम वैसा ही वैज्ञानिक प्रतीत होता है जितना कि भू-आकर्षण का नियम है।

एक अन्य पुस्तक Evolution by P Geddes पृष्ठ ७ में लिखा है—

Some authorities who have found satisfaction in the Meteorite Vehicle-Theory have also suggested that life is as old as matter

अर्थात्—वे लोग भी जो जीवन को दूसरे तारागण से आया बताते हैं यह मानते प्रतीत होते हैं कि जीवन उतना ही पुराना है जितनी कि यह प्रकृति।

डाक्टर गॉल जो मस्तिष्क शास्त्र (Phrenology) के जन्मदाता हैं लिखते हैं—

In my opinion there exists but one single principle which sees hears, feels, loves thinks remembers, etc. But this principle requires the aid of various material instruments, in order to manifest its respective functions.

अर्थात्— मेरी सम्मति में मस्तिष्क में एक ही तत्व रहता है जो देखता है सुनता है अनुभव करता है विचार करता है स्मरण करता है इत्यादि। इस तत्व को भिन्न-भिन्न पार्थिव यन्त्रों की आवश्यकता रहती है जिससे वह अपने भिन्न-भिन्न कार्य सम्पादन करता है।

यहां डॉक्टर गॉल आत्मा की अनुभूति करते हैं। उपनिषद् में तो स्पष्ट लिखा है—

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता
रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः।

अर्थात्—देखने वाला छूने वाला सुनने वाला चखने वाला मनन करने वाला और कार्य करने वाला विज्ञानी आत्मा है।

ऐसा प्रतीत होता है कि जड़वादी पक्ष दुर्बल पड़ता जाता है। ज्यों-ज्यों भौतिकवाद उन्नति करता जाता है जड़ के अतिरिक्त एक चेतन शक्ति का भास होता जाता है। मृत-आत्मा अथवा प्रेतात्मा बुलाने की भी बातें हो रही हैं। इस विषय में साइंस के आचार्य ओलिवर लॉज सबके अग्रणी रहे हैं। वे कहते हैं—

Once you realise that the consciousness is something grea ter something outside the particular mechanism which it makes use of you realise that survival of existance is natural, is the simplest thing It is unreasonable that the soul should jump out of existance when the body is destroyed. We ourselves are not limited to the few years that we live on this earth. We shall go on with-out it. We shall certainly continue to exist we shall certainly survive Why do I say that ? I say it on definite scientific grounds. (Sc. Rel page 24)

अर्थात्—एक बार आप इसको देखें कि अन्तःकरण बड़ी वस्तु है। यह इस मशीन (शरीर) से बाहर की वस्तु है। ऐसा नहीं है कि जब शरीर नष्ट हो जाता है तब यह आत्मा अस्तित्व खो देता है। हम जितने दिन पृथ्वी पर रहते हैं उतने ही दिनों के लिए हमारा अस्तित्व सीमित नहीं है। हम बिना शरीर के भी रहेंगे। हमारा अस्तित्व बना ही रहेगा। मैं क्यों ऐसा कहता हूँ? इसलिए कहता हूँ कि ये सब बातें निश्चित विज्ञान के आधार पर स्थित हैं।

हमने पिछले अध्याय में यह कहा था कि प्राणी में शरीर के अतिरिक्त आत्मा है। उक्त वैज्ञानिकों के कथन से हमारा पक्ष समर्थित है। वेद उपनिषद् तो यह कहते ही हैं। हाँ पाश्चात्य विज्ञान भी जिसको भौतिकवाद का आधार माना जाता है आत्मवाद की ओर आता प्रतीत होने लगा है।

हमने यह भी कहा था कि एक बार हम सर्वशक्तिमान परमात्मा को इस जगत का कर्ता मान लें तो फिर विकासवाद के मानने की आवश्यकता नहीं रह जाती। विकासवाद वैज्ञानिक रूप में अभी केवल वाद मात्र है। अर्थात् यह निश्चित सिद्धान्त हो गया है अभी कहा नहीं जा सकता। दूसरी ओर आत्मा और परमात्मा का अस्तित्व इस वाद का खण्डन करता है।

यह प्रश्न उठ सकता है कि जब सब प्राणियों के शरीर पंच-भौतिक हैं और सब में जीवात्मा समान है तो फिर सब को एक ही योनि से उत्पन्न क्यों नहीं मान लिया जाता? जब तक कोई प्रमाण न हो कोई परीक्षण उसको सिद्ध न करे मानने में कोई कारण नहीं। प्राणी की आत्मा अपने पूर्व जन्म के कर्मों के फल से वर्तमान शरीर में आती है। अतः जब अभी एक योनि थी तब उन सब के कर्म एक समान थे माना नहीं जा सकता।

आत्मा अमर है। पृथ्वी के नष्ट हो जाने पर भी यह रहेगा यही तो सर ओलिवर लॉज ने अपने उक्त कथन में कहा है। जब यह है तो सृष्टि के आदि

में भी अनेकों प्रकार की योनियाँ मानने से ही बात समझ में आ सकती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि डॉक्टर डारविन नास्तिक थे और अपने नास्तिक वाद के समर्थन में वैज्ञानिक प्रमाण ढूंढते-ढूंढते विकासवाद का प्रपंच बना बैठे। उस समय योरुप में भौतिकवादियों का बोलबाला था और उन्होंने विकासवाद को अपना समर्थक जान इसकी डुग्गी पीटनी आरम्भ कर दी।

पीछे जब विचारवान वैज्ञानिकों ने इस विषय पर विचार किया तो वे इसके विपरीत परिणामों पर पहुंचे।

भारतीय परम्परा है—ऋग्वेद १ ४८ ५ में लिखा है—

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदाचन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥

मैं (परमात्मा) परमैश्वर्यवान सूर्य के सदृश जगत् का प्रकाशक हूँ। कभी पराजय को प्राप्त नहीं होता। कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। मैं ही जगत् रूप धन का निर्माता हूँ। सब जगत की उत्पत्ति करने वाला हूँ। हे जीवो मुझे समझो और मानो।

जब परमात्मा ही सृष्टि का रचयिता है और वह ज्ञानवान है तो फिर विकास की प्रक्रिया एक निरर्थक बात रह जाती है।

इसी प्रकार जब आत्मा है तो कर्मफल भी है तथा पुनर्जन्म भी। कर्म भिन्न भिन्न प्रकार के होने से भिन्न-भिन्न योनियाँ भी हैं। इस सब के अति-रिक्त विज्ञान ने अभी तक यह सिद्ध नहीं किया कि शरीरों में मूल परिवर्तन हो रहा है अथवा हो सकता है।

इस प्रकार जब प्रथम जीव की उत्पत्ति के विषय में सम्भावना और अनुमान से कार्य लेते हैं और प्रथम अमीबा का इस भूतल पर आना किसी भी विज्ञान के सिद्धान्तों से समझ में नहीं आता तो हमारा यह कहना है कि जब अमीबा बन सकता है तो उसी प्रकार से मानव भी बन सकता था। भारतीय परम्परा के अनुसार प्राणि-सृष्टि कैसे हुई इसका वर्णन तो आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ तो इतना कहना ही अभीष्ट है कि जो प्रक्रिया विकासवादी बताते हैं, वह ठीक नहीं।

इस स्थान पर एक वैज्ञानिक का मत लिखकर यह अध्याय समाप्त कर दिया जायेगा। डॉक्टर अगासिज (Agassiz) ने अपनी पुस्तक Principles of Zoology में लिखा है—

There is manifest progress in the succession of being on the surface of the earth. This progress consists in an increas-

ing similarity of the living fauna, and among the vertebrates, especially in their increasing resemblance to man.. .... But this connection is not the consequence of a direct lineage between the fauna of different ages. There is nothing like parental descent connecting them. The fishes of the palaeozoic age are in no respect the ancestors of the reptiles of the secondary age nor does man descend from the mammals which preceded in the Tertiary age. The link by which they are connected is of a higher and immaterial nature and Himself whose aim in forming the earth, in allowing to undergo successively all the d fferent types of animals which have passed away was to introduce man upon the surf ce of our globe. Man is the end towards which all the animal-creation has tended from the first appearance of the Palaeozoic fishes. (Principles of Zoology by Agassiz, Page 205 706)

अर्थात्—पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले बिना हड्डियों के जन्तुओं और मनुष्य आदि हड्डीदार जन्तुओं में एक समान ही उन्नति हो रही देखी जाती है। परन्तु इस समानता का यह अर्थ नहीं कि एक प्रकार के प्राणी दूसरे प्रकार के प्राणियों से विकसित हुए हैं। आदिम कालीन मत्स्य ही सर्पजातीय प्राणियों के पूर्वज नहीं हैं और न ही मनुष्य ही अन्य स्तनधारियों से जो टरशरी युग में थे पैदा हुआ है। भिन्न-भिन्न प्राणियों में सम्बन्ध एक उच्च अभौतिक तत्व के (परमात्मा) कारण है। परमात्मा का उद्देश्य इस सब कुछ परिवर्तन करने का मनुष्य को यहाँ उत्पन्न करना था। मनुष्य वह अंत है जिसकी ओर पूर्ण प्राणी जगत् चल रहा है।

यदि इस वक्तव्य के साथ हम अपनी ओर से इतना और जोड़ दें कि यह जो कुछ हो रहा है प्राणी के केवल दिखाई दे रहे जन्म में ही नहीं होता प्रत्युत जन्म-जन्मान्तर में होता है तो उक्त कथन जोड़ वाले भारतीय जीवन मीमांसा के अनुसार ही माना जायेगा।

इस पर भी यह तो स्पष्ट है कि यह प्राणीशास्त्र का विद्वान् विकास वाद को उस रूप में नहीं मानता जिस रूप में अन्य वैज्ञानिक मानते हैं।

इस अध्याय में यही सिद्ध किया गया है कि विकासवाद अभी सिद्धान्त अर्थात् कोई सिद्ध बात नहीं। अनेकों योरोपियन वैज्ञानिक भी इस विचार को गलत मानते हैं।

विकासवाद के कुचक्र का खण्डन

इस पर भी अमकचारे वैज्ञानिक इसका परमसिद्ध सिद्धांत मान अपनी-अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगे हैं। सबसे दोषपूर्ण बात तो यह हो रही है कि इस प्रयुक्ति-सगत असिद्ध सिद्धान्त को लेकर मानव-इतिहास को भी विकृत किया जा रहा है। वे इतिहासज्ञ जो प्राणी-शास्त्र का क-ख भी नहीं समझते विकासवाद के आधार पर मानव इतिहास की कल्पना कर यह मानने लगे हैं कि आदि काल में मनुष्य जंगली जानवरों की भाँति पेड़ों पर रहता था। इस जंगली-अवस्था में वह मन बुद्धि और शरीर से भी अविकसित दशा में था। वह उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ वर्तमान अवस्था में ज्ञान-विज्ञानयुक्त उन्नत मन और बुद्धि वाला प्राणी बन गया है।

इस विकासवाद की मानव-इतिहास पर छाया पड़ जाने से यह माना जाने लगा है कि प्राचीन धर्म तथा ज्ञान-विज्ञान आज से निम्न कोटि का था। उसमें किसी प्रकार की भी श्रेष्ठता दिखाने का यत्न मूर्खता और पक्षपात का द्योतक हो गया है।

इस विकासवाद के विचार से आज का मानव और उसका ज्ञान प्राचीन मानव और उसके ज्ञान से अति श्रेष्ठ माना जाने लगा है। यह सब असत्य है। प्रमाण इसके विरुद्ध जाते हैं। भाषा के विषय में तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यह विकसित होकर उन्नत नहीं हुई, प्रत्युत अवनत और अधोगति की अवस्था को पहुँची है।

भाषा के दो अंग हैं। बोलने वाली तथा लिखने वाली। अर्थात् बोली तथा लिपि। पहिले बोली की ही बात पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि प्राचीन भाषाएँ योगात्मक और विभक्ति-युक्त स्थिति से अवनत होकर अब एकाक्षरात्मक हो गई हैं।

संस्कृत भाषा अति प्राचीन भाषा है और यह योगात्मक भी है और विभक्तियुक्त भी। उदाहरण के रूप में 'गच्छामि' 'गच्छसि' इत्यादि शब्दों को देखा जा सकता है। ये शब्द विभक्तियुक्त हैं। हिन्दी में इन भावों को प्रकट करने के लिए "जाता हूँ" तथा "जाता है" शब्द हैं। हिन्दी एकाक्षरात्मक है। इसी प्रकार ग्रीक और लैटिन विभक्तियुक्त भाषाएँ हैं और उनसे बनने वाली अंग्रेजी भाषा एकाक्षरात्मक है। अब संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी की तुलना करें तो प्राचीन से नवीनतम की ओर 'प्रगति' का स्वरूप स्पष्ट हो जायेगा।

संस्कृत	हिन्दी	अंग्रेजी
करोति	वह कर रहा है	He is doing
गृहाणाम	घरों का	of (the) houses
जिगमिषति	वह जाना चाहता है	He desires to go

यही बात सब स्थानों पर पायी जायेगी। प्राचीन से नवीन भाषा कम और कम संश्लेषणात्मक (compact) होती जाती है। विचार का विषय है कि ऐसा क्यों ? संश्लेषणात्मक उन्नति का लक्षण है अथवा अवनति का ? यह विकास का लक्षण है अथवा अविकसित होने का ? हमारा यह मत है कि आदि-काल में मनुष्य अधिक बुद्धिशील अधिक उन्नत मस्तिष्क वाला और अधिक स्मृतिशील था। तब की भाषा का योगात्मक और विभक्तियुक्त होना इसका प्रमाण है। आज का मानव बुद्धि में तथा स्मरणशक्ति में हीन हो गया है। इस कारण इसकी भाषा भी विश्लेषणात्मक (विखंडित) होती जाती है। भाषा का ह्रास मनुष्य की मस्तिष्क सम्बन्धी शक्तियों का ह्रास प्रकट करता है।

यही बात लिपि की है। लिपि के भी दो अंग हैं। एक वर्णमाला और दूसरे लिपि। लिपि तो लिखने के साधनों पर निर्भर करती है। यह मनुष्य के शरीर और शक्तियों के विकसित अथवा अविकसित होने से सम्बन्ध नहीं रखती। साधनों का सम्बन्ध आवश्यकताओं से है। आवश्यकताओं में वृद्धि शरीर मन और बुद्धि में विकास के लक्षण नहीं प्रत्युत उनके अविकसित होने के लक्षण हैं।

इस बात को तनिक विस्तार से बताने की आवश्यकता है। आवश्यकताओं में वृद्धि मन और बुद्धि के उन्नत होने के लक्षण नहीं। उदाहरण स्वरूप एक टेडी-बॉय (टीपटाप रखने वाला व्यक्ति) नैक-टाई, कालर के बिना बाजार में निकलना अनुचित अथवा अशिष्टता मानता है। इसके विपरीत एक फ़िलॉसफर (मीमांसक) इनको अनावश्यक वस्तुएं समझता है। वह पहिनने के लिए कुरता पायजामा पर्याप्त मानता है। अब विचार करें कि नैक-टाई कालरों की आवश्यकता और फिर उनके बनाने के लिए कारखानों का आविष्कार उन्नत मन के लक्षण हैं अथवा अवनत मन के ? इसी प्रकार अन्य आवश्यकताओं के विषय में कहा जा सकता है। तनिक गम्भीरतापूर्वक विचार किया जावे तो आवश्यकताओं में न्यूनता ही विकसित मन के लक्षण प्रतीत होंगे।

यही बात लिपि की है। लिपि अक्षरों के आकार को कहते हैं। इसका सम्बन्ध आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति के साधनों के आविष्कार के साथ है।

यदि आविष्कृत उपकरणों का विचार छोड़ दें तो प्राचीन लिपि अधिक उपयुक्त प्रतीत होने लगेगी ।

यही बात वर्णमाला की है । प्राचीनतम भाषा संस्कृत की वर्णमाला अधिक-से-अधिक बोले जा सकने वाले स्वरों का प्रतिनिधित्व करती है और फिर उनका श्रेणीबद्ध किया जाना उनके आविष्कार करने वालों के उन्नत मस्तिष्क का ही सूचक है । स्वर पृथक है और व्यंजन पृथक । स्वर क्रमबद्ध हैं । तथा क्रमबद्ध है । अ-आ साथ-साथ हैं इ-ई साथ-साथ । इसी प्रकार अन्य स्वर हैं ।

व्यंजन अक्षरों का भी क्रम इसके आविष्कार करने वाले के उन्नत मस्तिष्क का सूचक है । क ख ग घ ङ गले से बोले जाने वाले व्यंजन एक स्थान पर रख दिये गये हैं और दन्तव्य त थ द ध न पृथक रखे गये हैं । इसके विपरीत निवान्त आधुनिक भाषा (Most modern language) की वर्ण संख्या और उनका क्रम देखें तो एक अविकसित मस्तिष्क की उपज ही समझी जायेगी । स्वर केवल पाँच हैं a e i o u । शेष स्वरों के लिए, दो-दो तीन तीन स्वरों का संयोग करना पड़ता है । व्यंजन भी कम हैं । कई ध्वनियों को लिखने के लिए दो-दो तीन-तीन व्यंजन मिलाने पड़ते हैं । उदाहरण के रूप में च के लिए ch दो व्यंजनों का प्रयोग किया जाता है । छ के लिए chh तीन का ।

इसके साथ ही अंग्रेजी भाषा की वर्णमाला में अक्षरों का क्रम तो सर्वथा युक्ति-रहित है । यह आरम्भ होती है a एक स्वर से । a के पश्चात् आता है एक व्यंजन b । फिर a b c d चार वर्ण लिखने के बाद पुनः एक स्वर आ जाता है e ।

कहने का अभिप्राय यह है कि प्राचीन से नवीन विकास (improvement) का लक्षण नहीं प्रत्युत ह्रास (deterioration) का लक्षण है । यह क्यों है ? यह स्पष्ट रूप में मानव शक्तियों (बुद्धि मस्तिष्क स्मरण शक्ति) के ह्रास का सूचक है । मनुष्य में विकास नहीं हो रहा ह्रास हो रहा है ।

विकासवादियों का कहना है कि Natural selection से अथवा Survival of the fittest के सिद्धान्त से अधिकाधिक उन्नत और जटिल प्राणी बचे रहते हैं । और दुर्बल तथा अयोग्य मृत्यु का ग्रास हो जाते हैं । भाषा के अध्ययन से तो उल्टी बात प्रतीत होती है ।

भाषा का घना सम्बन्ध ज्ञान से है । भाषा का आविष्कार ही मानव ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने के लिए हुआ है । यदि प्राचीन काल की भाषा आज की भाषाओं से समुन्नत थी तो निःसन्देह तब का ज्ञान भी आज के ज्ञान से समुन्नत रहा होगा ।

इस प्रकार हमने विकासवाद जिसको मानकर इतिहासज्ञों ने इतिहास को विकृत करने की कमर कसी हुई है को मिथ्या सिद्ध कर दिया है।

भौतिकवाद—इतिहास की विकृति का दूसरा कारण

मानव-इतिहास को विकृत करने में दूसरा कारण है भौतिकवाद। इसके अनुयाइयों को बहुत कुछ ठीक बात गलत लगने लगी है और गलत ठीक। मनुष्य का मस्तिष्क और इन्द्रियाँ कैसे काम करती हैं? शरीर का संचालन स्वयमेव ही होता है अथवा शरीर के अतिरिक्त कुछ अन्य वस्तुएँ इसका संचालन करती हैं? इसका ठीक अथवा गलत ज्ञान भी मानव-इतिहास पर अपनी छाप लगा रहा है। कम-से-कम ऐतिहासिक घटनाओं का अर्थ तो कुछ-का-कुछ लग जाता है।

यह माना जाता है कि जो कुछ इन इन्द्रियों से जाना जा सकता है उससे अधिक उसका कुछ अस्तित्व नहीं। साथ ही यह भी माना जाता है कि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान में भूल नहीं हो सकती।

यह ठीक है कि इन्द्रियों के ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत करने के लिए अनेकों उपकरण बनाये गए हैं। उदाहरण के रूप में दूरवीक्षणयंत्र अथवा सूक्ष्मवीक्षण यंत्र से अनेक ऐसे पदार्थों को दृष्टि-क्षेत्र में लाया गया है जो केवल आँख का विषय नहीं थे। इसी प्रकार टैलीफोन तथा टैलीग्राफ द्वारा उन शब्दों को सुना जा सकता है जिनको अन्तर के कारण अथवा धीमा होने के कारण हम पहिले सुन नहीं सकते थे। परन्तु सुनने तथा देखने वाले कान और आँखें ही हैं और जो कुछ हमारे नाक कान आँखें इत्यादि उपकरणों के प्रयोग से भी अनुभव नहीं कर सकते उनका अस्तित्व है ही नहीं।

इसका परिणाम यह हुआ है कि एक विशाल-ज्ञान क्षेत्र जो इन्द्रियों के अतिरिक्त योग ध्यान समाधि से उपलब्ध किया जा सकता था अस्तित्वहीन हो गया है। इन्द्रिय-ज्ञान को ही पूर्ण ज्ञान मान योरुप के वैज्ञानिक जीवन रहस्य (Life) को समझने का प्रयास कर रहे हैं। यह अभी तक सम्भव नहीं हुआ। प्रत्येक पग जो वर्तमान विज्ञान मानव ज्ञान (इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान) के प्रसार की ओर उठाते हैं वह उनको जीवन रहस्य को सुलझाने वाला प्रतीत हो रहा है। ऐसा योरुप में रिनेसाँ काल के आरम्भ से ही माना जा रहा है। भौतिक-ज्ञान में असीम उन्नति हो जाने पर भी वे (वैज्ञानिक) अभी जीवन के

रहस्य तक नहीं पहुँच सके। सांसारिक वस्तुओं का विश्लेषण करते-करते वैज्ञानिक केवल ६ रासायनिक तत्वों को ही पूर्ण चर अचर जगत् का कारण मानने लगे थे। सब वस्तुओं को वे इन ६ तत्वों के *सूक्ष्मतम कणों (atoms)* से बना हुआ मानते थे। अब वे इन ६ प्रकार के *रासायनिक कणों* (atoms) को केवल तीन प्रकार के अति सूक्ष्म कणों (Electron Proton and neutron) से बना मानने लगे हैं। इस पर भी जीवन के रहस्य तक उनकी पहुँच नहीं हुई। अभी वे प्राणी के प्राण के अस्तित्व तक नहीं पहुँच पाये। एक जीवित कोषाणु (Living cell) में क्या वस्तु है, जो उसमें जीवन के लक्षण निर्माण करने वाली है वे जान नहीं सके।

योरुप के रिनेसां काल से पूर्व यह माना जाता था कि स्थूल-पृथ्वी स्थूल-जल स्थूल वायु व स्थूल-अग्नि के संयोग से ही पूर्ण चराचर जगत् का निर्माण हुआ है। उस समय के विद्वानों ने परमात्मा तथा आत्मा को न देख सकने के कारण अस्तित्वहीन माना तो वे पृथ्वी जल अग्नि व वायु से ही जीवन को समझने का यत्न करने लगे। ऐसा वे कर नहीं सके। रिनेसां काल में वे इन चारों स्थूल वस्तुओं के विश्लेषण में लग गये। इस प्रयत्न में वे ६ रासायनिक तत्वों और उनके सूक्ष्मतम कणों (Chemical Elements and atoms) तक पहुँच गये। इस पर वे समझते थे कि जीवन-तत्त्व (Life element) को वे पाने में सफल हो रहे हैं। प्रकृति (matter) के और अधिक विश्लेषण पर वे जान पाये कि उनका रासायनिक सूक्ष्मतम कण टूट भी सकता है और सब प्रकार की बनावट के आधार में वे तीन प्रकार के कणों को पा गये। वे तब इस आविष्कार के द्वारा जीवन-तत्व को पा गये समझने लगे थे। यथार्थ में वे अभी इसे पा नहीं सके। इसके पश्चात् अन्तर्-ऐटॉमिक (inter-atomic) कणों को पुनः तोड़ने से केवल शक्ति का प्रादुर्भाव होता देख वैज्ञानिक भौंचक्के हो खड़े विचार कर रहे हैं कि क्या जीवन-रहस्य को वे पा गये हैं ? उनका अपना कहना है कि नहीं। प्रकृति (matter) को शक्ति मात्र देख तो वे कुछ भी अर्थ लगाने में असमर्थ अनुभव करने लगे हैं।

इस पर भी अधकचरे वैज्ञानिक अपने प्रकृति के अधूरे ज्ञान के आधार पर मानव-इतिहास के नवीकरण अथवा उसकी नवीन विवेचना करने में संलग्न हो गये हैं। इसको Marxist Interpretation of History (इतिहास की मार्क्सवादी विवेचना) का नाम दे दिया गया है।

वे वैज्ञानिक मन आत्मा और परमात्मा के विषय में अपनी पहुँच न पा सकने के कारण इसके अस्तित्व को अस्वीकार कर रहे हैं। वे प्राणी के पूर्ण

काय को प्रकृति के कार्यों से ही बखान करने का यत्न कर रहे हैं। यही कारण है कि आज की तकनीकी उन्नति (Technical progress) को मानव की उन्नति का के पर्याय समझ रहे हैं। इनको मन और बुद्धि म अन्तर का ज्ञान नहीं। यह तकनीकी उन्नति तो केवल बुद्धि का विषय है और मानो विशेष रूप में मानव शरीर आत्मा तथा मन के समुच्चय का नाम है। बुद्धि प्रकृति का एक रूप मात्र है अतः बुद्धि का विकास सम्पूर्ण मानव का विकास नहीं माना जा सकता।

परन्तु नवीन वैज्ञानिक मन और बुद्धि में अन्तर न समझ, बुद्धि के विकास को मन का विकास मान रहे हैं और तकनीकी उन्नति को मानव की सर्वांगीण उन्नति समझ बैठे हैं।

बुद्धि के विकास के लिये न तो लाखों वर्षों के विकासवादियों के परिवर्तनों (Evolutionary changes) की आवश्यकता है न ही मन आत्मा और शरीर में परिवर्तनों की। प्रबल बुद्धि प्रायः दुर्बल शरीर में देखी जाती है। यह पतित मन वाले प्राणी में भी देखी जाती है। हीन-आत्मा के साथ-साथ भी इसकी उपस्थिति के प्रमाण मिले हैं। हमारा मतलब यह है कि ऐटम बम्ब का आविष्कारक विषयभोगपुर अथवा क्रूर तस्कर और मित्र-द्रोही भी हो सकता है। ऐसा व्यक्ति कुत्ते बिल्लियों के खेल-कूद मे रत भी हो सकता है।

बुद्धि शरीर मन तथा आत्मा से सर्वथा पृथक वस्तु है। आज के युग की तकनीकी उन्नति इस बुद्धि के विकास का ही परिणाम है। इसकी उन्नति के लिए लाखों वर्षों के विकास की आवश्यकता नहीं है। यह तो एक शताब्दी में ही हो पायी है।

बुद्धि के विकास के लिए अवसर और शिक्षा (Training) मात्र की ही आवश्यकता है। शिक्षा का अर्थ ज्ञान नहीं। ज्ञान मन और आत्मा का गुण है। शिक्षा बुद्धि का सिखाना (Training of the intellect) ही है। यह एक ही जन्म मे अथवा एक-दो नसल (Generation) में सम्भव है। इसके लिए लाखों वर्ष के विकास की आवश्यकता नहीं।

योरुप मे वर्तमान तकनीकि उन्नति एक-डढ सदी में ही सम्भव हुई है। एक नीग्रो अथवा एक हिन्दुस्तानी भी उसमे उतनी ही उन्नति कर सकता है, जितना एक अंग्रेज अथवा रूसी। योरुप ने यह बुद्धि का विकास इस अल्पकाल में प्राप्त कर मन और आत्मा में कुछ भी उन्नति नहीं प्राप्त की। परिणाम यह है कि ऐटम बम्ब इन दुर्बल मन और आत्माओं के हाथ में देख पूर्ण संसार भयभीत है। कोई नहीं जानता कि यह दुर्बल आत्मा किस समय इस अपार

शक्ति को जो इन्होंने प्राप्त कर ली है कब और किस पर प्रयोग कर देगा।

आज के मानव की समस्या ही यह है कि इसने पिछले दो सौ वर्षों में केवल बुद्धि को विकसित करने का प्रयत्न किया है और यह बुद्धि का विकास चरम सीमा पर पहुँच गया है। परन्तु इस बुद्धि के विकास के साथ-साथ शरीर, मन और आत्मा में ह्रास हुआ है। परिणाम यह है कि मानव अपनी करनी पर भौचक्का हो देख रहा है। वह समझ नहीं पा रहा है कि इस सब उन्नति (Technical progress) का अन्त कहाँ होने वाला है।

इस पर भी नास्तिक अपनी घुड़दौड़ में लगे हुए हैं। नास्तिक इतिहास लेखक भी इसी के आधार पर इतिहास लिखने का यत्न कर रहे हैं। वे इतिहास की विवेचना करने वाले कह रहे हैं कि मानव-इतिहास इन्द्रियों के सुख प्राप्त करने का इतिहास है। भूख प्यास इत्यादि इन्द्रियों के सुख ही इसकी घटनाओं में प्रेरणा देने वाले हैं। संसार में मानव जातियों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना मानव इतिहास के बड़े-बड़े युद्ध और अन्य ऐतिहासिक परिवर्तन इसी भूख प्यास और यौन-तृष्णा के परिणामस्वरूप हैं। इसी दृष्टिकोण को लेकर ये नास्तिक इतिहास-लेखक इतिहास की विवेचना करने लगे हैं।

यह इतिहास की विवेचना इतिहास के विषय में भारतीय मान्यताओं के सर्वथा विपरीत है। भारतीय मान्यता तो यह है कि मनुष्य शरीर, आत्मा और मन के संयोग से बना है। बुद्धि शरीर का एक भाग है। मन और आत्मा प्राणी का दूसरा भाग है। मन और आत्मा शरीर नहीं। मानव उन्नति तीनों में सन्तुलित उन्नति को कहते हैं। जब-जब इन तीनों में संतुलित उन्नति नहीं होती अर्थात् हीन मन और आत्मा वाले मानव में शरीर और बुद्धि विकास पा जाती है तब-तब ही घोर युद्ध और अन्य भयंकर ऐतिहासिक घटनाएं होती हैं।

हीन मन और आत्मा वाले मानव-शरीर के अर्थात् इन्द्रियों के दास हो जाते हैं। ऐसे मानवों को हमारी भाषा में असुर कहते हैं। ये असुर (इन्द्रिय लोलुप प्राणी) दूसरों को दुःख देने लगते हैं तब दैवी प्रवृत्ति के लोग जिनमें मन और आत्मा उन्नत होते हैं अर्थात् जिनमें, इन्द्रियों पर मन और आत्मा का अधिकार होता है वे असुरों का विरोध करते हैं और युद्ध होते हैं। दैवी प्रवृत्ति के लोगों का भी केवल मन और आत्मा की उन्नति से काम नहीं चलता। उनको भी अपने शरीर और बुद्धि को उन्नत करना पड़ता है। तब ही वे असुरों को परास्त कर सकते हैं। आदिकाल से देवासुर-संग्राम चल रहा है। इसको इतिहास कहते हैं। इतिहास इन्द्रिय-लोलुप लोग नहीं प्रत्युत इनके विरोधी निर्माण कर रहे हैं। इन्द्रिय-लोलुप तो अपने सुख के हेतु संसार के विनाश का

आयोजन करते रहते हैं। इतिहास इन विषय-लोलुपों के चंगुल से संसार को बचाने का नाम है।

हमने यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि सत्य इतिहास के ज्ञान के लिए विकासवाद और भौतिकवाद दोनों के त्याग की आवश्यकता है। जब तक ये मन पर छाये रहेंगे तब तक सत्य इतिहास का ज्ञान सम्भव नहीं।

तृतीय परिच्छेद

सृष्टि-उत्पत्ति का बाईबल में कथन

पिछले परिच्छेद में हमने वर्तमान काल के इतिहास लिखने वालों की मिथ्या दृष्टि के कारण बताये हैं। अब हम इतिहास में भारतीय दृष्टिकोण बताना चाहते हैं। इसको बताने के लिए हम सृष्टि आरम्भ को ही पहिले लेंगे। सृष्टि आरम्भ (अर्थात् सृष्टि की आयु) भी एक विवाद का विषय बना हुआ है। पृथ्वी की आयु और इस पर मानव की सृष्टि होने का काल क्या है? इस पर भी भारतीय मत वर्तमान युग के विद्वानों से सर्वथा पृथक है। और इसके साथ ही इतिहास लिखने की शैली का सम्बन्ध है।

यहूदी और प्राचीन ईसाई मत तो बाईबल में वर्णित है। इसके अनुसार तो पृथ्वी की आयु बहुत कम है। वहाँ पर लिखा है कि परमात्मा ने छः दिन में सृष्टि उत्पन्न की और सातवें दिन आराम किया। आठवें दिन के आरंभ में आदम और हव्वा का निर्माण किया। यह कथन सर्वथा अमान्य नहीं है। इस पर भी कथन की व्याख्या और अर्थ ठीक प्रतीत नहीं होते। मुख्य बात है दिन किस को कहते हैं? उस समय तो सूर्य बना नहीं था। अतः जिस को हम दिन मानते हैं उसका अस्तित्व नहीं था। तो दिन क्या था कितना बड़ा था? इसके विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ तो हम सृष्टि के विषय में ही लिखना चाहते हैं। बाईबल में इसके विषय में व्याख्या से लिखा है। आदम की उत्पत्ति के विषय मे इस प्रकार लिखा है—

2 And on seventh day God ended his work which he had made, and he rested on the seventh day from all his work which he had made

4 These are the generations of the heavens and of the earth when they were created in the day that the Lord God made the earth and the heavens.

5 And every plant of the field before it was in the earth, and every herb of the field before it grew for the Lord God

had not caused it to rain upon the earth and there was not a man to till the ground.

6. But there went up a mist from the earth and watered the whole face of the ground

7 And the Lord God formed man of the dust of the ground, and breathed into his nostrils the breath of life; and man become a living soul.

8 And Lord God planted a garden east ward in Eden, and there he put the man whom he had formed.

18 And the Lord God said, it is not good that the man should be alone: I will make him an help meet for him.

19 And out of the ground the Lord God formed every beast of the field and every fowl of the air and brought them unto Adam to see what he would call them and what so-ever Adam called every living creature, that was the name there-of.

21 And the Lord God caused a deep sleep to fall upon Adam, and he slept and he took one of his ribs and closed up the flesh instead there of

22. And the rib which the Lord God had taken from man made He a woman and brought her unto the man.

(Holy Bible Genesis 2—2 4 5 6 7 8 18 19 21 22)

यह कथा है सृष्टि के प्रारम्भ की जैसी ईसाईयों की बाइबिल की पुरानी पुस्तक में लिखी है। इसका अर्थ यह है—

सातवें दिन परमात्मा ने अपना काम समाप्त किया और उस दिन उसने अपने काम से विश्राम किया।

प्रारम्भ में पेड़ और पौधे भूमि के भीतर ही थे। वे उग नहीं रहे थे। कारण यह था कि परमात्मा ने अभी तक वर्षा नहीं की थी और कोई मानव भूमि जोतने के लिए नहीं था।

तब एक धुन्ध सी पृथ्वी पर से उठी और उसने वर्षा कर सब भूमि को गीला कर दिया।

और तब परमात्मा ने भूमि की मिट्टी से मनुष्य को बनाया और उसके नाक में फूंक दी। यह जीवन का श्वास था तब मनुष्य एक जीवित प्राणी बन गया।

तब परमात्मा ने एक बाग लगाया अदन के पूर्व में और उसमें उसने मनुष्य को जिसे उसने बनाया था रखा।

तब परमात्मा ने कहा कि यह ठीक नहीं कि आदमी अकेला रहे। मैं उसके लिए सहायक बनाऊंगा।

और भूमि में से प्रत्येक पशु जो भूमि पर विचरता है और प्रत्येक पंछी जो आकाश में उड़ता है बनाया। वह उनको आदम के सामने लाया और देखा कि उनको क्या नाम देता है। जिसको जो नाम दिया वही उसका नाम हुआ।

तब परमात्मा ने आदम को गहरी नींद में सुला दिया। उसने उसकी एक पसली निकाल ली और मांस भर दिया।

उसकी पसली से जो परमात्मा ने आदम की निकाली एक स्त्री बना दी।

इस कथा से इसका साहित्यिक आवरण जो उतार दें तो यह पता चलता है कि भू-मण्डल के मस्तत्र तथा पृथ्वी बनने के पश्चात भी पृथ्वी शुष्क थी। तब वर्षा हुई और उस पर वनस्पति उत्पन्न हुई।

वनस्पति की उत्पत्ति के पश्चात् मनुष्य बना और तदनन्तर पशु और पक्षी बने। तथा अन्त में (पुरुष आदमी में से ही) स्त्री बनी।

यह है सृष्टि के आरम्भ का इतिहास जैसा कि बाईबल में लिखा है।

सृष्टि उत्पत्ति की यह कहानी भारतीय कहानी से मुख्य रूप में मिलती है। इस पर भी व्याख्या में बहुत अन्तर है। यह अन्तर भारतीय कथा से जो हम आगे चल कर लिखेंगे विदित हो जायेगा।

आदम और हव्वा अदन के इस बाग में रहते रहे। एक बार उन्होंने परमात्मा की आज्ञा का उल्लंघन किया और उनको अपने नग्न होने का ज्ञान हो गया। इस पर परमात्मा उनसे रुष्ट हो गया और उसने उन दोनों को श्राप देकर अदन के बाग से निकाल दिया तथा उनको विश्व में भेज दिया।

इसके पश्चात आदम और हव्वा का समागम हुआ और उनकी सन्तान हुई। आदम की वंशावली बाईबल में लिखी है।

Male and female created he them, and blessed them, and called their name Adam in the day when they were created.

And Adam lived an hundred and thirty years, and begat a son in his own likeness, after his image, and called his name Seth.

And the days of Adam after he had begotten Seth were

-eight hundred years and he begat sons and daughters

And all the days that Adam lived were nine hundred and thirty years, and he died.

Holy Bible Genesis 5—2 3 4 5

इसमें लिखा है कि आदम की आयु एक सौ तीस वर्ष की थी जब इसकी प्रथम सन्तान हुई। इसका नाम सेथ रखा गया और इसके पश्चात् और भी लड़के और लड़कियाँ उत्पन्न हुईं। सेठ की उत्पत्ति के पश्चात् आदम आठसौ वर्ष तक जीवित रहा। आदम की पूर्ण आयु नौ सौ और तीस वर्ष थी।

इस प्रकार सेठ के विषय में और फिर उसके बड़े पुत्र के विषय में तथा उसकी सन्तान की सन्तान नूह तक की वंशावली लिखी है। इससे हम उस काल की गणना कर सकते हैं जो आदम से इब्राहीम तक व्यतीत हुआ।

यह गणना इस प्रकार है—

आदम से नूह तक ११ पीढ़ी	२२६२ वर्ष
नूह से इब्राहीम तक ११	२३१ "
इब्राहीम से ईसा के जन्म तक	१८६१
ईसा से आज तक	१९६१
	६६६६ वर्ष

कुछ लोग इब्राहीम से ईसा तक के काल की अवधि १८५१ वर्ष के स्थान पर १९ वर्ष मानते हैं। इससे तो आदम को हुए केवल ७४१२ वर्ष ही बनते हैं।

यह इतना कम काल है कि रिसेर्च काल का ज्ञान विज्ञान इसको मान नहीं सका।

हमने इस पुस्तक के आरम्भ में लिखा है कि ईसाईयों और यहूदियों की अनर्गल बातों को योरप के विद्वान मान नहीं सके। यद्यपि यहूदी और ईसाई अपनी इन अयुक्ति-संगत बातों को विश्वस्त मानने के लिए कहते रहे। यह अयुक्ति-संगत विश्वास गिरा और नास्तिकवाद का प्रचार बढ़ा। परमात्मा पर विश्वास नष्ट हुआ और वह सब कुछ घटित हुआ जो हम पीछे के अध्यायों में लिख आये हैं।

यहूदी सर्वथा अनपढ़ और जंगली जाती थी। यह मिस्र वालों के अधीन हो गयी। मिस्र के लोग इनको दास बनाकर इनसे कठोर सेवा लेते रहे। मिस्र वालों के राजनीतिक उत्पीड़न से दुःखी होकर उन्होंने विद्रोह कर दिया और स्वतन्त्र हो गये। राजनीतिक प्रभुता प्राप्त करने पर वे अपने को ज्ञान-विज्ञान

के ज्ञाता भी भागने लगे। उन्होंने तलवार के बल पर यूनान मिश्र और बाबल (Babylonian) के इतिहास और ज्ञान-विज्ञान को नष्ट कर दिया। इनका अपना ज्ञान-विज्ञान केवल सुना-सुनाया था। प्रोफेसर "सून" का कथन है कि यह इसके स्थापन होने के एक सहस्र वर्ष पश्चात् लिखा गया। यह उस ज्ञान का बहुत ही विकृत रूप था जो इससे पूर्व मिश्र और यूनान वासों का था। बाईबल में जो कुछ लिखा है उसमें सच्चाई का बीज तो है, परन्तु वास्तविक तथ्य को न समझ सकने के कारण वह बच्चों की कहानी-मात्र रह जाती है।

सृष्टि क्रम में अन्य अनेकों बच्चों की सी बातें भी हैं। उदाहरण के रूप में बाईबल में लिखे क्रम के अनुसार दिन और रात पहिले बने और सूर्य चन्द्र इत्यादि उसके बाद बने हैं।

आकाश और पृथ्वी पहिले बने। और प्रकाश बाद में बना। घास-फूस झाड़ियाँ तीसरे दिन बनी और पृथ्वी पर वर्षा आठवें दिन हुई।

एक स्थान पर लिखा है कि जलचरों की अपेक्षा नभचर पहिले बने। यह सृष्टि प्रारम्भ के पाँचवें दिन हुआ। इसके अगले अध्याय में लिखा है कि आठवें दिन मानव बना और जल तथा थल के जन्तु पीछे बने और वे मानव के पास लाये गये जिससे वह उनके नाम रख सके।

इस प्रकार यह सृष्टि-क्रम न केवल बचपन की बातों से भरा पड़ा है प्रत्युत इसमें परस्पर विरोधी बातें भी बहुत अधिक हैं।

जब हम भारतीय परम्पराओं के अनुसार सृष्टि क्रम का वर्णन करेंगे तो पाठक भली भाँति समझ जायेंगे कि कैसे भारतीय सत्य कथा का विकृत रूप बाईबल में लिखा गया है। इसके विकृत होने का सबसे बड़ा कारण यहूदियों और ईसाईयों का ज्ञान के स्रोत भारत देश से सम्बन्ध-विच्छेद ही था। इस सम्बन्ध-विच्छेद में आदि-भाषा को छोड़ अपनी सुगम भाषा में ही अपने को सीमित कर लेना एक बहुत बड़ा कारण था।

बाईबल के सृष्टि क्रम को वर्तमान युग के वैज्ञानिक तथा विद्वान स्वीकार नहीं कर सके। इन वैज्ञानिकों में डार्विन कुछ चतुर निकला और स्वयं नास्तिक होते हुए भी उसने अपने विकासवाद में सृष्टि-क्रम को वही रखा जो बाईबल में लिखा है। पहिले जल-जन्तु, तब पक्षी और उनके पश्चात् वन-पशु तथा अन्त में मनुष्य की उत्पत्ति लिखी है।

मनुष्य की सृष्टि की कुछ व्याख्या बाईबल की पुरानी पुस्तक के दूसरे अध्याय में इस प्रकार है।

इस अध्याय की दूसरी और चौथी पंक्ति हमने पहिले लिख दी है।

उसमें लिखा है सातवें दिन परमात्मा का काम समाप्त हुआ और उसने विश्राम किया। तब आदम और हव्वा बनाए। यह सब कथा अस्वाभाविक थी और वैज्ञानिकों द्वारा अस्वीकार हुई।

उक्त कथा के अतिरिक्त भी सांप का हव्वा को बरगलाना और आदम को कहकर वर्जित फल का खाना उससे इस ज्ञान का होना कि व नंगे हैं इत्यादि ऐसे ढंग से लिखे हैं कि उस कथा को वर्तमान युग के बुद्धिमान पुरुष स्वीकार नहीं कर सके।

ऐसा प्रतीत होता है कि बाईबल की यह सृष्टि-उत्पत्ति की कथा एक वृहद् उपमा अलंकार है। इसके अर्थ अति मार्मिक हैं परन्तु वे जाहिल पादरी जिनका काम था कि अलंकारों में छिपे अर्थ निकालकर साधारण जनता को बतायें और विरोधी वैज्ञानिकों का मुख बन्द कर दें स्वयं इन अर्थों को नहीं जानते थे। यह ज्ञान के स्रोत प्राचीन शास्त्रों से सम्बन्ध-विच्छेद करने से हुआ। जब जातियों ने संस्कृत भाषा से जिसमें ज्ञान का अटूट भण्डार भरा हुआ था सम्बन्ध-विच्छेद किया और अपनी जन-साधारण भाषा को अपने ज्ञान विज्ञान की भाषा बनाया तो उनका ज्ञान रूढ़ि में बदल गया और तदनन्तर रूढ़ि मत का सत्य मत से भेद हो गया।

जब गलीलियो ने यह कहा कि पृथ्वी अण्डाकार है तो रूढ़िवादी ईसाई बाईबल में लिखी इस बात के विरुद्ध समझ बैठे कि प्रलय के समय जब मुर्दे कब्रों से उठेंगे तो परमात्मा उन सबको एकदम देखेगा। वे समझ नहीं सके कि अण्डाकार पृथ्वी के दूसरी ओर के जीवित मुर्दों को परमात्मा किस प्रकार देख सकेगा। उन्होंने गलीलियो को नास्तिक (Heretic) घोषित किया और उसको मृत्यु दण्ड दिलवाने का यत्न किया।

सृष्टि-उत्पत्ति में भारतीय परम्परा

सृष्टि की उत्पत्ति में भारतीय परम्परा ज्योतिष शास्त्र के आंकड़ों पर विश्वास रखती है। सब हिन्दू पंचांगों पर सृष्टि-संवत् लिखा रहता है। एक पंचांग में लिखे वर्णन को हम यहां देते हैं।

अथ विलिख्यमान पंचांग—कल्पारम्भे कल्पादितो गताब्दाः। १९७२ ९४९ ६१ सृष्ट्यादितोऽब्द १९५५८८५ ६१ कलियुगादितो गताब्दाः ५ ६१ नृपविक्रम विक्रम संवत्सरे २ १६ शालिवाहन शकाब्दे १८८४।

अर्थात् कल्प के प्रारम्भ से १९७२९४९ ६१ वर्ष हुए हैं। सृष्टि प्रारम्भ को १९५५८८५ ६१ वर्ष हुए हैं। कलियुग को प्रारम्भ हुए ५०६१ वर्ष और विक्रम सम्वत् को प्रारम्भ हुए २ १९ वर्ष तथा शक सम्वत् को १८८४ वर्ष हुए हैं।

हिन्दुओं के दैनिक संकल्प में इस प्रकार सृष्टि-उत्पत्ति काल का स्मरण किया जाता है।

द्वितीयपरार्द्धे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति कलियुगे ५ ६१ गताब्दे।

अर्थात् यह वैवस्वत मनु का अठाइसवाँ कलि है और उसके ५ ६१ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

जिस समय हिरण्यगर्भ (Nebula) बनना प्रारम्भ हुआ था उस समय से लेकर तब तक जब सूर्य मण्डल टूट-फूट कर पुनः आदि प्रकृति में विलीन हो जायेगा व्यतीत होने वाले काल को कल्प अथवा ब्रह्म दिन कहते हैं। इस काल को एक हजार विभागों में बाँटा गया है। एक विभाग को एक चतुर्युगी कहते हैं। अर्थात् एक ब्रह्म दिन में एक हजार चतुर्युगी होती हैं। इसी ब्रह्म दिन को १४ मन्वन्तरों में बाँटा गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगियाँ और ६/१४ चतुर्युगी होगी।

इस गणना के अनुसार अपने और जगत् के बनने को प्रारम्भ हुए छ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं और सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तर का नाम वैवस्वत मन्वन्तर है। इस सातवें मन्वन्तर की भी २७ चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं। अठाईसवीं चतुर्युगी के तीन युग (सतयुग त्रेता युग द्वापर युग) बीत कर कलियुग के ५ ६१ वर्ष बीत चुके हैं।

अतः पूर्ण ब्रह्म दिन में एक सहस्र चतुर्युगियाँ होती हैं। एक ब्रह्म दिन में १४ मन्वन्तर होते हैं। परिणाम यह हुआ कि एक मन्वन्तर में ७१ ६/१४ चतुर्युगियाँ आती हैं। एक चतुर्युगी में चार युग होते हैं। सतयुग त्रेतायुग द्वापरयुग और कलियुग। एक चतुर्युगी में १२ देव वर्ष माने जाते हैं और एक देव वर्ष में ३६ मानव वर्ष होते हैं। इस प्रकार एक चतुर्युगी = १२ — देववर्ष = १२ × ३६ मानव वर्ष = ४३२ मानव वर्ष। इसका अभिप्राय हुआ ४३२ × १ —ब्रह्म दिन अर्थात् कल्प = ४३२ •- वर्ष। इसका अर्थ यह हुआ कि चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष वह काल है जो हिरण्य-गर्भ के बनने के प्रारम्भ काल से लेकर पूर्ण सौर-जगत् के प्रलय काल तक व्यतीत होगा।

इस काल में से ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। सातवें मन्वन्तर की

२७ चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं और अठाईसवीं चतुर्युगी के तीन युग व्यतीत होकर कलियुग के ५ ६१ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

एक चतुर्युगी के ४३२ वर्षों को चार चतुर्युगियों में विभाजन ४:३:२:१ के अनुपात से करते हैं। अर्थात् ४+३+२+१=१ भागों में ४३२ वर्ष को बाँटा जाये तो एक भाग=४३२ वर्ष = कलियुग की अवधि होती है।

इस गणना के अनुसार कलियुग की अवधि	४३२
द्वापरयुग ,,	८६४
त्रेतायुग	१२९६
सतयुग	१७२८
अर्थात् एक चतुर्युगी =	४३२ वर्ष

अब सृष्टि प्रारम्भ से आज तक व्यतीत हुए काल की गणना की जा सकती है। वैवस्वत मन्वन्तर अठाईसवीं चतुर्युगी के तीन युग और कलियुग के ५ ६१ वर्ष गिन लेने चाहिएँ और उनमें पूर्व की सत्ताईस चतुर्युगियों के वर्ष जोड़ लेने चाहिएँ। यह वैवस्वत मनु का व्यतीत हो चुका काल होगा।

एक चतुर्युगी = ४३२		वर्ष
२७ ,, = ४३२ × २७ =	११६६४	वर्ष
अठाईसवीं चतुर्युगी का सतयुग =	१७२८	,,
,, त्रेतायुग =	१२९६	,,
,, ,, द्वापर =	८६४	
,, वर्तमान कलियुग =	५ ६१	,,

मनुष्य सृष्टि-उत्पत्ति = वैवस्वत मनु का व्यतीत काल = १२ ५३३ ६१

यह है वैवस्वत मनु का काल परन्तु सृष्टि प्रारम्भ तो उस समय से मानी जाती है जब हिरण्य-गर्भ बनना प्रारम्भ हुआ था। इसमें ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चके हैं। इन ६ मन्वन्तरों के नाम इस प्रकार हैं। (१) स्वायम्भुव (२) स्वारोचिष (३) औत्तम (४) तामस (५) रैवत (६)चाक्षुष। सातवाँ मन्वन्तर जो चल रहा है वह है वैवस्वत।

अतः हिरण्य-गर्भ काल से गणना करने पर सृष्टि के आरम्भ होने से आज तक का व्यतीत हुआ काल पता चल जायेगा। वह इस प्रकार है। ऊपर लिख चुके हैं।

एक चतुर्युगी = ४३२ वर्ष

एक मन्वन्तर = ४१२ ×७१$\frac{3}{7}$ = ४१२ ×७१४२८
= १ ८२१६८११ वर्ष
१ मन्वन्तरों की अवधि = १ ८२१६८११ ×१
=१८१२४ ७ वर्ष*
वैवस्वत मनु का व्यतीत हुआ काल = १२ ५११ ११
सृष्टि प्रारम्भ से व्यतीत हुआ काल = ११७१६४ ६१

सब भारतीय पंचांगों में ऐसा ही लिखा मिलता है।

इस गणना में प्रमाण

इतने लम्बे वर्षों के काल की गणना पढ़कर आधुनिक विद्वान् चकाचौंध रह जाते हैं। वे इस गणना पर दो आपत्तियाँ करते हैं। एक तो यह कि हिरण्य-गर्भ के प्रारम्भ से पंचांग किसने लिखा था? उस समय किसी मनुष्य का अस्तित्व हो ही नहीं सकता था। अतः ये गणनाएँ सब काल्पनिक हैं। इसमें सच्चाई का प्रमाण नहीं। दूसरी आपत्ति यह की जाती है कि इतने वर्ष तक मनुष्य और पृथ्वी टिकी कैसे रही है? ये दोनों आपत्तियाँ अल्पबुद्धि या बौनी सूझ-बूझ वालों के द्वारा ही की जा सकती हैं।

हिरण्य-गर्भ तथा सूर्य चन्द्र पृथ्वी इत्यादि का बनना एक अन्तरिक्ष की घटना है और यदि इसके विषय में कोई गणना हो सकती है तो उसके प्रमाण अन्तरिक्ष में ही ढूँढने पड़ेंगे। भारतीय ज्योतिषियों ने अन्तरिक्ष का गम्भीर निरीक्षण कर ही उक्त गणना को किया प्रतीत होता है।

यह निरीक्षण कैसे किया था? किस-किस हिरण्य-गर्भ का किस प्रकार अध्ययन कर ये परिणाम निकाले होंगे? आज बताना कठिन है। हाँ यह तो प्रमाणित किया जा सकता है कि यह गणना प्राचीन काल से भारतवर्ष में स्वीकार हो चुकी थी। यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि अन्य प्राचीन जातियों के विद्वानों ने इन गणनाओं को अधिकांश रूप में स्वीकार किया था।

प्राचीन काल में एक सूर्य-सिद्धान्त नाम का ग्रंथ था। यह ज्योतिष का एक महान् ग्रंथ माना जाता था। सतयुग के अन्त काल में यह लिखा गया था और अब अप्राप्य है। इसी प्राचीन सूर्य-सिद्धान्त के आधार पर वर्तमान सूर्य सिद्धान्त को लिखा गया प्रतीत होता है। दोनों सूर्य सिद्धान्त उक्त युग गणना

* गणना में ११११४ वर्ष का अन्तर प्रति मन्वन्तर के पश्चात् प्रतिपात के कारण पड़ता है।

—५

का समर्थन करते हैं। नवीन सूर्य-सिद्धान्त जो "साट इत" कहा जाता है में प्राचीन सूर्य गणना मिलती है।

यह तो सर्वविख्यात है कि वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें भी युग-गणना उसी तरह है जैसे वर्तमान ज्योतिष-शास्त्र में।

अथर्ववेद में इस प्रकार वर्णन आया है—

कियता स्कम्भ: प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य।
एकं यदंगमकृणोत्सहस्रधा कियता स्कम्भ: प्र विवेश तत्र॥

अथर्व —१०।७।९

अर्थात्—भूत भविष्यमय काल रूपी ब्रह्म एक सहस्र खम्भों पर खड़ा है। इसमें अलंकार के रूप में एक कल्प में होने वाले एक सहस्र चतुर्युगियों का वर्णन किया गया है।

फिर अथर्ववेद ८ २ २१ में यह भी लिखा है "शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्म:"।

अर्थात्—सौ आयुत वर्षों के आगे दो तीन और चार की संख्या लिखने से कल्प काल निकल आयेगा।

आयुत दस हजार का होता है। इसलिए सौ आयुत हुए १० ०००००० दस लाख में सात अंक हैं इसके सात शून्यों के पहिले दो तीन चार के अंक लिखने से ४३२ ०००००० वर्ष होते हैं और यह एक कल्प अर्थात् ब्रह्म दिन की गणना है।

यजुर्वेद में चारों युगों के नाम आये हैं।

कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनम् आस्कन्दाय सभास्थाणुम्।

ज्योतिष ग्रंथों में तो स्पष्ट ही लिखा है। उसका सारांश इस पुस्तक के द्वितीय अध्याय में दिया है।

यह आर्य गणना बाबल देश (Babylonion) वासों में भी प्रचलित थी। इसके विषय में राबर्ट ब्राउन नामक एक विद्वान् लिखते हैं

This stellar and originally solar Ram stands at the head of the 10 antediluvian Babylonion kings whose reigns divide the circle of the ecliptic and who are said to have reigned 120 Sars (43,2000 years) In Akkad 60 was the unit and according to Berosos the time periods were Sars (60 years) Ner (60×10—600) and Sar (600×60—3600) 3600×120—432,000

यह समय की गणना है जो आर्य ज्योतिष शास्त्र से मिलती है। ४३२ ००० वर्ष कलियुग की गणना है।

त्रिंशत् कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक्परिवर्तते ।"

अर्थात्—एक महायुग में भचक्र (राशि चक्र) पूर्व और पश्चिम दिशा में तीस सौ बार अर्थात् छ: सौ बार चलता है। अर्थात् राशिचक्र विषुवत रेखा से पश्चिम की ओर २७ अंश तक चलकर फिर विषुवत् रेखा पर आता है और उस स्थान से पूर्व की ओर भी २७ अंश तक जाकर अपने स्थान में लौट आता है। इस प्रकार एक ओर जाने से १ बार और दूसरी ओर जाने में १ बार, अर्थात् कुल ६ बार एक महायुग में चलता है। इसलिए एक कल्प में ये चक्कर ६ (छ: लाख) बार होते हैं।

इस हिसाब को लगाकर कलियुग में देखिये। महायुग का १ वाँ भाग कलि है। अतः कलि में पृथ्वी ३ बार एक ओर ३ बार दूसरी ओर जाती है। अर्थात् कुल ६ बार जाती है। इन तीस बारों को एक मास मान लें तो एक बार = एक दिन होगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि कलि की एक ऋतु अर्थात् दो मास में पृथ्वी ६ बार विषुवत् रेखा पर आती है। १ ऋतुओं में अर्थात् ६ बार चक्कर काटने पर एक महायुग और ६ बार काटने पर एक कल्प की गणना है।

इस प्रकार आर्य ज्योतिष के अनुसार कल्प गणना में नक्षत्रों की गति ही उनकी समय देखने की घड़ी का काम देती है।

सूर्य सिद्धान्त में यह लिखा है—

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः
कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम् ।

अर्थात्—एक चतुर्युगी में सूर्य बुध शुक्र, मंगल शनि और बृहस्पति ४१२ भगण करते हैं। चतुर्युगी की यह गणना ही ऊपर की गई है।

कल्प आरम्भ की प्रक्रिया

सृष्टि आरम्भ के समय क्या था और उससे क्या-क्या उत्पन्न हुआ? इसका संकेत इस मंत्र से मिलता है—

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अर्थात्—वह (ब्रह्म) पूर्ण है। यह (प्रकृति) पूर्ण है। इस पूर्ण-से-पूर्ण (कार्य जगत्) उत्पन्न होता है। पूर्ण का-पूर्ण ले लेने से अन्त में पूर्ण ही रह

जाता है।

इसका अभिप्राय यह है कि परमात्मा पूर्ण है। इसमें अथवा इसके किसी अंश में कमी नहीं है। यह सच्चिदानन्द है और सब स्थान पर सच्चिदानन्द अर्थात् तीनों गुणों से परिपूर्ण है। किसी भी स्थान अथवा किसी भी अवस्था में इसके तीनों गुणों में से किसी में भी अभाव नहीं पाता।

इसी प्रकार यह प्रकृति भी पूर्ण है। यह भी तीन गुणों से युक्त है। सत् रज और तम गुणों वाली है। पूर्ण होने से यह भी सर्वत्र और सदा इन तीन गुणों से युक्त रहती है।

इस पूर्ण प्रकृति से पूर्ण (सारा का सारा) कार्य जगत् उत्पन्न होता है। जब यह उत्पन्न हो जाता है तो फिर जो भी प्रकृति शेष रह जाती है वह पूर्ण अर्थात् त्रिगुणात्मक ही रहती है। उसमें किसी प्रकार की अपूर्णता नहीं आती।

कारण प्रकृति को अव्यक्त प्रकृति कहते हैं। यह प्रकृति की सूक्ष्मतम अवस्था है। यह प्रकृति का अनादि और व्यापक रूप है। पूर्ण स्थान इससे भरा हुआ है।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥ भ. गी. १३-१९

अर्थात्—प्रकृति और पुरुष (परमात्मा) दोनों को अनादि जान विकार और गुणों को प्रकृति से ही उत्पन्न मानो।

इससे यह पता चलता है कि भारतीय परम्परा के अनुसार प्रकृति भी एक अनादि वस्तु है। यह प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक समय पर पूर्ण अर्थात् तीनों गुणों के साथ रहती है। साथ ही यह ही है जिसमें परिवर्तन होते हैं जिससे चराचर जगत् की उत्पत्ति होती है।

जगत की उत्पत्ति कैसे होती है? यह सांख्य दर्शन में इस प्रकार लिखा है।

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्महतोऽहंकारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः।
॥ सां १ ६१॥

अव्यक्त (आदि रूप) प्रकृति में सत्वगुण रजोगुण तथा तमोगुण साम्यावस्था में होते हैं।

जैसे तिपाई अपनी तीनों टाँगों के परस्पर आश्रय पर टिकी होने से स्थिर रहती है उसी प्रकार इस आदि रूप में प्रकृति के तीनों गुण परस्पर आश्रय होने से प्रकृति स्थिर निश्चल और अविकारी बनी रहती है।

साम्यावस्था भंग होने पर 'महान्' बनता है महान से तीन अहंकार तीन अहंकारों से मन और दस इन्द्रियां और इन्हीं अहंकारों से पांच तन्मात्रा और पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं। पुरुष (परमात्मा) इनसे पृथक है। प्रकृति के पच्चीस रूप ही (कार्य जगत् में) हैं।

निम्न चित्र से यह स्पष्ट हो जायेगा—

प्रकृति (आदि रूप) अव्यक्त

महान

सात्विक अहंकार तैजस अहंकार भूतादि अहंकार

५ ज्ञानेन्द्रियां ५ कर्मेन्द्रियां १ मन ५ तन्मात्रा ५ महाभूत

गुणों की साम्यावस्था किस प्रकार भंग हुई? इसका भी उल्लेख सांख्य दर्शन में लिखा है।

संहतपरार्थत्वात्पुरुषस्य सा १ ६६
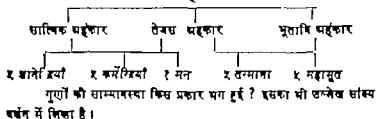
यह संहत (सत रज तम की साम्यावस्था का भंग होना) पार्थक नहीं प्रत्युत पुरुष के करने से है। *यहाँ पुरुष का अर्थ परमात्मा से लेना चाहिए।*

इसका अर्थ यह है कि कारण प्रकृति से कार्य जगत् का बनना प्रकृति के अपने स्वभाव के कारण नहीं। प्रत्युत यह ईश्वर के करने से ही है।

यह निर्विवाद मत नहीं—बृहदारण्यक उपनिषद् में इस प्रकार लिखा है—

नैवेह किंचनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत्।

अर्थात्—*पहिले यहाँ कुछ नहीं था। सब मृत्यु से आवृत था।* इसका अर्थ है कि सत रज तम की साम्यावस्था के कारण सब कुछ शान्त अचल और एकरस था।

तब—मृत्युस्तन्मनोऽकुरुतात्मन्वी स्यामिति। बृ उ १ २

इस शान्त अचल में इच्छा हुई कि मैं आत्मायुक्त होऊँ।

अर्थात्—प्रकृति में आत्मा-युक्त होने की प्रवृत्ति हुई। सांख्य और बृहदारण्यक उपनिषद् में प्रकृति के आदि रूप में मतभेद नहीं। मतभेद है परिकर्मों के कारण में। सांख्य इसको पुरुष (परमात्मा) के करने से मानता है और बृहदारण्यक उपनिषद्कार इन परिवर्तनों को प्रकृति की अपनी प्रवृत्ति के अनुसार मानता है।

यहाँ पर तो हमारा अभिप्राय केवल इतने से है कि अव्यक्त प्रकृति की

मृत्यु जैसी अवस्था थी। इसको सुषुप्ति (सोई हुई) अवस्था भी कहते हैं। इसको ज्योतिषशास्त्र में ब्रह्मरात्रि भी कहते हैं। इस अवस्था में निश्चलता सत रज तम की साम्यावस्था के कारण है।

साम्यावस्था भंग हुई प्रकृति की अपनी प्रवृत्ति (स्वभाव) के कारण अथवा परमात्मा के करने से यह हमारी इस पुस्तक का विषय के नहीं है। जब साम्यावस्था भंग हुई तब उससे पहिले महत् नाम का पदार्थ उत्पन्न हुआ। इसको बुद्धि का नाम भी दिया गया है।

महान की अवस्था में सत रज तम संतुलित अवस्था मे नहीं थे। अतः 'महान' में भी परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों का बहुत ही स्पष्ट वर्णन सुश्रुत संहिता ग्रंथ के शरीर स्थान में किया है।

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगत् सम्भवहेतुरव्यक्तं नाम तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्र इवौदकानां भावानाम्।

सब भूतों और पूर्ण जगत् का अर्थात् संसार का कारण स्वयं अकारण (जिसका कारण नहीं अर्थात् जो अनादि है) आदि प्रकृति है। यह सत रज तम लक्षण वाली अष्टधा (आठ रूप वाली) है।

अव्यक्त अर्थात् आदि प्रकृति पूर्ण जगत् का कारण है। वह अनेकों क्षेत्रों (जीव जन्तुओं के शरीरों) में बँट जाती है और प्रलय के समय सब को आत्मसात् कर लेती है। जैसे सागर से मेघ तदनन्तर वर्षा के द्वारा अनेकानेक नदियाँ बनती हैं और पुनः समुद्र में मिल जाती हैं।

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिङ्ग एव तल्लिङ्गाच्च महतस्तल्लक्षण एवा-हंकार उत्पद्यते स च त्रिविधो वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति ॥

तत्र वैकारिकादहंकारात्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते। तद्यथा श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्घस्तोपस्थपायुपादमनांसीति। तत्र पूर्वाणि पंच बुद्धीन्द्रियाणि इतराणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि उभयात्मकं मनः ॥

भूतादेरपि तैजस सहायात् तल्लक्षणान्येव पञ्चतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते। तद्यथा शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धास्तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानलजलोर्व्यः। एवमेषा तत्त्व चतुर्विंशतिर्व्याख्याता ॥

इस अव्यक्त प्रकृति में 'महान' उत्पन्न हुआ। 'महान' में तीनों लक्षण (सत्, रज तम) उपस्थित थे। इस पर भी 'महान' में एक-दूसरे का सहारा टूट चुका था। इस समय इसमें ईश्वरेच्छा से गति उत्पन्न हुई। प्रकृति का यह "महान रूप" चक्राकार घूमने लगा। सत्, रज तम परस्पर असम्बद्ध तो हो चुके थे और घूमने से वे पृथक

पृथक होने लगे। यह चक्राकार गति (Circular Motion) का गुण है कि गुरु (Massy) पदार्थ दूर और अगुरु पदार्थ (Unmassy) केन्द्र में इकट्ठे होने लगते हैं। इससे महान के वे अंश जो सात्विक अहंकार थे जिनमें सत का आधिक्य था इस चक्राकार गतिशील महत् के केन्द्र में और तेज के आधिक्य वाला अंश मध्य में और तम के आधिक्य वाला अंश परिधि में हो गया। यह तीनों अहंकारों का पृथकीकरण है।

यहाँ हम यह लिख देना चाहते हैं कि महान' से सात्विक अहंकार तैजस अहंकार आदि भूतादि अहंकार बने। ऐसा हमने ऊपर लिखा है। यद्यपि उस प्रक्रिया से जो चक्राकार गति से उत्पन्न हुई सात्विक अहंकार केन्द्र में तैजस अहंकार मध्य में और भूतादि अहंकार परिधि में हो गये तो भी यह पृथकीकरण पूर्ण रूप से नहीं हो सका। जो लोग सैंट्रि-फ्यूगल (Centrifugal) चक्राकार गतिमान पदार्थों का निरीक्षण करते हैं वे जानते हैं कि इस प्रकार के पृथकीकरण का यह प्रभाव होता है कि कुछ-कुछ केन्द्र वाले अंश मध्य में और परिधि में और इसी प्रकार अन्य अंशों में भी हो जाते हैं। हाँ मुख्य रूप में केन्द्र में सात्विक अंश मध्य में राजसी अंश और परिधि पर तामसी अंश अधिक हो गये। इसी कारण यह माना है कि भूतादि अहंकार में यद्यपि तामसी अंश अधिक होते हैं इस पर भी उसमें सात्विक और राजसी अंश भी कुछ मात्रा में रहते हैं। इसी प्रकार मध्य में तैजस अहंकार हो गया है। इसमें यद्यपि राजसी अंश अधिक मात्रा में होता है फिर भी इसमें सात्विक और तामसी अंश की न्यून मात्रा में रहते हैं। और केन्द्र में सात्विक अहंकार में सत् का अंश मुख्य रूप में होने पर भी इसमें कुछ-कुछ अंशों में राजसी और तामसी अंश भी रहते हैं।

जब महान' बनकर चक्राकार गति में हो जाता है तब यह हिरण्य-गर्भ कहलाता है। योरुपियन ज्योतिष-शास्त्र इसको (Nebula) कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि प्रकृति के अव्यक्त रूप में सत रज तम के संतुलन टूटने से महत् बनता है। महत् में चक्राकार गति ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न होती है और इस गतिशील को हिरण्य-गर्भ कहते हैं। जब हिरण्य-गर्भ घूमने लगता है तो अहंकार पृथक-पृथक होने लगते हैं। इनके पृथक्-पृथक् होने से ताप (अग्नि) का प्रादुर्भाव होता है। इस अग्नि से हिरण्य-गर्भ (Nebula) चमकने लगता है। ज्यों-ज्यों ताप बढ़ता जाता है यह प्रकाशमय होता जाता है और अन्त में हिरण्य-गर्भ का केन्द्र और मध्य तो सूर्य का रूप धारण कर लेता है और परिधि टूट-टूटकर नक्षत्र बनने लगते हैं। अतः एक सूर्यमण्डल बन जाता है।

सूर्य की अवस्था में भी 'महान' से अहङ्कार पृथक-पृथक हो रहे हैं। यही कारण है सूर्य के प्रचण्ड ताप और प्रकाश का। सूर्य में ही अहङ्कारों का संयोग प्रारम्भ हो जाता है। इस संयोग से ही पंच महाभूत और पंच तन्मात्रा इत्यादि बनने लगते हैं। इस प्रक्रिया का प्रारम्भ तो सूर्य में ही हो जाता है परन्तु मुख्य रूप में पंच भूतादि का बनना नक्षत्रों में जाकर अधिक गति से होता है।

ब्रह्माण्ड में कई सूर्यमण्डल देखे गये हैं। ऐसे सूय भी हो सकते हैं जो पृथ्वी पर से अभी तक दिखाई नहीं दिये। इसका अर्थ यह है कि वे इतनी दूर हैं कि जब से वे प्रकाशमान हुए हैं उनका प्रकाश अभी तक पृथ्वी पर नहीं पहुँचा। प्रकाश की गति १८६ मील प्रति सैकण्ड है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है।

हिरण्य-गर्भ की चमत्कार गति से सूर्य बना और सूर्य की चमत्कार गति से नक्षत्र बनकर पृथक हुए। अपने सूर्यमण्डल में पृथ्वी मंगल चन्द्र बुध शुक्र शनि इत्यादि नक्षत्र हैं।

नक्षत्रों में मुख्यतया भूतादि अहङ्कार ही हैं। इस पर भी इनमें कुछ-कुछ अंशों में सात्त्विक और तैजस अहङ्कार भी विद्यमान हैं।

नक्षत्रों मे पहुँचकर भूतादि और तैजस अहंकारों का संयोग तीव्रगति से होने लगा। साथ एक सीमित गति से तैजस और सात्त्विक अहङ्कारों का संयोग भी हुआ। इसमें कारण यही है कि इनकी अल्प मात्रा ही नक्षत्रों पर होती है। प्रथम संयोग अर्थात् भूतादि अहङ्कार और तैजस अहङ्कार के संयोग से तो पंच भूत और पंच-तन्मात्रा बनीं। इससे पार्थिव अग्नि जल वायु पृथ्वी और आकाश बन और ६२ प्रकार के रासायनिक तत्त्व बने। इन रासायनिक तत्त्वों के सूक्ष्म कणों में तीन प्रकार के अहङ्कार विद्यमान होते हैं। मुख्यतः भूतादि अहङ्कार होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि भूतादि अहंकार को वर्तमान विज्ञान के प्रोटोन (Proton) कहा जाता है। तैजस अहङ्कार को इलैक्ट्रोन (Electron) कहते हैं और सात्त्विक अहंकार का नाम न्यूट्रोन (Neutron) है।

इस संयोग का अभिप्राय यह है कि भूतादि अहङ्कार के तैजस अहंकार से संयोग का परिणाम ही हम समुद्र नदी नाले वायु इत्यादि देखते हैं। ये रासायनिक तत्त्व (Chemical Elements) और रासायनिक यौगों (Chemical compounds) से बनते हैं।

दूसरी प्रकार के संयोग से अर्थात् सात्त्विक अहंकार और तैजस अहंकार के संयोग से मन इन्द्रियों का प्रादुर्भाव होता है। ये जीवन तत्त्व (आत्मा) के

संस्थान है अर्थात् इसमें जीवन-शक्ति (Life) विद्यमान रहती है। जीवन-शक्ति और आत्मा भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। जीवन बिना आत्मा के काम नहीं कर सकता। जीवन शक्ति का केन्द्र और अध्यक्ष मन तथा आत्मा के साथ-साथ रहता है। इसका संग तब ही छूटता है जब आत्मा मोक्षावस्था को प्राप्त करता है।

अतः भूतादि अहंकार और तैजस अहंकार से बने पंचभौतिक शरीर में जब तैजस अहंकार और सात्त्विक अहंकार के संयोग से बनी जीवन-शक्ति (मन और इन्द्रियाँ) आकर बैठती है तो इस प्राणी में आत्मा का वास होता है और शरीर मन तथा आत्मा मिलकर प्राणी बनता है। यह जीवधारी कहलाता है।

वर्तमान युग के वैज्ञानिक यह यत्न कर रहे हैं कि धातु का शरीर बना कर उसमें विद्युत् इत्यादि शक्ति के संचार से प्राणी का निर्माण करें। यही Electronic brain (इलैक्ट्रोनिक मस्तिष्क) बनाने का प्रयास है। इसमें अभी तक सफलता नहीं मिली। अधिक-से-अधिक अभी तक यही हो सका है कि इस मस्तिष्क से कुछ काम जो पूर्व निश्चय किये जाते हैं और जिनको करने के लिए मस्तिष्क में प्रबन्ध कर दिया जाता है सम्पन्न हो सकते हैं।

अतएव भारतीय परम्पराओं के अनुसार निम्न प्रक्रिया से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है—

(१) आदि प्रकृति जिसे अव्यक्त भी कहते हैं अनादि काल से उपस्थित है। यह प्रकृति की अति सूक्ष्मावस्था है और इसके तीन गुण सत् रज तम साम्यावस्था अर्थात् संतुलित अवस्था में इसमें होते हैं।

(२) ईश्वर इच्छा से यह संतुलन टूटता है और प्रकृति सत रज तम की असंतुलित अवस्था में होने से गतिशील हो जाती है और यह महत् कहलाती है। इसमें उत्पन्न गति चक्राकार होती है और हिरण्य-गर्भ अर्थात् "नैबुला" (Nebula) का प्रारम्भ होता है।

(३) हिरण्य-गर्भ में चक्राकार गति के कारण प्रकृति का वह अंश जिसमें सत गुण का आधिक्य हो जाता है इसके केन्द्र में इकट्ठा होने लगता है और तैजस गुणवाला प्रकृति का अंश मध्य में तथा तामस गुण वाला अंश इसकी परिधि में चला जाता है।

(४) यद्यपि सत्त्व रजस और तामस गुणोंवाली प्रकृति में पृथकत्व होने लगता है परन्तु कोई भी अंश सर्वथा शुद्ध नहीं हो पाता। हिरण्य-गर्भ के केन्द्र में सत्त्व-गुण-प्रधान प्रकृति एकत्रित होने लगती है। इसके साथ न्यून अंशों में रजस और तामस गुण भी रहते हैं। यह सात्त्विक अहंकार कहलाता है। मध्य में रजस गुण प्रधान प्रकृति एकत्रित हो जाती है। उसमें न्यून अंशों में तामस और

सात्विक गुण भी रहते हैं। यह तैजस अहंकार कहलाता है। हिरण्य-गर्भ की परिधि में तामस गुण प्रधान प्रकृति एकत्रित होने लगती है और न्यून अंश में उसमें सात्विक और राजस गुण भी रहते हैं। यह भूतादि अहंकार कहलाती है।

(५) जब अहंकारों का पृथक्कीकरण होता है तो इसमें से प्रचण्ड ताप और प्रकाश होने लगता है। अब हिरण्य-गर्भ (Nebula) चमकने लगता है। ज्यों-ज्यों अहंकारों में पृथक्कीकरण उग्र होता जाता है प्रकाश और ताप प्रचण्ड होता जाता है। यह सूर्य बन जाता है।

(६) ऐसे समय में परिधि पर एकत्रित हो रहा भूतादि अहंकार अपने साथ न्यून अंशों में सत्व और राजस गुणों को लिये हुए सूर्य से पृथक होने लगता है। यह केन्द्रापग (Centrifugal) चक्राकार गति से उत्पन्न शक्ति के कारण होता है।

(७) भूतादि अहंकार के जो भाग अपने साथ न्यून अंशों में सात्विक तथा तैजस गुणों को लिये हुए सूर्य से पृथक होते हैं वे सूर्य के चारों ओर चक्कर काटने लगते हैं तथा वे नक्षत्र बन जाते हैं।

(८) जब कोई नक्षत्र अहंकारों में पृथक्कीकरण समाप्त हो जाने पर ठण्डे हो जाते हैं तो उस विशेष अवस्था में उन पर सात्विक अहंकार और तैजस अहंकार का संयोग हो जीवन-शक्ति (मन और इन्द्रियाँ) का प्रादुर्भाव होता है। जब यह जीवन-शक्ति पंच महाभूतों में स्थान पाती है तो आत्माएँ इनमें आकर रहने लगती हैं और प्राणी बन जाता है।

सुश्रुत संहिता में इस अन्तिम प्रक्रिया को इस प्रकार लिखा है—अव्यक्तं महानहंकारः पंचतन्मात्राणि चेत्यष्टौ प्रकृतयः शेषाः षोडशविकाराः।

अष्टधा प्रकृति—अव्यक्त महत्तत्व और अहंकार तथा पंच-तन्मात्रा ये आठ प्रकार की प्रकृति है और शेष सोलह (पाँच इन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ एक मन और पाँच महाभूत) विकार हैं।

तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्गः पुरुषः पंचविंशतितमः स च कार्यकारण संयुक्त श्चेतयिता भवति सत्यप्यचैतन्ये प्रधानस्य पुरुषकैवल्यार्थं प्रवृत्तिमुपदिशन्ति क्षीरादींश्च हेतुमुदाहरंति ॥८

ऊपर जो चौबीस वर्ग बताये हैं वे अचेतन हैं और चेतना वाला पच्चीसवाँ पुरुष (जीवात्मा) है। यह पुरुष कार्य (१६ विकारों से मिलकर उसमें चेतना उत्पन्न करने) वाला होता है। पुरुष की मोक्ष (कैवल्यावस्था अर्थात् प्रकृति के बाध से मुक्त होने) की ओर प्रवृत्ति होती है।

कल्प जिसको ब्रह्म दिन कहते हैं उस समय से प्रारम्भ समझना चाहिए जब अव्यक्त प्रकृति में सत्व रज तम की साम्यावस्था भंग होती है और वह दिन तब तक रहता है जब पूर्ण कार्य जगत् टूट-फूटकर पुनः अव्यक्त के रूप में प्रविष्ट होता है। यही दिन १ चतुर्युगियों तथा १४ मन्वन्तरों में बंटा हुआ ४१२ ० वर्ष का है।

प्राणी की उत्पत्ति

सृष्टि और प्राणी की उत्पत्ति बाईबल के अनुसार हम पहिले वर्णन कर आये हैं। उसमें लिखा है कि परमात्मा ने सृष्टि को छः दिन में बनाया। भारतीय परम्परा के अनुसार ब्रह्म दिन के ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। सातवां मन्वन्तर चल रहा है।

साथ ही तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है—

एक वो एत देवा नाम सम्वत्सर ॥ ३।९ ॥

अर्थात् सम्वत्सर देवताओं का एक दिन है। पारसियों के शास्त्र में लिखा है कि इस संसार की आयु १२ वर्ष है। वास्तव में यह देव वर्ष है।

एक वर्ष=३६ मानव वर्ष।

अतः १२ देव वर्ष=३६ ×१२ =४३२ वर्ष=१ चतुर्युगी। अभिप्राय यह है कि दिन तथा देव वर्ष में भ्रम हो गया है। जैसे पारसियों के १२ वर्ष का अर्थ १२ देव वर्ष होता है। सम्भवतः बाईबल के एक दिन का अर्थ एक मन्वन्तर है। ऐसा मान लेने से बाईबल की सृष्टि उत्पत्ति का काल वही हो जाता है जो भारतीय परम्परा के अनुसार है।

६ मन्वन्तर पहिले व्यतीत हो चुके हैं और सातवां मन्वन्तर चल रहा है।

(१) प्रथम मन्वन्तर सत रज तम के संतुलन टूटने से प्रारम्भ होकर नक्षत्रादि बनने तक रहा। उक्त गणनानुसार ४१२ ×७१ मानव वर्ष के लगभग व्यतीत हो गये थे।

इस काल का नाम स्वायम्भुव मन्वन्तर कहते हैं। इस मन्वन्तर अर्थात् प्रथम दिन में बाईबल में लिखा है।

(1) In the begining God created the heaven and the earth.

(2) And the earth was with-out form and void and darkness was upon the face the deep and the spirit of God moved upon the face of the water

(3) And God said let there be light and there was light.

(4) And God said let there be firmament in the midst of waters, and let it divide waters from waters.

अब इसी काल की व्याख्या बृहदारण्यकोपनिषद् में इस प्रकार लिखी है—

> नैवेह किंचनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत् ।
> अशनाययाऽशनाया हि मृत्युस्तन्मनोऽकुरुतात्मन्वी स्यामिति ॥
> सोऽर्चन्नचरत्तस्यार्चत आपोऽजायन्तार्चते वै मे कमभूदिति ।
> तदेवार्कस्यार्कत्वं कं ह वा अस्मै भवति य एवमेतदर्कस्यार्कत्वं वेद ॥
>
> बृह० १ १

अर्थात्-पहिले यहाँ कुछ भी नहीं था । यह सब मृत्यु से आवृत था । यह अशनाया (क्षुधा) से आवृत था । अशनाया ही मृत्यु है । उसने "मैं आत्मा से युक्त होऊँ" ऐसा मनन किया । उसने अर्चन करते हुए आचरण किया । उसके अर्चन से आप हुआ । अर्चन करते हुए मेरे लिए क (आप) प्राप्त हुआ । अतः यही अर्क का अर्कत्व है ।

इसमें अव्यक्त प्रकृति को मृत्यु अथवा अशनाया अवस्था माना है । यह (darkness over the deep) का भाव प्रकट करती है ।

इस अवस्था में प्रकृति की इच्छा आत्मवान् State of motion होने की हुई । अर्चन का अर्थ है प्रयत्न (effort) किया । महान् में से अहंकारों की उत्पत्ति होने लगी । इस अवस्था का नाम आप दिया है । इसको भी बाईबल में लिखा है, प्रकाश हुआ । अर्थात् हिरण्य-गर्भ बनना आरम्भ हुआ । आप का अर्थ जल नहीं । यह वह अवस्था है जो अहंकार बनने के समय होती है । यह प्रवाह की भाँति होती है । पार्थिव जल में प्रवाह होने से आप कहलाता है ।

आकाश में नेबुला देखे गये हैं । यह गैस (वायु) घूमती-सी प्रतीत होती है । इसी को बाईबल में firmament कहा है और पश्चात् water कहा है । उपनिषद् में आप कहा है ।

इस तुलना से यह प्रकट करने का यत्न किया गया है कि भारतीय परम्पराएं अन्य प्राचीन जातियों की कल्पनाओं से अधिक स्पष्ट और युक्ति युक्त हैं ।

(२) दूसरे मन्वन्तर में पृथ्वी बनी और ठोस होने लगी। इस मन्वन्तर को स्वारोचिष मनु का नाम दिया है।

(३) तीसरे मन्वन्तर के समय में पृथ्वी से चन्द्र पृथक हो गया। इसका नाम औत्तम मन्वन्तर है।

(४) चौथे मन्वन्तर में समुद्र से भूमि निकली। इसका तामस का नाम दिया है।

(५) पाँचवें में वनस्पतियाँ हुईं। यह रैवत मन्वन्तर था।

(६) छटे मन्वन्तर में पशु इत्यादि बने। यह चाक्षुष मन्वन्तर था।

(७) सातवें मन्वन्तर में मनुष्य का जन्म हुआ। इसका नाम वैवस्वत मन्वन्तर है।

इस सातवें मन्वन्तर की २७ चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं और अट्ठाईसवीं चतुर्युगी का सतयुग त्रेतायुग द्वापर युग व्यतीत होकर कलियुग के ५ ११ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

इस प्रकार भारतीय परम्परा के अनुसार जहाँ हमने सृष्टि (सौर-जगत्) की आयु अर्थात् इस सूर्य-मण्डल के हिरण्य-गर्भ के बनने से आरम्भ कर आज तक के वर्षों की गणना की है (इस गणना के अनुसार १९७२९४ ९१ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं) वहाँ हमने यह भी बताया है कि इस भूतल पर मानव को बने १२ ३३३ ६१ वर्ष हो चुके हैं।

यह माना गया है कि पृथ्वी पर पहिले वनस्पति लगी। पश्चात कृमि पतंगे पशु इत्यादि बने और तब मनुष्य बना। ये कैसे बने इसकी भी एक विचित्र कथा है।

सृष्टि-उत्पत्ति-काल की वैज्ञानिक गणना

वैज्ञानिक गणना से हमारा अभिप्राय वर्तमान वैज्ञानिकों के द्वारा की गयी गणना है। आज के वैज्ञानिकों में एक विशेषता है। वह यह कि वे इस काल को सर्वोन्नत काल समझते हैं और वे मानते हैं कि जो कुछ वे आज देख रहे हैं पहिले कभी किसी को ज्ञात नहीं था। इससे यह परिणाम निकाल लेना स्वाभाविक ही है कि जो कुछ भी प्राचीन ग्रन्थों में लिखा मिलता है वह सत्य हो ही नहीं सकता। यह अधूरे ज्ञान पर आधारित है।

बाईबल में दी गई गणना ने वैज्ञानिकों के मन का समर्थन ही किया है। यह गणना इतनी कम थी कि इससे पहिले के मनुष्य के तो अवशेष ही मिल रहे थे।

भारतीय गणना की भी उन्होंने उसी प्रकार अवहेलना की जिस प्रकार बाईबल गणना की भी की। जहाँ बाईबल की गणना बहुत कम समझ में आयी वहाँ उनको भारतीय गणना बहुत अधिक प्रतीत हुई। भारतीय गणना के भविष्य पर तो ईसाई पादरी वैज्ञानिकों के साथ मिल गये। उनका यत्न था कि जितनी कम आयु सृष्टि की निकाली जाये उतनी ही बाईबल की सत्यता सिद्ध होगी।

वैज्ञानिकों ने सृष्टि की उत्पत्ति और उस पर मानव की उत्पत्ति का काल निकालने में अपने ही उपाय विचार किये हैं। जहाँ वैज्ञानिकों के नये-नये ढंगों से पृथ्वी की आयु प्रतीत करने के यत्नों की हम सराहना करते हैं वहाँ हम यह भी पाठकों के ज्ञान में ले आना चाहते हैं कि आधुनिक विज्ञान एक प्रगति शील वस्तु है और प्रत्येक होने वाले आविष्कार से इस आयु को प्रतीत करने के नये उपाय पता चल जाते हैं और उनसे पृथ्वी की आयु पहिले से अधिक ही निकलती है। नीचे के अंकों से इस बात का पता चलता है।

पृथ्वी की आयु सूर्य-ताप से १८ से २ मिलियन वर्ष = २ वर्ष
मू-ताप से २० से १ „ = १
„ „ समुद्र जल में नमक से १ मिलियन वर्ष = १ „
भूगर्भ विद्या से १ „ = १ „
„ रेडियो एक्टिविटी १७ „ = १७

ये आँकड़े The Age of the Earth नामक पुस्तक में से लिये गये हैं।

इस आयु को जानने के लिए नये ढंग निकाले जा रहे हैं और नवीनतम उपायों से देखने पर पृथ्वी की आयु अधिक और अधिक मानी जाने लगी है। इसकी तुलना करिये पिछले अध्यायों में ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार पृथ्वी की आयु की गणना से। वह है १९७२९४९१२१ वर्ष।

यह ठीक है कि वैज्ञानिकों की गणना यद्यपि बाईबल से बहुत दूर चली गई है फिर भी भारतीय गणना से बहुत न्यून है। इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि वैज्ञानिक ठीक दिशा में जा रहे हैं। यह असम्भव नहीं कि वे एक दिन भारतीय ज्योतिष गणना को स्वीकार कर लें।

एक और तरीका है जिससे भी उक्त बात समझ में आती है। भिन्न-भिन्न जातियों के इतिहासों में जातियों के उद्गम काल का पता किया गया है। वह

गणना भी अपनी अद्भुत कहानी बताती है। भिन्न-भिन्न सम्वत् और काल जो अभी तक नवीन तथा प्राचीन जातियों के अवशेषों से पता चले हैं वे इस प्रकार हैं।

ईसा के जन्म दिन से	१९५१ वर्ष
मूसाई सम्वत् [प्रचार काल से]	१५१
युधिष्ठिर सम्वत् [कलि सम्वत्]	५ ५१
इबरानियन् सम्वत्	५९७९
इजिप्शियन	२८६१२
फिनिशियन „	३ ५४
इरानियन	१८९९५२
कालडियन	४७ ५४
कालडियन का पूर्व	२१५ ५४
प्रथम पुरुष से चलताई गणना	८८ ४ ३ ५
चीन के प्रथम राजा का सम्वत्	९६ २४५१
वैवस्वत मनु से आर्य	१२ ५३१ ६१
आदि सृष्टि से [कल्प सम्वत्]	१९७२९४ ९१

यह वही कहानी है जो वैज्ञानिकों की गणनाओं से पता चलती है। इस सब से यह सिद्ध होता है कि भारतीय गणना ही ठीक है।

भारत के आधुनिक विद्वानों के मस्तिष्क भी इन दीर्घ गणनाओं को पढ़कर चकराने लगते हैं। यह इन गणनाओं का दोष नहीं। दोष है उनकी बुद्धि के अल्पज्ञान का। जो कुछ वे अपने गुरुओं से सीखे हैं उसी ने उनकी बुद्धि को सीमित कर रखा है।

यों तो अब वे भारतीय विद्वान भी बाइबिल से निर्धारित सीमाओं को पार करते जाते हैं। तनिक कुछ अर्वाचीन विद्वानों के कथन सुनिये।

मैक्समूलर ने ऋग्वेद का काल ईसा से १२ वर्ष पूर्व लिखा।
बाल गंगाधर तिलक ने (ओरायन) में से ४ „ „ „ ।
बाल गंगाधर तिलक ने [उत्तर ध्रुव] में ६ „ „ „ ।
उमेशचन्द्र दत्त विद्यारत्न ने सोमवेद „ ९ „ „ ।
पावगी महोदय ने २४ „ „ „ ।

अविनाशी बाबू ने अपनी "ऋग-वैदिक इण्डिया" नामक पुस्तक में लिखते हैं—

The age of the early Rigvedic civilisation goes back to a

period of time which is lost in the impenetrable darkness of the past to which hundreds of thousands, if not quite a million of years, can be safely assigned, without one being accused of romancing wildly (Rig Ind. Page 230)

This goes to confirm the popular belief that the Vedas are eternal and not ascribable to any human agency (apaurusheya) and that they emanated from Brahma the Creator Him-self (Rig Ind. Page 558)

अर्थात् प्राचीन ऋग्वैदिक सभ्यता का समय इतने दूर अदृश्य प्राचीन काल में चला जाता है जिसको करोड़ों नहीं तो लाखों वर्षों में कहा ही जा सकता है। ऐसा कहते हुए इस बात के आरोप का भय नहीं कि यह कल्पना से कहा जा रहा है।

इससे यह सिद्ध होता है कि भारत में प्रचलित विचार कि वेद किसी मानव के बनाये नहीं अपितु अपौरुषेय हैं ठीक है। ये साक्षात् ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं।

यह अविनाश बाबू योरुपियन ढंग से अन्वेषण करने वालों में हैं। इनका कहना है कि वेदों में सरस्वती नदी सीधी समुद्र में जाकर मिलती लिखी है। अर्थात् वेद उस समय के लिखे हैं जब राजपूताना सागर के नीचे था। यह भूगर्भ के वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी के टर्शयरी युग में था। इस युग में भारत में वेद लिखने वाले उपस्थित थे और उन्हीं वैज्ञानिकों के अनुसार इसको लाखों वर्ष हो चुके हैं।

इसके विषय में अविनाश बाबू लिखते हैं—

As regards my calculation of the age of some of the oldest hymns of the Rigveda which I have set down to the Miocene at any rate to the Pliocenee or the Pleistocenee epoch, I am afraid that Vedic scholars will accuse me of romancing wildly But if the geological deductions are found to be correct, my calculations which are based on them, cannot be wrong They will either stand or fall with them. (Rig Ind. Page 567)

अर्थात्—जहाँ तक मेरी गणनाओं का सम्बन्ध है कि ऋग्वेद के कुछ मन्त्र मायोसीन अथवा पिलोसीन या कम-से-कम प्लीसोसीन युग के लिखे हुए हैं, मुझको भय है कि (योरुपियन) वेदों के विद्वान मुझ पर काल्पनिक कहानियाँ लिखने का आरोप लगायेंगे। परन्तु यदि भूगर्भ का शास्त्र ठीक है तो मेरी गणना भी जो उसी पर आधारित है गलत नहीं हो सकती। दोनों उसके अनुसार

—६

ही ठीक अथवा गलत मानी जायेंगी ।

हम भारतीय परम्पराओं के मानने वाले तो कर्नल टाड के तथा अन्य योरुपियन इतिहास लेखकों के ढंग को ठीक नहीं मानते । हमारा तो मत है कि वेदों में नदी नामों का उल्लेख नहीं है । सिन्धु अथवा सरस्वती इत्यादि का वहाँ कुछ और अर्थ है ।

इस पर भी योरुपियनों द्वारा युगों का निश्चय करने के अपने ढंग भी तो योरुप के इतिहास लेखकों की बातों को अनर्गल सिद्ध करते हैं ।

इस अध्याय में हमने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि वैज्ञानिक भी धीरे-धीरे पृथ्वी की आयु और मनुष्य की भूतल पर आयु लम्बी और लम्बी करते जाते हैं । यह असम्भव नहीं कि अन्त में वे भी मान जायें कि ज्योतिष-शास्त्र दोनों की ठीक गणनाएँ बताते हैं ।

चतुर्थ परिच्छेद

महाप्रलय-प्रलय

यह हम लिख चुके हैं कि भारतीय-परम्परा के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति को आज १९७२९४ ९४ वाँ वर्ष चल रहा है। इसको हमारे पंचांगों में सृष्टि सम्वत कहते हैं। यह गणना उस समय से है, जब आदि प्रकृति (अव्यक्त) में सत रज तम की साम्यावस्था भंग हुई और प्रकृति में गति उत्पन्न हुई। इसको ही सौर-जगत का आरम्भ मानना चाहिए।

यह भी हमने लिखा है कि इस भूमण्डल में अनेकों सौर-जगत् हैं। उनकी उत्पत्ति अथवा विनाश के साथ हमारे सौर-जगत् की उत्पत्ति तथा प्रलय काल का कोई सम्बन्ध नहीं। उक्त गणना अपने सौर-जगत् की ही है। जिसका पृथिवी एक छोटा सा अंश है।

यह सौर-जगत जो नित्य दिखाई देने वाले सूर्य के चारों ओर घूम रहा है, सम्भव है किसी अन्य इससे भी महान सूर्य के चारों ओर घूम रहा हो। अतएव जो गणना ऊपर लिखी गई है वह इस सूर्यमण्डल से ही सम्बन्ध रखती है। कारण यह है कि यह गणना इस सौर-जगत् के नक्षत्रों की गतियों से ही की गई है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मनुष्य तो उस समय बना नहीं था। फिर उसने कैसे यह सब गणना और सृष्टि उत्पत्ति के समय नक्षत्रों का एक युति में होना जान लिया है? ज्योतिष-शास्त्र और ज्ञान तो मानव सृष्टि के पहिले का नहीं हो सकता। ब्रह्म-दिन का आरम्भ तो मनुष्य के बनने से एक अरब वर्ष के लगभग पहिले हुआ था। यह गणना कैसे की गई है?

इसका उत्तर यह है कि तारागणों तथा नक्षत्रों की गति-विधियों के ज्ञान के अतिरिक्त अनुभव और ऋतम्भरा नाम की प्रज्ञा से यह ज्ञान हुआ प्रतीत होता है।

कुछ भी हो हमने यह सिद्ध कर दिया है कि इस सृष्टि सम्वत् की गणना में अद्भुत ज्ञान का प्रदर्शन किया गया है। वर्तमान मानव का ज्ञान

धीरे-धीरे इस ज्ञान की ओर ही पहुँचता जाता है।

सृष्टि के उत्पत्ति काल की परम्परा के अतिरिक्त भूतल पर मानव की उत्पत्ति की परम्परा का भी हमने उल्लेख किया है। उस परम्परा के अनुसार मनुष्य को इस सृष्टि पर उत्पन्न हुए १२ १११ १४ वाँ वर्ष जा रहा है।

अब एक तीसरी परम्परा का वर्णन करते हैं। वह परम्परा है, प्रलय और महाप्रलय के विषय में। इसका सम्बन्ध उत्पत्ति के साथ ही है। जो वस्तु बनती है, वह टूटती भी है। यह इस जगत का नियम है।

इसमें यह लिखा है कि अव्यक्त रूप प्रकृति का निवास शान्त और रात्रि समान प्रकाश-शून्य था। इस अवस्था को मृत्यु अथवा इत्यादि नामों से स्मरण किया जाता है। उस अव्यक्त से जो अनादि है यह व्यक्त (प्रत्यक्ष जगत्) बना है। यह हम सांख्य के सूत्र १।६१ के प्रमाण से बता चुके हैं।

और भी लिखा है—

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च

व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः

श्वेता० १।८

क्षर और अक्षर अर्थात् व्यक्त और अव्यक्त जगत् का आश्रय परमात्मा है।

शास्त्र का यह कथन है कि व्यक्त और अव्यक्त जगत् दोनों मिश्रित मिलते हैं। व्यक्त नाशवान है और अव्यक्त अविनाशी।

यह भी इसमें लिखा है कि व्यक्त जगत् के बनने से लेकर इसके विनाश-काल तक ४३२० वर्ष व्यतीत हो जायेंगे। जब यह काल आता है तब ब्राह्म रात्रि आ जाती है जो उतने ही काल तक रहती है। ब्राह्म रात्रि के आने के काल को महाप्रलय का काल कहा जाता है।

यह बात स्वयं सिद्ध है कि पृथ्वी का तापमान सूर्य के ताप पर निर्भर है। सूर्य का ताप उसके अहंकारों के पृथक्करण के कारण है और यह पृथक्करण सूर्य की चक्राकार गति के कारण होता है। इस गति के कारण भूतादि अहंकार सूर्य की परिधि की ओर आ रहा है और सात्त्विक अहंकार केन्द्र की ओर जा रहा है। इस पृथक्करण के कारण प्रचण्ड-ताप और प्रकाश की उत्पत्ति होती है। यह पृथक्करण तद्रूप ताप और प्रकाश बढ़ता घटता रहता है। सूर्य के तापमान में वृद्धि अथवा न्यूनता का सम्बन्ध नक्षत्रों की गति और स्थिति पर निर्भर है।

जब से पृथ्वी बनी है कई बार सूर्य का तापमान और प्रकाश बढ़ा और

घटा है। कभी नक्षत्रों का ऐसा संयोग हो जाता है कि सूर्य का तापमान बहुत अधिक हो जाता है तथा पृथ्वी पर का पूर्ण जल वाष्प बनकर उड़ जाता है और पृथ्वी कूर्म पृष्ठ-वत् (कछुए की पीठ की भाँति) हो जाती है। यह कई बार हो चुका है।

ऐसे समय सब समुद्र सूख गये सब वनस्पति इत्यादि विनष्ट हो गयीं। जब तक यह स्थिति रही अनावृष्टि का काल रहा। जब भी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है तब यह एक सौ वर्ष तक रहती है। वह ताप जिससे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है उसको बड़वानल अग्नि का नाम दिया जाता है। इसको प्रलय की अग्नि भी कहते हैं।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि यह वह प्रलय नहीं जो कल्प के अन्त में होती है। उस समय तो सूर्य नक्षत्र इत्यादि कुछ भी नहीं रहता। पृथ्वी भी अन्य पदार्थों के साथ विनाश को प्राप्त होती है। उस प्रलय को महाप्रलय कहते हैं। उससे पूर्ण सौर-जगत् ही नाश को प्राप्त होता है।

परन्तु जिसका उल्लेख हम अब कर रहे हैं उसमें तो सूर्य भी रहता है और पृथ्वी भी। इसका कारण भी महाप्रलय के कारण से भिन्न है। इसको खावान्तर अथवा युगान्तर प्रलय कहते हैं।

पृथ्वी द्वितीय मन्वन्तर में बनी थी और तब से आज तक ऐसी प्रलय कई बार हो चुकी है। पृथ्वी को बने यह हमने पहले ही लिखा है कि १९२५८ १२१२१ वर्ष से ऊपर हो चुके हैं। इस काल में कई युगान्तर प्रलय हो चुकी हैं।

मनुष्य की उत्पत्ति इस भूतल पर बहुत पीछे हुई। मनुष्य सातवें मन्वन्तर में उत्पन्न हुआ था। इसको १२ २११ ६१ वर्ष हो चुके हैं। इस काल में भी खावान्तर प्रलय कई बार हो चुकी है। ऐसी प्रलयों में पहिले अनावृष्टि का काल आता है। पीछे अतिवृष्टि का। अतिवृष्टि से पूर्ण पृथ्वी पर जलप्लावन की सी अवस्था हो जाती है। तदनन्तर जल बादल बनकर आकाश में जाने लगता है और भूमि जल में से बाहर निकलने लगती है।

आरम्भ में यह निकलती हुई भूमि जल में से निकल रहे कमल की भाँति दिखाई देती है। जिन प्लावनों अथवा अनावृष्टि के काल में पूर्ण प्राणी समाप्त हो जाते हैं तब इस कमल रूपी पृथ्वी पर ब्रह्मा अर्थात् परमात्मा प्राणियों की सृष्टि करता है।

कभी तापमान में वृद्धि कम अधिक नहीं होती न ही पृथ्वी का पूर्ण जल सूखता है। परिणाम स्वरूप अनावृष्टि काल कम रहता है और वृष्टि भी

कम ही रहती है। ऐसे भावान्तर प्रसव में वनस्पति और प्राणी बने रहते हैं।

इस सम्बन्ध में यह यह कथा महाभारत ग्रन्थ में एक साहित्यिक ढंग से लिखी गयी है। साहित्यकार श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास जी इसको ब्रह्मा के अपने मुख से इस प्रकार कहलवाते हैं—

> ॐ नमस्ते ब्रह्महृदय नमस्ते मम पूर्वज
> लोकाद्य भुवनश्रेष्ठ सांख्ययोगनिधे प्रभो ॥
> व्यक्ताव्यक्तकराचिन्त्य क्षेमं पन्थानमास्थित ।
> विश्वभुक् सर्वभूतानामन्तरात्मन्नयोनिज ॥
> अहं प्रसादजस्तुभ्यं लोकधाम स्वयम्भुव ।
> त्वत्तो मे मानसं जन्म प्रथमं द्विजपूजितम् ।
> चाक्षुषं वै द्वितीयं मे जन्म चासीत् पुरातनम् ॥
> त्वत्प्रसादात् तु मे जन्म तृतीयं वाचिकं महत् ।
> त्वत्तः श्रवणजं चापि चतुर्थं जन्म मे विभो ॥
> नासिक्यं चापि मे जन्म त्वत्तः पञ्चममुच्यते ।
> अण्डजं चापि मे जन्म त्वत्तः षष्ठं विनिर्मितम् ॥
> इदं च सप्तमं जन्म पद्मजन्मेति वै प्रभो ।
> सर्गे-सर्गे ह्यहं पुत्रस्तव त्रिगुणवर्जित ॥ म. भा. शा. १७७-१८४१

ब्रह्मा श्री हरि से कहते हैं—

हे प्रभो वेद आपका हृदय है। आप मेरे पूर्वज हैं। आप जगत् के आदि कारण हैं। आप सांख्य योग निधि हैं। हे प्रभो आपको बारम्बार नमस्कार हो।

आप अव्यक्त से व्यक्त को उत्पन्न करने वाले हैं। अचिन्त्य हैं। आप कल्याणमय मार्ग में स्थित हैं। विश्व-पालक आप सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तरात्मा हैं। किसी योनि से उत्पन्न नहीं होते। जगत् के आधार स्वयम्भू हैं। मैं आपकी कृपा से उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा प्रथम जन्म जो आप से हुआ वह द्विजों में पूजनीय हुआ। वह आप से मानस जन्म था अर्थात् आपके मन से उत्पन्न हुआ। दूसरे जन्म में मैं आपके नेत्र से उत्पन्न हुआ था।

मेरा तीसरा महत्वपूर्ण जन्म आपके वचन से हुआ था। पश्चात् चौथा जन्म आपके कानों से हुआ। पाँचवाँ नासिका से। छठा आपके ब्रह्माण्ड से था। यह सातवाँ जन्म है। इस बार मैं कमल से उत्पन्न हुआ हूँ। इस प्रकार सर्ग सर्ग में मैं आपका पुत्र होकर जन्म लेता हूँ।

यह सब बात अलङ्कारिक रूप में वर्णन की गयी है। यदि इसका साहित्यिक आवरण उतार दिया जावे तो इससे यह पता चलता है कि सृष्टि

की उत्पत्ति में ब्रह्म (परमात्मा की) शक्ति कार्य करती है। परमात्मा की रचनात्मक शक्ति का नाम ही ब्रह्मा है।

सौर-जगत् की उत्पत्ति के आरम्भ से अब तक छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में ब्रह्म शक्ति का प्रादुर्भाव होता है तथा उससे मन्वन्तर परिवर्तन होता है। अतः अब से पूर्व छः मन्वन्तर हो चुके हैं। जैसी-जैसी आवश्यकता व परिस्थिति थी वैसी ही ब्रह्म-शक्ति उत्पन्न होकर परिवर्तन लाती रही है। सातवें मन्वन्तर में मानव सृष्टि उत्पन्न करने के लिए ब्रह्मा कमल से उत्पन्न हुए हैं।

प्रत्येक मन्वन्तर के अन्त में किसी प्रकार का भारी उत्पात अर्थात् सौर-जगत् में उपद्रव होते हैं और उससे परिवर्तन होते हैं।

वर्तमान मन्वन्तर अर्थात् वैवस्वत मनु के आरम्भ में ब्रह्म-शक्ति अर्थात् ब्रह्मा कमल से उत्पन्न हुए। कमल का अर्थ पानी से निकल रही भूमि से है।

यह हम ऊपर लिख आये हैं कि प्रत्येक ४३२ वर्ष के पश्चात् सातों नक्षत्र तथा सूर्य एक युति (एक रेखा) में आ जाते हैं। कदाचित नक्षत्रों के एक युति में आ जाने से सूर्य में ताप बढ़ता है और फिर उससे यह सब घटना घटती है जिसका ऊपर वर्णन किया गया है।

इसको महाभारत में इस प्रकार वर्णन किया है—

तस्मिन् युगसहस्रान्ते सम्प्राप्ते चायुषः क्षये ।
अनावृष्टिर्महाराज जायते बहुवार्षिकी ॥६५॥
ततस्तान्यल्पसाराणि सत्त्वानि क्षुधितानि वै ।
प्रलयं यान्ति भूयिष्ठं पृथिव्यां पृथिवीपते ॥६६॥
ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप ।
पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च ॥६७॥
यच्च काष्ठं तृणं चापि शुष्कं चार्द्रं च भारत ।
सर्वं तद् भस्मसाद् भूतं दृश्यते भरतर्षभ ॥६८॥
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह भारत ।
लोकमाविशते पूर्वमादित्यैरुपशोषितम् ॥६९॥
ततः स पृथिवीं भित्त्वा प्रविश्य च रसातलम् ।
देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत् ॥७०॥
निर्दहन् नागलोकं च यच्च किञ्चित् क्षिताविह ।
अधस्तात् पृथिवीपाल सर्वं नाशयते क्षणात् ॥७१॥

ततो योजनविंशानां सहस्राणि शतानि च ।
निर्दहत्यशिवो वायुः स च संवर्तकोऽनलः ॥७२॥
सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
ततो दहति दीप्तः स सर्वमेव जगद् विभुः ॥७३॥
ततो गजकुलप्रख्यास्तडिन्मालाविभूषिताः ।
उत्तिष्ठन्ति महामेघा नभस्यद्भुतदर्शनाः ॥७४॥
विद्युन्मालापिनद्धाङ्गाः समुत्तिष्ठन्ति वै घनाः ॥७७॥
घोररूपा महाराज घोरस्वनिनादिताः ।
ततो जलधराः सर्वे व्याप्नुवन्ति नभस्तलम् ॥७८॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सपर्वतवनाकरा ।
आपूर्यते महाराज सलिलौघपरिप्लुता ॥७९॥
ततस्ते जलदा घोरा राविणः पुरुषर्षभ ।
सर्वतः प्लावयन्त्याशु चोदिताः परमेष्ठिना ॥८०॥
वर्षमाणा महत् तोयं पूरयन्तो वसुंधराम् ।
सुघोरमशिवं रौद्रं नाशयन्ति च पावकम् ॥८१॥
ततो द्वादशवर्षाणि पयोदास्त उपप्लवे ।
धाराभिः पूरयन्तो वै चोद्यमाना महात्मना ॥८२॥

उक्त श्लोक महाभारत वन पर्व अध्याय १८८ के हैं। इनमें प्रलय काल के अद्भुत चित्र का चित्रण किया गया है। इनके अर्थ लगाने में भी इनका साहित्यिक आवरण उतार कर ही इनका ऐतिहासिक अंश ग्रहण करना चाहिए।

इसमें लिखा है कि आयु को क्षीण करने वाले सहस्रों वर्षों के व्यतीत हो जाने पर (युगों के अन्त में) अनावृष्टि काल आ जाता है तथा कई वर्ष तक रहता है। इससे इस भूतल पर न्यून शक्ति वाले अधिकांश प्राणी भूख से व्याकुल होकर मर जाते हैं।

तब प्रचण्ड तेज वाले सात सूर्य उदित होकर सरिताओं और समुद्र का सब जल सोख लेते हैं। इसका अर्थ है कि सूर्य का ताप सात गुना हो जाता है अथवा ब्रह्माण्ड में भ्रमण कर रहे अन्य सूर्य भी पृथ्वी के समीप आ जाते हैं।

इसके पश्चात् "संवर्तक" नाम की प्रलय कालीन अग्नि वायु के साथ उन संपूर्ण लोकों में फैल जाती है जहाँ का जल ऊपर लिखा सूर्य सोख चुका होता है।

यह अग्नि पृथ्वी का भेदन कर रसातल तक पहुँच जाती है। सब देवता एवं दानवों के लिए भी भय उपस्थित हो जाता है।

पृथ्वी के नीचे भी जो कुछ है सब भस्म हो जाता है। तत्पश्चात् यह मर्मभञ्जकारी वायु और संवर्तक अग्नि बाईस हजार योजन तक के लोकों को भस्म कर देती है।

अब आकाश में महान मेघों की घोर घटाएँ आने लगती हैं। ये बहुत बड़े-बड़े बादल विद्युत मालाओं से सुशोभित दिखाई देते हैं।

इसका अर्थ यह है कि नक्षत्रों की युति टूट जाने पर सूर्य में ही रहा पृथक्करण धीमा पड़ जाता है। तापमान कम हो जाता है और भूमण्डल में वाष्प बना हुआ जल बादलों का रूप धारण कर लेता है।

ये सभी बादल विद्युत-मालाओं से अलंकृत पृथ्वी को घेर लेते हैं। इनमें भयंकर गर्जना होती है। ये समूचे नभमंडल को ढाँप लेते हैं।

तब ये बरसते हैं और इनकी वर्षा से पर्वत वनों सहित पूर्ण भूमि अगाध जल राशि से भर जाती है और उसमें डूब जाती है। तप्त-पृथ्वी शान्त हो जाती है।

यह वृष्टि बारह वर्ष तक होती रहती है। जब मेघ जल से रिक्त हो, जाते हैं तब वायु उनको छिन्न-भिन्न कर देती है।

यह है प्रलय का दृश्य। यह आवान्तर अर्थात् युगान्तर प्रलय का स्वरूप भारतीय शास्त्रों में वर्णन किया गया है।

इसके पश्चात् वाराह (जल शोषक बादलों) से जल सूखने लगा और पृथ्वी जल से बाहर निकलने लगी। यह कमल के समान थी।

ततस्तं भास्वं घोरं स्वयम्भूर्मगुजाभिव।

आदि वयालयो देव पीत्वा स्वपिशिवालय ॥८४॥ म भा वन०

इसके पश्चात् आदि देव ब्रह्मा जो स्वयम्भू हैं कमल में निवास करने वाली वायु पीकर सो जाते हैं।

इसकी तुलना बाईबल से करिये। बाईबल की पुरानी पुस्तक "उत्पत्ति" के अध्याय दूसरे के १ २ में लिखा है—

I Thus the heavens and the earth were finished and all the host of them.

II And on the seventh day God ended his work which he had made; and he rested on the seventh day from all his work which he had made

महाप्रलय तो ब्रह्म दिन की समाप्ति पर होती है।

ब्रह्मा की उत्पत्ति

इसमें ब्रह्मा को परमात्मा की रचनात्मक शक्ति का नाम दिया है। इस विषय पर महाभारत शान्ति प० १८२ में इस प्रकार लिखा है—

तततस्तेजोमयं दिव्यं पद्म सृष्टं स्वयम्भुवा।
तस्मात् पद्मात् समभवद् ब्रह्मा वेदमयो निधिः ॥१३॥

अर्थात्—इसके पश्चात् उस स्वयम्भू मानस देव (परमात्मा) ने पहिले एक दिव्य कमल उत्पन्न किया। उस कमल में से ब्रह्मा जी प्रकट हुए। वे वेदमय थे। अर्थात् वे ज्ञानमय थे। (वर्तमान वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार वे वन मानुष अल्पबुद्धि नहीं थे)।

आगे चलकर लिखा है—

स एष भगवान् विष्णुरनन्त इति विश्रुतः।
सर्वभूतात्मभूतस्थो दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः ॥२॥

यह स्वयम्भू ही भगवान विष्णु हैं जो अनन्त नाम से प्रसिद्ध हैं। यह सर्वभूतों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी-आत्मा के रूप में विद्यमान हैं।

इस प्रकार भारतीय परम्परा के अनुसार आदि सृष्टि में परमात्मा ने ही सृष्टि की रचना की और ब्रह्मा आदि मानव हो थे तथा वह उत्पन्न होते समय ज्ञानमय थे।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड स० ११ में भी लिखा है

सर्वं सलिलमेवासीत् पृथिवी तत्र निर्मिता।
ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह ॥३॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम्।
असृजच्च जगत् सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः ॥४॥

पहिले सब कुछ जलमय था। उस जल के भीतर पृथ्वी का निर्माण हुआ। तब देवताओं के साथ ब्रह्मा प्रकट हुए।

इसके पश्चात् वराह ने पृथ्वी को जल से निकाला और अपने कृतात्मा पुत्रों के साथ सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की।

कमल के विषय में हम लिख चुके हैं कि जल से निकल रही पृथिवी को ही कमल माना है। यही स्थान है जिस पर ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की।

इसमें भी स्पष्ट प्रमाण है—

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ॥३७॥

कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः ।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान् सृजते जगतः प्रभुः ॥१८॥

म भा शा प १८२

मानस देव का स्वरूप ही ब्रह्मा का रूप है। उन्हीं ब्रह्मा जी के आसन के लिए पृथ्वी को ही कमल कहते हैं।

इस कमल की कर्णिका मेरु पर्वत है जो आकाश में बहुत ऊँचे तक गया है। उसी के (कमल के) मध्य भाग पर स्थित होकर जगदीश्वर ब्रह्मा सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करते हैं।

समुद्र से निकली भूमि ही कमल है और जो भूमि सबसे पहले जल से निकली वह मेरु पर्वत का शिखर था।

इस पर्वत को जल से निकालने में कारण वराह भगवान थे। वराह उन बादलों को कहते हैं जो जल का शोषण करते हैं। इस शब्द का मूल अर्थ है वर (जल) का आहरण करने वाला। निघण्टु १।१ में वराह पद मेघों में पठित है।

निरुक्त ५।४ में लिखा है 'वराहो भवति वराहारः' अर्थात् जल का आहरण करने वाले को वराह कहते हैं।

इन प्रमाणों से यह इतिहास निकला कि जलप्लावन जिसका युगान्तर प्रलय के समय होने का वर्णन हमने पिछले अध्याय में लिखा है के पश्चात् जल को शोषण करने वाले बादलों से जल सूखने लगा एवं भूमि जल से ऐसे निकली जैसे जल में से कमल निकलता है। सबसे पहले मेरु पर्वत का शिखर निकला और उस निकली भूमि पर परमात्मा की रचनात्मक शक्ति से सृष्टि हुई। प्रथम सृष्टि उत्पत्ति का स्थान निश्चय हो गया। यह पर्वत हिमालय के पार्श्व में है। ब्रह्मा को ही परमात्मा की रचनात्मक शक्ति का नाम दिया है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ब्रह्मा का शरीर पंच भौतिक था अथवा नहीं? यह तो हम लिख चुके हैं कि पंच भौतिक शरीर में सात्त्विक अहंकार और तैजस अहंकार के संयोग से चेतना स्थान (मन और इन्द्रियाँ) बना और तब आत्मा उसमें आकर बैठ गई। यह संयोग-भूतादि अहंकार और तैजस अहंकार का तथा तैजस अहंकार और सात्त्विक अहंकार का तो परमात्मा की इच्छा से ही हुआ। इसको करने में भी परमात्मा की रचनात्मक शक्ति ने योग दिया। उसके पश्चात् आत्मा उसमें आकर बैठी तो ब्रह्मा बन गया।

आत्मा के विषय में दो मत हैं। एक मत यह मानता है कि परमात्मा स्वयं ही आत्मा का रूप धारण कर उसके चेतनास्थान युक्त पंच-भौतिक शरीर

में आ उपस्थित होता है। तथा दूसरा मत यह है कि पूर्व कल्प की वे आत्माएँ जो ब्रह्म रात्रि के समय सुषुप्ति अवस्था में थीं इन बन रहे चेतना-युक्त शरीरों में अपने-अपने कर्म फल से आ गईं।

आत्मा तथा ब्रह्म एक नहीं। इस विषय में सुश्रुताचार्य अपने सुश्रुत ग्रन्थ में इस प्रकार लिखते हैं।

तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्गः पुरुषः पंचविंशतितमः स च कार्यकारणसंयुक्तश्चेतयिता भवति सत्यप्यचैतन्ये प्रधानस्य पुरुषकैवल्यार्थं प्रवृत्तिमुपदिशन्ति क्षीरादींश्चात्र हेतूनुदाहरन्ति ॥

समस्त वर्ग (प्रकृत्यादि २४ तत्व) चेतना से रहित है। चेतना वाला पच्चीसवाँ पुरुष है (यहाँ पुरुष का अर्थ जीवात्मा है)। वह पुरुष कार्य (पंच महाभूत) और कारण (अव्यक्तादि अष्टधा) प्रकृति से संयुक्त होकर ही चेतना करने वाला है। प्रकृति तो अचेतन है। पुरुष (जीवात्मा) की कैवल्यार्थ (मोक्ष) की प्रवृत्ति होती है।

इसी भाव के एक अन्य आयुर्वेद पंडित भावमिश्र वर्णन करते हैं—

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वपुर्गृहे।
जीवात्मा नियतेर्नित्यो वसति स्वात्मभूतवान् ॥

इस प्रकार चौबीस तत्वों से सिद्ध किये (रचे हुए) शरीर रूपी घर में नियति (कर्मों) के अधीन अपने दूत (मन) के साथ जीवात्मा रहता है। आगे चलकर सुश्रुताचार्य लिखते हैं—

न चायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्ते सर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च असर्वगतेषु च क्षेत्रज्ञेषु नित्येषु पुरुषव्यापकत्वाद्धेतूनुदाहरन्ति ॥१७॥

आयुर्वेदशास्त्रेष्वसर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च तिर्यग्योनिमानुषदेवेषु संचरन्ति धर्माधर्मनिमित्तम् ॥१८॥

आयुर्वेद शास्त्र में क्षेत्रज्ञों (जीव) को सर्वगत (सर्व व्यापक) नहीं मानते। (यदि जीव सर्व-व्यापक होता तो एक ही समान सुख-दुःख सबको होता। ऐसा नहीं होने से जीव सर्व-व्यापक नहीं।) परन्तु नित्य है। असर्वगत (एक शरीर व्यापी) जीवों में नित्य पुरुष व्यापक हेतुओं को देखते हैं।

असर्वगत जीव नित्य है। वह धर्म और अधर्म का निमित्त पाकर तिर्यग्योनि (पशु की जाति) तथा मनुष्य देह अथवा देव देह में विचरते हैं।

इससे ब्रह्मा शरीरधारी आदि-पुरुष भी माना जा सकता है। यह भी सम्भव है कि ब्रह्मा तो रचनात्मक शक्ति ही हो और फिर ब्रह्मा से उत्पन्न किये जाने वाले सदेह प्राणी बने हों। अधिक सम्भव यही है कि ब्रह्मा एक सशरीर

व्यक्ति था और उसने आगे सृष्टि चलाई। ब्रह्मा के शरीर में किसी पूर्व कल्प की अति श्रेष्ठ आत्मा को स्थान मिला।

ब्रह्मा से जीवों की उत्पत्ति

ब्रह्मा विशेष गुण सम्पन्न व्यक्ति था। उसमें अमैथुनीय सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति थी।

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ म. भा. आ. ६५.१०

ब्रह्मा के छः मानस-पुत्र महर्षि विख्यात हैं। मरीचि अत्रि अंगिरा पुलस्त्य पुलह व क्रतु।

ये तो विख्यात पुत्र हैं परन्तु कई अविख्यात भी हुए हैं। ब्रह्मा ने कई *प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की। इस सृष्टि का संकेत मात्र वर्णन* भागवत् महापुराण में भी किया है। श्रीमद्भागवत् महापुराण के तृतीय स्कन्ध के १२वें अध्याय में निम्न वर्णन आता है—

ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत्।
महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥२॥
दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत।
भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यां ततोऽसृजत् ॥३॥
सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः।
सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥४॥
तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः।
तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥५॥
सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः।
क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥६॥
धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः।
सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥७॥

अर्थात्—सबसे पहिले ब्रह्मा ने तम मोह महामोह तामिस्र और अन्धतामिस्र प्रवृति में सृष्टि की रचना की।

(तम के अर्थ हैं अविद्या। मोह अस्मिता को अर्थात् अहंकार अथवा अर्थ चेतना को कहते हैं। महामोह राग का नाम है। तामिस्र द्वेष का नाम है।

और अन्य तामिस्र आसक्ति को कहते हैं। ब्रह्मा ने इन प्रवृत्तियों के समय सृष्टि की रचना की)

तब इसमें अति पापमय सृष्टि उत्पन्न हो गयी। (इस सृष्टि में पूर्व जन्म की पापी आत्माएँ आकर विचरने लगीं।) इससे ब्रह्मा को प्रसन्नता नहीं हुई। तब उन्होंने अपने मन को भगवान् में लगाकर पवित्र किया और दूसरी सृष्टि की।

इस बार के प्रयत्न से सनक सनन्द सनातन और सनत्कुमार ये चार निवृत्ति परायण ऊर्ध्वरेता मुनि उत्पन्न हो गये। अपने इन चारों पुत्रों को ब्रह्मा जी ने कहा "हे पुत्रो तुम सृष्टि रचो।" परन्तु वे मोक्ष मार्ग का अनुसरण करने वाले थे इस कारण उन्होंने ऐसा करना नहीं चाहा।

इससे ब्रह्माजी को क्रोध आ गया। उन्होंने क्रोध को रोकने का यत्न किया। इसपर भी क्रोध से उनकी भौंहें सुकुड़ गयीं और उनमें से एक नील लोहित वर्ण वाला बालक उत्पन्न हो गया। उसका नाम रुद्र रखा गया।

तत्पश्चात् इसी प्रकरण में आगे चलकर लिखा है—

मन्युर्मनुर्महिनसो महाञ्छिव ऋतध्वजः।
उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥१२॥
धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाम्बिका।
इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥१३॥
गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः।
एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥१४॥
इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः।
सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ॥१५॥
रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद् ग्रसतां जगत्।
निशाम्यासंख्यशो यूथान् प्रजापतिरशङ्कत ॥१६॥
अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम।
मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्बणैः ॥१७॥

अर्थात्—मन्यु मनु, महिनस महान् शिव ऋतध्वज उग्ररेता भव काल वामदेव धृतव्रत इस बालक के नाम रख दिये तथा धी वृत्ति उशना उमा नियुत् सर्पि इला अम्बिका इरावती सुधा और दीक्षा ग्यारह इसकी पत्नियाँ बना दीं और कहा तुम इन नामों को और स्त्रियों को स्वीकार करो और इनके द्वारा बहुत-सी प्रजा उत्पन्न करो। तुम प्रजापति हो।

यह आज्ञा पाकर भगवान नील लोहित ने अपने समान बल आकार

और स्वभाव वाली बहुत-सी प्रजाएँ उत्पन्न कीं। भगवान रुद्र द्वारा उत्पन्न असंख्य रुद्रों की सृष्टि हो गयी। वे रुद्र अपने मुख बनाकर संसार का भक्षण करने लगे। इस पर ब्रह्माजी को बहुत शंका उत्पन्न हुई।

तब उन्होंने रुद्र को कहा भगवन ऐसी सृष्टि न करो। तुम सब प्राणियों को सुख पहुँचाने के लिए तप करो।

अथाभिध्यायतः सर्वे दश पुत्रा प्रजज्ञिरे।
भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥२१॥
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥२२॥

अर्थात्—पुनः भगवान का ध्यान कर उन्होंने सन्तान के हेतु प्रयत्न किया और दस पुत्र और उत्पन्न हुए। उनके नाम थे मरीचि अत्रि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलह, क्रतु, भृगु वसिष्ठ दक्ष और नारद।

इनमें से छः के नाम पहिले महाभाष्य के प्रमाण में भी आये हैं। ये महर्षि थे। ब्रह्माजी के मानस पुत्र थे। अर्थात् उनके ज्ञान को प्रसारित करने वाले थे।

इस प्रकरण का अर्थ है कि ब्रह्मा परमात्मा की रचनात्मक शक्ति को तो रखते थे परन्तु वे परमात्मा की भाँति सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान नहीं थे। यदि वे इन ईश्वरीय गुणों को रखते होते तो पापमयी सृष्टि की रचना न करते और यदि वे जान-बूझकर उस सृष्टि के निर्माता होते तो चिन्ता न करते। इसी प्रकार सनक सनन्दन इत्यादि मुनियों के आगे सृष्टि न बनाने पर क्रुद्ध न होते अथवा शिव के भयंकर रुद्रों को उत्पन्न करने पर उनको शंका न होती और वे शिव को वैसी सृष्टि उत्पन्न करने से रोकते नहीं।

अथच महापुराण लिखने वाला भी मानता था कि ब्रह्मा ईश्वर (हरि) से भिन्न है। तभी तो जब गलत सृष्टि बन जाती थी तो वह परमात्मा का ध्यान कर पुनः सृष्टि बनाने का यत्न करता था।

ब्रह्मा ने जितनी सृष्टि बनायी वह अमैथुनीय ही थी। परन्तु शिव और दक्ष की कन्याओं से मरीचि के पुत्र कश्यप ने तो मैथुनीय सृष्टि की रचना की।

दक्ष प्रजापति की तेरह कन्याओं का विवाह कश्यप जी से हुआ तो उनमें से अनेकों सन्तान उत्पन्न हुईं।

दक्ष की सबसे बड़ी लड़की अदिति से बारह आदित्य हुए। उनके नाम थे धाता मित्र अर्यमा इन्द्र वरुण अंश भग विवस्वान् पूषा सविता त्वष्टा और विष्णु।

दिति के दो पुत्र हुए हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। इसी प्रकार दनु के चौतीस पुत्र हुए। इत्यादि-इत्यादि।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि रामायण महाभारत पुराण और भागवत् महापुराण इत्यादि ग्रंथ साहित्यिक ग्रंथ हैं। इसके लिखने का एक विशेष उद्देश्य है। अतः इसमें इतिहास तो है ही परन्तु उस इतिहास पर साहित्यिक आवरण चढ़ा हुआ है। अतः इसमें का इतिहास अंश ही यहाँ लिखने से अभिप्राय है। शेष से हमारा कुछ सम्बन्ध नहीं।

ब्रह्मा में अमैथुनीय सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति थी। उस काल के कुछ अन्य ऋषि महर्षियों में भी यह शक्ति थी। मरीचि का उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं। उन्होंने भी कश्यप को जन्म दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय पृथ्वी पर ऐसी स्थिति थी कि जहाँ पंच महाभूत बनते थे वहाँ चेतन स्थान मन इन्द्रियाँ भी बन जाती थीं और फिर उसमें आत्माएँ पूर्व जन्म के अपने कर्म-फलानुसार अपने-अपने योग्य शरीर में आ जाती थीं।

यह सृष्टि क्रम वेदों में व उपनिषदादि ग्रंथों में भी इसी प्रकार लिखा मिलता है। वास्तव में इतिहास के तथ्यों को लेकर ही साहित्यिक ग्रंथों की रचना की गयी थी। आज वे इतिहास के तथ्य पुनः इन साहित्यिक ग्रंथों से निकालने की आवश्यकता अनुभव होने लगी है।

वर्तमान चतुर्युगी का आरम्भ

ऐसा माना जाता है कि मानव सृष्टि वैवस्वत मनु काल में ही हुई। इससे पहिले छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके थे। उनके आरम्भ में भी ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। महाभारत के प्रमाण (शान्तिपर्व अध्याय ३४७ श्लोक ३८-४१) के अनुसार छः ब्रह्मा पहिले हो चुके थे और उसमें यह लिखा है कि वैवस्वत मनु के आरम्भ में सातवें ब्रह्मा का जन्म हुआ है। उसमें यह भी लिखा है कि इस बार ब्रह्मा का जन्म कमल पर हुआ। कमल का अर्थ हम इससे पूर्व समझा चुके हैं।

इस सब का अर्थ यह है कि पहिले छः ब्रह्मा का जन्म पृथ्वी पर जल से निकल रही भूमि पर नहीं हुआ था। हुआ में जल के भीतर अन्तरिक्ष में भिन्न-भिन्न भागों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न भिन्न भिन्न ब्रह्मा हुए।

वैवस्वत मनु के प्रारम्भ में जो ब्रह्मा हुए हैं उन्होंने ही मानव-सृष्टि की। यह स्पष्ट सिद्ध है। अतः ये ब्रह्मा सशरीर और मनुष्य शरीर वाले थे। इस समय को उक्त गणनानुसार १२ २११ ६१ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। तब से अब तक कई युगान्तर प्रलय हो चुकी हैं। ये प्रलय नक्षत्रों के एक रेखा में आने पर होती हैं। और ऐसा प्रति ४१२ वर्ष के पश्चात् होता है।

अन्तिम प्रलय वर्तमान चतुर्युगी के प्रारम्भ में हुई थी। इसका उल्लेख मत्स्य पुराण में और महाभारत वन-पर्व अध्याय १८८ में तथा बाईबल की पुरानी पुस्तक में भी लिखा मिलता है।

इस प्रलय से पूर्व युग-गणना से अथवा योगबल से यह बात प्रसिद्ध हो गयी थी कि प्रलय का आगमन होने वाला है। उस समय महर्षि कश्यप की संतान में एक वैवस्वत नाम के राजा के एक महा तेजस्वी पुत्र मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए। मनु को अपने योगबल और तपस्या से यह विदित हो गया था कि इस बार प्रलय में सृष्टि की रक्षा की जा सकती है। उन्होंने एक बहुत बड़ी नौका बनायी और उसमें वे—

बीजान्यादाय सर्वाणि सागरं पुप्लुवे तदा।
नौकया सुभया वीर महोर्मिणमरिन्दम ॥

म भा वन —१८७-३७

सम्पूर्ण बीज लेकर एक सुन्दर नौका द्वारा उत्ताल तरंगों से भरे महासागर में तैरने लगे।

यह नौका इस प्लावन में बच गयी। तदुपरान्त मनु ने पुन सृष्टि की रचना की। यह वैवस्वत मनु अर्थात् वैवस्वत का पुत्र मनु है। इसी को बाईबल में नूह के नाम से पुकारा गया है।

इसमें शंका यह की जाती है कि पृथ्वी पर के सब जीव-जन्तुओं के बीज एक नौका में कैसे आ गये। ऐसा प्रतीत होता है कि मनु की भांति अन्य भी कई प्राणी बच गये होंगे। जल-जन्तुओं का तथा वायुमण्डल के जन्तुओं का बच जाना अधिक सम्भव प्रतीत होता है। कठिनाई तो वनस्पतियों की रही होगी। उनके बीज तो रखे ही गये होंगे और नौका भी बहुत बड़ी कदाचित् आजकल के जहाजों के सदृश तो रही होगी।

वायु पुराण अध्याय ८ में लिखा है—

ततः पृथिव्या औषध्यो ज्ञात्वा प्रभ्रष्टप्रजः।
कृत्वा वत्सं स्वयंभुवं तु दुदोह पृथिवीमिमाम् ॥ १४८ ॥

सुमेरुं गोवत्सं तेन बीजानि पृथिवी तले ।
वसिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ता पुनः ॥ १४६ ॥

यह जानकर कि पृथ्वी की सब वनस्पतियाँ नष्ट हो गयी हैं मनु ने सुमेरु को बछड़ा बनाकर पृथ्वी को दोहा। पृथ्वी रूपी गौ से दुग्ध की भाँति पृथ्वी के नीचे से बीजों को निकाला। उन बीजों से ग्राम्य वनस्पतियाँ व बनली वनस्पतियाँ पुनः उत्पन्न कीं।

इस सब का अर्थ है कि प्लावन के समाप्त हो जाने पर भूमि को खोद खोद कर उसमें से वनस्पतियों के बीज निकाले और सब प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न कीं।

इस प्रकार कई पशु भी किसी-न-किसी प्रकार बच गये होंगे। इस प्लावन के पश्चात् पुनः ब्रह्मा की आवश्यकता नहीं रही प्रतीत होती।

यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि मनु व उसके सप्तर्षियों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य लोग बच गये होंगे। इस प्लावन के उपरान्त अमैथुनीय सृष्टि होने के प्रमाण नहीं मिलते।

अतः सम्भावना ऐसी प्रतीत होती है कि कोई स्त्री भी अवश्य बची होगी।

भारतीय परम्परा के अनुसार प्लावन को हुए १८८१ ११ वर्ष हो चुके हैं। इतना लम्बा काल पढ़कर घबराने की आवश्यकता नहीं। आधुनिक विद्वानों की बातें सुनकर हमको घबराहट अवश्य होती है परन्तु उन्हीं विद्वानों की बात यह है कि आज से पचास वर्ष पूर्व तो वे ऋग्वेद को ईसा से पाँच हजार वर्ष से अधिक पुराना मानने को तैयार नहीं होते थे। परन्तु धीरे-धीरे वे अधिक व अधिक पुरातन मानने लगे हैं। अब ईसा से पूर्व तीस सहस्र वर्ष तो सब मानते हैं और उन्हीं के ढंग से अन्वेषण करने वाले अविनाशी बाबू ने तो वेदों को लाखों वर्ष पुराना सिद्ध कर दिया है। यह सब हम ऊपर लिख आये हैं। इससे हमारा कथन है कि भारतीय परम्परा सर्वथा सत्य है तथा वर्तमान युग के विद्वान धीरे-धीरे उस सच्चाई तक पहुँच रहे हैं।

बाईबल की पुरानी पुस्तक में इस प्लावन को हुए केवल ६७१४ वर्ष माने जाते हैं। यह आँकड़ा तो महाभ्रम के कारण है।

बाईबल की जो वंशावलियाँ तो ऐसे ढंग से लिखा है कि नूह से इब्राहीम तक ग्यारह पीढ़ियाँ हुई हैं। वास्तव में इतनी कम पीढ़ियाँ नहीं हुईं। भारतीय ग्रन्थों में यह प्रथा रही है कि वंशावलियों में सब पीढ़ियों का उल्लेख नहीं किया जाता। वंशावलियों में मुख्य-मुख्य व्यक्तियों के नामों का उल्लेख है

किया गया मानना होगा। उदाहरण के रूप में वाल्मीकीय रामायण में राम के विवाह के समय मुनि वसिष्ठ की ने सूर्य वंश की वंशावली सुनायी थी। उसमें वे कहते हैं—

अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्यय ।
तस्मान्मरीचि सजज्ञे मरीचे कश्यप सुत ।
विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वत स्मृत ॥ सग ७ —११ २०

अव्यक्त से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। वे स्वयम्भू हैं। नित्य शाश्वत और अविनाशी हैं। उनसे मरीचि की उत्पत्ति हुई। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। कश्यप के विवस्वान एवं विवस्वान से मनु का जन्म हुआ।

तनिक विचार करिये कि ब्रह्मा अव्यक्त प्रकृति से उत्पन्न हुए थे। यह तो माना। अव्यक्त से महान। महान से अहकार एवं अहकारों से पंचमहाभूत तथा मन व इन्द्रियां। यह बना शरीर और उसमें आत्मा (प्रतिश्रेष्ठ) के आ बैठने पर हुए ब्रह्मा। ब्रह्मा अस्त हो चुके हैं। प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में ब्रह्मा होते रहे हैं। अन्तिम ब्रह्मा वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में हुए। उसको हुए आज से १९ २११ ६१ वर्ष हो चुके हैं।

मनु हुआ प्लावन के समय। इसको हमने माना है १८११ ६१ वर्ष अर्थात् ब्रह्मा से मनु तक ११६१४ वर्ष से ऊपर व्यतीत हो चुके हैं।

अत या तो ज्योतिष शास्त्र से युग गणना को अमान्य करना पड़ेगा अथवा यह मानना पड़ेगा कि राम के विवाह के समय सूर्य वंश की जो वंशावली सुनाई गयी थी उसमें मुख्य-मुख्य व्यक्तियों के नाम ही सुनाये गये होंगे सब के नहीं।

युग गणना ठीक वैसी है जैसी ज्योतिष शास्त्र ने मानी है। यह महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में तथा अन्य सब पुराणों के प्रणेताओं ने मानी है। यह वेदों में ब्राह्मण-ग्रन्थों में और प्राय सब भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में मानी गयी है। अत उसको न मानने का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। यदि ज्योतिष-शास्त्र की गणना को माना जाये तो इतने लम्बे काल में केवल तीन पीढी मानने का अर्थ यह होगा कि एक-एक पीढी में लगभग चार-चार करोड़ वर्ष व्यतीत हुए मानने पड़ेंगे। कितने भी दीर्घ जीवी मनुष्य उस समय के मान लें तो भी एक मनुष्य की आयु तीन करोड़ वर्ष मानने में तो कोई प्रमाण नहीं।

अत हमारा यह अनुमान है कि राम के विवाह के समय की वंशावली में केवल मुख्य-मुख्य व्यक्तियों का ही उल्लेख किया गया है। ऐसा मानना ही होगा।

इस प्रसंग में एक बात और विचारणीय है। वंशावलियों में आयु जन्म से मरण तक गणना करके नहीं कही जाती। पूर्ण वंशावली का काल तो पीढ़ी में व्यक्ति की वह आयु ही कूती जाती है जो व्यक्ति के जन्म से लेकर उसके घर में सन्तान उत्पन्न होने तक व्यतीत हो। उदाहरण के रूप में आज के काल में यदि किसी की वंशावली में चार पीढ़ी व्यतीत हुई हों और एक पीढ़ी का काल पच्चीस वर्ष स्वीकार किया जावे तो वंशावली का काल सौ वर्ष होगा। इस प्रकार गणना कर यदि वैवस्वत मन्वन्तर के ब्रह्मा से लेकर वैवस्वत पुत्र मनु तक ११६१४ वर्ष मानकर केवल चार पीढ़ी में यह काल विभक्त किया जावे तो एक पीढ़ी ४ करोड़ वर्ष के लगभग होती है। अर्थात् मरीचि इत्यादि के सन्तान तब हुयी जब वे लगभग चार करोड़ वर्ष की आयु के हो गये। इसमें न तो युक्ति है न ही प्रमाण।

अतः यही ठीक प्रतीत होता है कि महाभारत रामायण और अन्य पुराणों में भी वंशावलियों को लिखते समय केवल कुछ एक मुख्य मुख्य नाम लिख कर शेष छोड़ दिये गये हैं। कदाचित् बाईबल लिखने वालों ने भी यही किया है और आज उनको पढ़ने वाले वास्तविक बात को न समझ कर समय का संकोच कर रहे हैं।

सम्भवतः इसी कठिनाई के कारण श्री पंडित भगवद्दत्त जी ने यह लिख दिया है कि ब्रह्मा जी का काल भारत युद्ध से न्यूनातिन्यून ११ वर्ष पहिले हुआ है। इससे अधिक पुराना भले ही हो।

इस काल की घोषणा करते समय वंशावलियों के अतिरिक्त पंडित जी के पास और क्या प्रमाण हैं हम जानते नहीं। हमारी युक्ति तो स्पष्ट है। (१) ब्रह्मा जी की उत्पत्तिप्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में होती रही है। प्रमाण महाभारत शा प अध्याय ३४७ का है। इसी प्रमाण से सातवें ब्रह्मा कमल से उत्पन्न हुए हैं। पहले छः ब्रह्मा अन्य अन्य प्रकार से और अन्य-अन्य प्रकार की रचना के लिए उत्पन्न हुए थे। इस कमल से उत्पन्न ब्रह्मा से लेकर वैवस्वत पुत्र मनु तक की वंशावली रामायण में वशिष्ठ जी ने राम के विवाह के समय पढ़ी थी। इसमें केवल सौ दो सौ वर्ष के काल का समय व्यतीत नहीं हुआ होगा।

हमारी गणना ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार है। उसमें इस मन्वन्तर को ग्यारह करोड़ वर्ष से ऊपर लिखा है।

मनु २८वीं चतुर्युगी के आरम्भ में ही हुआ प्रतीत होता है।

वर्तमान चतुर्युगी की सृष्टि का प्रारम्भ

वर्तमान चतुर्युगी में मानव और अन्य जीव-जन्तु प्लावन पूर्व से बचे हुए प्राणियों की सन्तान ही हैं।

मुख्यतः वर्तमान मानव सन्ततियों में आर्य मंगोल हब्शी सन्तान के मानव ही पाये जाते हैं। अन्य जातियां भी हैं परन्तु वे सब-की सब इनमें से जलवायु के प्रभाव से अथवा इनके संयोग से ही विकसित हुई प्रतीत होती हैं।

ये तीनों-की-तीनों जातियां मनु के वंश में से हैं अथवा प्लावन पूर्व से ही तीनों प्रकार की सृष्टि बन गई थी कहना कठिन है। पुराणों में वर्णित दस्यु दानव असुर दैत्य राक्षस यक्ष देवता तो मनु के वंशज से ही प्रतीत होते हैं। इनमें दस्यु असुर तो कर्मों के कारण विभिन्न हो गये। राक्षस नाम दानवों और यक्षों की सन्तान को दिया गया है। दानव और दैत्य तो दिति और दनु की सन्तान माने जाते हैं। यदि यह इस प्रकार है तो यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान प्लावन से मनु के अतिरिक्त अन्य लोग भी बच गये थे। दिति अदिति दनु इत्यादि कश्यप की पत्नियाँ थीं। कश्यप ब्रह्मा की तीसरी पीढ़ी में माना जाता है। यह प्लावन पूर्व की सृष्टि का बीज था।

दस्यु दानव इत्यादि सभ्यताओं के नाम भी हैं। इनका प्रारम्भ तो दानव इत्यादि स॰ तियों से ही हुआ होगा परन्तु पीछे सन्ततियाँ (Races) तो मिश्रित हो गयी प्रतीत होती हैं और सभ्यताएँ रह गयी हैं।

सैमिटिक आर्य मंगोल दस्यु अब सभ्यताओं के नाम रह गये हैं। वर्तमान यातायात के साधनों में विस्तार के साथ पुनः सन्ततियाँ मिश्रित हो रही हैं और सभ्यताओं का आधार सन्ततियाँ नहीं रह गया अपितु इनका मुख्य सम्बन्ध विचार और आचरण से है। इन विचारों और आचरणों में भी अंतर आता है। इनका वर्णन अपने स्थान पर करेंगे।

यहाँ तो यह ही कहा जा सकता है कि अधिक सम्भव यह प्रतीत होता है कि मनु की ही सन्तान भिन्न-भिन्न देशों की जलवायु और वहाँ के खान-पान के कारण भिन्न भिन्न आकार-विकार की बन गई हैं। कोई बहुत पहिले अपने पूर्वजों से पृथक् हुआ था और कोई कुछ समय पश्चात्।

एक बात निश्चित है कि जिस प्रकार का वर्णन आर्य ग्रंथों में और पुराणादि ग्रंथों में मिलता है वैसा विवरण हब्शी तथा मंगोल सन्ततियों के ग्रंथों में नहीं है। इससे इनके विषय में कहना कठिन हो रहा है।

हम यहाँ पर आर्य सन्ततियों का ही वर्णन लिखेंगे। कासियन वैदि

कोरियन मिस्री यूनानी रोमन तथा सैक्सन और नार्मन ये और अन्य भी आर्य सन्तान हैं। देवताओं के विषय में आर्य शास्त्रों से भी स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि वे मनु की सन्तान हैं। इसके कहीं प्रमाण उपलब्ध नहीं।

इसके तो प्रमाण मिलते हैं कि देवता ब्रह्मा की सन्तान हैं। इससे यदि यह मान लिया जाये कि तिब्बत के पठार में रहते हुए देवता भी प्लावन से बच गये थे तो हम अधिक सत्य के समीप आ जायेंगे।

ब्रह्मा से मनु तक की सृष्टि का एक धुँधला-सा वृत्तान्त प्राचीन शास्त्रों में मिलता है। यह स्वाभाविक भी है। प्लावनों ने बहुत कुछ विनष्ट कर दिया होगा। जो कुछ प्राचीन पुराणों में मिलता है वह प्लावनों में बचे हुओं के स्मरण रहे वृत्तान्तों से ही हो सकता है।

मनु वेदों का ज्ञाता था। मनु ने अपने साथ सात ऋषियों को भी बचाया था। इससे वेद तथा अन्य कई प्रकार के प्लावन पूर्व के ज्ञान के ग्रन्थ बचकर मनु सन्तान को प्राप्त हुए।

मनु सन्तान ही आर्य कहलाई। इस सन्तान को वेद उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे। इस कारण आर्य संसार में श्रेष्ठ कहलाये।

ब्रह्मा से मनु तक के एक लम्बे काल का इतिहास ठीक-ठीक नहीं मिलता। इस काल में कई युगान्तर प्रलय-काल आये होंगे। उनमें क्या कुछ बचा होगा और क्या कुछ विनाश को प्राप्त हुआ होगा कहना कठिन है। बहुत कुछ मनु के पीछे के लेखकों तथा ऋषि-महर्षियों ने स्मरण शक्ति से अथवा योगबल से जानकर लिखा प्रतीत होता है। इस कारण महर्षि वशिष्ठ को राम के पूर्वजों का ब्रह्मा से सम्बन्ध जोड़ने के लिए केवल तीन नाम ही स्मरण कराने पड़े।

हाँ मनु के पश्चात् के वृत्तान्त अधिक स्पष्ट अधिक विस्तृत और उपयोगी ढंग पर लिखे मिलते हैं। परन्तु इसमें भी स्मरण रखना चाहिए कि इस चतुर्युगी को आरम्भ हुए प्रायः १८६१ ६१ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इसका इतिहास भी उस ढंग से लिखना सम्भव नहीं था जो ढंग आजकल के इतिहास लिखने का है। इसका अर्थ यह भी नहीं कि इतिहास शब्द और इतिहास के लिखने का प्रयोजन उस काल के लेखकों को विदित था ही नहीं। आर्य लोगों ने समय-समय का इतिहास व्याख्या से भी लिखा होगा परन्तु साधारण रूप में तो वे व्यतीत हो रहे काल में केवल उन घटनाओं का वृत्तान्त लिख गये हैं जिन्होंने युग परिवर्तन का कार्य किया था।

आजकल के इतिहास लेखकों की प्रथा के अनुसार तो राजा-महाराजाओं के जीवन की वे घटनाएँ भी लिखी जाती हैं जो सर्वथा अनावश्यक और मानव-

को दुहराता है। लेखक को एक ही कहानी बार-बार लिखने में कुछ लाभ प्रतीत नहीं होता। जो बुद्धिमान हैं वे एक बार पढ़कर भी लाभ उठाते हैं और जो निर्बुद्धि अथवा अदूरदर्शी हैं वे सौ बार सौ घटनाओं को पढ़कर भी अशिक्षित रह जाते हैं।

मनु की सन्तान मानव कहलायी। मनु की नौका हिमालय मेरु पर्वत पर लगी थी और वहाँ पर से ही ज्यों-ज्यों जल उतरता गया उसकी सन्तान दूर-दूर देशों में जाकर बसती गयी।

मनु की वंशावली अथवा नामावली

यह भारतीय परम्परा रही है कि वंशावली अथवा वंश में नामावली ब्रह्मा से प्रारम्भ की जाये परन्तु ब्रह्मा से मनु तक की वंशावली बहुत ही संक्षिप्त लिखी गयी है। हम महाभारत और रामायण के अनुसार वंशावलियों के इस भाग को पृथक्-पृथक् लिखते हैं।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार—

ब्रह्मा → मरीचि → कश्यप → विवस्वान → मनु।

महाभारत के अनुसार वंशावली के इस भाग को इस प्रकार लिखा गया है—

प्रचेता → पुत्र प्रचेता → प्रचेतस → दक्ष → अदिति (कश्यप-पत्नि) → विवस्वान → मनु → इक्ष्वाकु—सूर्यवंश
इला—चन्द्रवंश

प्रचेता ब्रह्मा का दूसरा नाम है।

इन दोनों में अन्तर इस कारण है कि विवस्वान को माता की ओर से ब्रह्मा से छठी पीढ़ी में दिखाया गया है और पिता की ओर से चौथी पीढ़ी में। इससे हमारा मत वही है जो हम पिछले अध्याय में वर्णन कर चुके हैं। ये वंशावलियाँ वहीं वंश के मुख्य-मुख्य व्यक्तियों की नामावली हैं।

यह बात मनु के पश्चात् की वंशावली से सिद्ध हो जाती है। वाल्मीकीय रामायण में मनु के पश्चात् की वंशावली इस प्रकार है—

मनु → इक्ष्वाकु → कुक्षि → विकुक्षि → बाण → अनरण्य → पृथु → त्रिशंकु → धुंधुमार → युवनाश्व → मान्धाता → सुसन्धि → ध्रुवसन्धि → भरत → असित → सागर → असमंज → अंशुमान → दिलीप

→भगीरथ →कुकुत्स्थ →रघु →प्रवृद्ध →शंखण →सुदर्शन→ अग्निवर्ण→शीघ्रग→मरु→प्रसुश्रुत→अम्बरीष→नहुष→ययाति →नाभाग→अज→दशरथ→राम।

छत्तीस पीढ़ियाँ गिनाई गई हैं। राम त्रेता युग के अंत में हुए थे। इस प्रकार १ ७४ (तीस लाख वर्ष) छत्तीस पीढ़ी में बाँटा जाये तो प्रति पीढ़ी ८१४ औसत वर्ष पड़ती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह वह काल है जो एक व्यक्ति के जन्म से लेकर उसके घर सन्तान उत्पन्न होने तक व्यतीत होता है। क्या सूर्यवंशियों के घर में औसत से ८६ हजार वर्ष की आयु में सन्तान होती थी ?

अतः इस बात को मानने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही नहीं कि यह वंशावली नहीं प्रत्युत वंश की नामावली है।

जैसा भारतीय परम्परा में इतिहास लिखने की कला वर्तमान से भिन्न है वैसे ही वंशावली लिखने की भी भिन्न है।

अब हम महाभारत के अनुसार चन्द्रवंश की वंशावली मनु से लेकर युधिष्ठिर तक लिखते हैं। महाभारत में दो वंशावलियाँ दी गयी हैं। एक जनमेजय के अनुसार एवं दूसरी महर्षि कृष्ण द्वैपायन के अनुसार। महर्षि कृष्ण द्वैपायन की वंशावली मनु से प्रारम्भ होती है। वह इस प्रकार है

मनु→इला→पुरुरवा→आयु→नहुष→ययाति→पुरु→ जनमेजय→प्राचिन्वान→संयाति→अहंयाति→सार्वभौम→जयत्सेन →अवाचीन→अरिह→महाभौम→अयुतनायी→अक्रोधन→देवा-तिथि→अरिह→ऋक्ष→ मतिनार→तंसु→ ईलिन →दुष्यन्त→ भरत→भुमन्यु→सुहोत्र→हस्ती →विकुण्ठन→अजमीढ→संवरण →कुरु→विदुर→अनश्वा→परिक्षित→भीमसेन→प्रतिश्रवा→ प्रतीप→शान्तनु→देवव्रत→विचित्रवीर्य→ { धृतराष्ट्र-दुर्योधन। पांडु-युधिष्ठिर

कुल ४२ पीढ़ी हुयीं।

महाभारत में मनु के पश्चात् जनमेजय द्वारा कथित एक संक्षिप्त वंशावली भी दी है। यद्यपि इस वंशावली में बहुत से नाम छोड़ दिये गये हैं तो भी वंशावली में कोई नामों के पश्चात् आने वाले नाम को भी पुत्र ही लिखा है। जैसे यह बड़ी वंशावली में कई पीढ़ी पश्चात लिखा गया है।

उदाहरण के रूप में भरत का पुत्र भुमन्यु हुआ और भुमन्यु का सुहोत्र। ये दोनों पीढ़ियाँ तो दोनों वंशावलियों में समान लिखी हैं परन्तु आगे देखिये।

जनमेजय वाली वंशावली में—

तत्तो विविरथो नाम भुमन्योरभवत् सुत ।

सुहोत्रश्च सुहोता च सुहवि सुयजुस्तथा ॥ म मा आदि ६४ ४२

इसका अर्थ है कि भुमन्यु के विविरथ सुहोत्र सुहोता सुहवी सुयजु तथा ऋचीक पुत्र हुए। सुहोत्र ने वंश चलाया।

ऐक्ष्वाकी जनयामास सुहोत्रात् पृथिवीपते ।

अजमीढं सुमीढं च पुरुमीढं च भारत ॥ ३ ॥ म मा आदि ६४ ३

इसका अर्थ है कि इक्ष्वाकु वंश की कन्या से सुहोत्र का विवाह हुआ और उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए अजमीढ सुमीढ पुरुमीढ।

अजमीढ ने वंश चलाया।

इसी सुहोत्र के विषय में द्वैपायन जी की वंशावली मे लिखा है।

सुहोत्र इक्ष्वाकुकन्यामुपयमे सुवर्णां नाम

तस्यामस्य जज्ञे हस्ती य इदं हस्तिनापुरं स्थापयामास ।

एतदस्य हस्तिनपुरत्वम ॥ म मा आदि ६५ ३४

इसका अर्थ है कि सुहोत्र ने इक्ष्वाकु कुल की कन्या सुवर्णां से विवाह किया। उसके गर्भ से हस्ति नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसने हस्तिनापुर नाम का नगर बसाया। हस्ति के बसाने से ही हस्तिनापुर कहलाया।

हमारा इन दो उदाहरणों को देने का प्रयोजन यह है कि जहाँ संक्षिप्त वंशावली में सुहोत्र और इक्ष्वाकु कुल की कन्या के गर्भ से अजमीढ की उत्पत्ति लिखी है वहाँ दूसरी विस्तृत वंशावली म सुहोत्र और इक्ष्वाकु कुल उत्पन्न कन्या से हस्ति नाम के पुत्र की उत्पत्ति लिखी है। अजमीढ तो इस विस्तृत वंशावली में कई पीढी आगे जाकर आया है।

हस्ति ने त्रिगतराज की पुत्री यशोधरा से विकुण्ठन को उत्पन्न किया। विकुण्ठन ने दशार्ह कुल की कन्या सुदेवा से अजमीढ को उत्पन्न किया। इसका अर्थ है कि अजमीढ सुहोत्र का पर-पौत्र था। इस पर भी संक्षिप्त वंशावली मे पुत्र ही लिखा है।

अभिप्राय यह है कि वंशावली में पुत्र लिख देने का अर्थ यथोत्पन्न से ही लेना चाहिए। यह पौत्र-प्रपौत्र और इससे भी आगे की पीढी मे हो सकता है।

हमने पिछले अध्याय मे भारतीय परम्परा की यह बात बताई थी कि लाखों वर्षों के इतिहास में लेखकों ने केवल उन घटनाओं का उल्लेख किया है जो युग परिवर्तक रही हैं। अन्य अनावश्यक और साधारण मानवों और राजा-महाराजाओं के जीवन-वृत्तान्त लिखने का कुछ प्रयोजन नहीं समझा गया।

इस अध्याय में हमने वंशावलियों के विषय में भारतीय परम्परा का उल्लेख किया है। लाखों वर्ष में यदि राजा-महाराजाओं की वंशावली पूर्ण लिखी जाती तो व्यर्थ का बोझ ही बनता। इस कारण वंश में केवल मुख्य-मुख्य व्यक्तियों के नाम ही लिखे हैं।

यह हमने वर्णन किया है कि मनु का काल इस चतुर्युगी के आरम्भ में था। नक्षत्र गणना से चतुर्युगी में सतयुग का काल १७२८ वर्ष होता है। इस युग के आरम्भ में मनु ने सृष्टि की।

ब्रह्मा से मनु तक का तो बहुत कम वृत्तान्त मिलता है। इसमें कई युगान्तर प्रलयों का होना कारण है और अन्तिम प्रलय जिसमें मनु इत्यादि लोग बचे थे के कारण इतिहास का बहुत कम ज्ञान है। जो कुछ ज्ञान है वह केवल मौखिक वृत्तान्तों से ही है।

परन्तु मनु के पश्चात् का वृत्तान्त अधिक विस्तार से है। मनु के विषय में कृष्ण द्वैपायन जी लिखते हैं—

> मार्तण्डस्य मनुर्धीमानजायत सुतः प्रभुः
> यमश्चापि सुतो जज्ञे ख्यातस्तस्यानुजः प्रभुः ॥१२॥
>
> म भा आदि ७५ १२

विवस्वान के पुत्र परम बुद्धिमान मनु हुए जो बहुत ही प्रभावशाली थे। मनु के उपरान्त विवस्वान का यम नाम का एक पुत्र हुआ। मानवों से सम्बन्ध रखने वाला मनु वंश इससे ही विख्यात हुआ।

ब्राह्मण क्षत्रिय इत्यादि सब वर्णों के लोग मनु से ही उत्पन्न हुए।

> ब्राह्मणा मानवास्तेषां साङ्गं वेदमधारयन् ।
> वेनं धृष्णुं नरिष्यन्तं नाभागेक्ष्वाकुमेव च ॥ १५ ॥
> कारूषमथ शर्यातिं तथा चैवाष्टमीमिलाम् ।
> पृषध्रं नवमं प्राहुः क्षत्रधर्मपरायणम् ॥ १६ ॥
> नाभागारिष्टदशमान् मनोः पुत्रान् प्रचक्षते ।
> पञ्चाशत् तु मनोः पुत्रास्तत्रैवान्योऽभवन् क्षितौ ॥ १७ ॥
>
> मा भा आदि ७५ १५ १७

मनु में से ब्राह्मण समाज के पुत्रों ने छः अङ्गों सहित वेदों को धारण किया। वेन धृष्णु नरिष्यन्त नाभाग इक्ष्वाकु कारूष शर्याति इला पृषध्र नाभागारिष्ट दस मनु पुत्र हुए।

मनु के पचास पुत्र और भी हुए परन्तु आपस की फूट के कारण वे सब के सब नष्ट हो गये।

इला की और इक्ष्वाकु की सन्तानें हुईं। इला की सन्तान चन्द्रवंशी कहलायी व इक्ष्वाकु की सूर्यवंशी।

यह हमने ऊपर लिखा है कि जब कोई किसी का पुत्र लिखा जाता है तो पुत्र से अन्य वंश में उत्पन्न से लेना चाहिए। अतः इक्ष्वाकु और इला बहिन-भाई थे अथवा उनमें कई पीढ़ियों का अन्तर था कहा नहीं जा सकता।

यह कहा गया कि इला की सन्तान चन्द्रवंशी कहलायी। ऐसा क्यों? सम्भवतः इला की सन्तान चन्द्रदेव के वंश में से होगी। यह पुत्री थी। यह भी कथा है कि चन्द्रदेव के पुत्र बुध से इला की सन्तान हुई। पीछे इला पुरुष हो गयी और वह पुत्र सुद्युम्न कहलाया।

अधिक सम्भव यह प्रतीत होता है कि चन्द्र के पुत्र बुध ने सन्तान तो उत्पन्न कर दी परन्तु राज्य की लालसा न रखने से वह इला के पास राज्य छोड़ देवलोक को चला गया।

इससे भी हमारा अनुमान यही है कि प्रारम्भ से देवलोक (तिब्बत के पठार) पर भी बहुत से लोग बस गये थे और वे देवता कहलाये। चन्द्रमा भी देवलोक का प्राणी था और बुध उसका पुत्र था।

मनु की सन्तान दो दिशाओं में फैली। एक तो मेरु से पश्चिम की ओर व दूसरी पूर्व की ओर। इक्ष्वाकु इत्यादि पूर्व की ओर गये और इला की सन्तान पश्चिम की ओर बढ़ी।

एक बात और प्रतीत होती है कि जहाँ इक्ष्वाकु में प्रायः श्रेष्ठ मनुष्य उत्पन्न हुए वहाँ इला के वंश के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती।

इलाका पुत्र पुरूरवा था —सोमाभिभूतो बलमदान्धश्चाभूत् नरापतिः

म भा आ ७५-२१

लोभ से अभिभूत हो गया और बल के मद में आकर अपनी विवेक शक्ति को गंवा बैठा।

पुरूरवा बलपूर्वक देवलोक से उर्वशी तथा विधिवत् स्थापित अग्नियों को धरातल पर ले आया। उर्वशी से पुरूरवा के छः पुत्र हुए। ये अग्नियाँ क्या थीं? विचारणीय है।

पुरूरवा अपने बल-पराक्रम से उन्मत्त होकर ब्राह्मणों पर अत्याचार करने लगा। देवता और विद्वान लोग इसको समझाते रहे परन्तु यह न माना। अन्त में ऋषियों ने इसको नष्ट कर दिया और इसकी सन्तानों में आयु इसका उत्तराधिकारी हुआ।

आयु की सन्तानों में नहुष हुआ। इसने भी देवलोक पर अधिकार कर

इन्द्र को बन्दी बना लिया। इन्द्रासन पर बैठकर तो नहुष के अहंकार की सीमा न रही। उसने ऋषियों व महर्षियों से भी कर प्राप्त करना आरम्भ कर दिया। अन्त में शची (इन्द्र की पत्नि) से विवाह के लोभ में महर्षियों को पशु की भाँति वाहन बनाकर उनकी पीठ पर सवारी करने लगा।

ऋषियों ने इस पापी को भी शाप देकर नष्ट कर दिया। नहुष की सन्तान ययाति पिता की गद्दी पर बैठी। नहुष के मरने पर देवता पुनः अपने लोक में स्वतन्त्र हो गये और ययाति उत्तर पाँचाल में राज्य करने लगा।

इस प्रकार यह वंश चलता गया। चन्द्रवंश व सूर्य वंश दोनों में असंख्य राजा-महाराजा हुए तथा उनमें कई पराक्रमी एवं चक्रवर्ती भी हुए। जब-जब राजा लोग बल से मदान्ध हुए ब्राह्मणों तथा ऋषि महर्षियों ने उनको सन्मार्ग पर लाने का यत्न किया अन्यथा उनको दण्ड देकर राज्य च्युत कर दिया। आवश्यकता पड़ी तो उनका जीवनान्त भी कर दिया।

चन्द्र वंश अर्थात् इला की सन्तानों में नहुष और ययाति वे नहीं जिनका उल्लेख सूर्य-वंशावली में आया है। मनु से चलकर सूर्य-वंशियों के नहुष और ययाति तो बहुत पीछे आये हैं। राम व दशरथ से कुछ ही पीढ़ी पहिले। इसके विपरीत चन्द्रवंशीय नहुष और ययाति तो इला के कुछ ही पीढ़ी पीछे उत्पन्न हुए थे।

इसके अतिरिक्त एक पिता-पुत्र इला की सन्तान में थे और दूसरे इक्ष्वाकु की सन्तान में।

सूर्य-वंशीय नहुष की पीढ़ियाँ इस प्रकार लिखी हैं—

नहुष ⟶ ययाति ⟶ नाभागा ⟶ अज ⟶ दशरथ ⟶ राम। और चन्द्रवंशीय नहुष की पीढ़ियाँ ऐसे हैं—

नहुष ⟶ ययाति ⟶ ⟨ यदु ⟶ यदुकुल
जनमेजय ⟶ प्राचिन्वान ⟶ ययाति इत्यादि

चक्रवर्ती राज-महाराजे।

सत युग में मनुष्य की आयु तथा व्यवहार के विषय में मनु स्मृति में लिखा है—

> अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः।
> कृतत्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः॥
>
> मनु अ १ श्लोक ८३

अर्थात् सतयुग में सब रोग रहित होते थे। उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होते थे। आयु ४ वर्ष की होती थी। अगले युगों में आयु १ १ वर्ष से

कम होती गयी ।

जब पृथ्वी पर जनसंख्या कम हो और फल फूल कंद मूल पर्याप्त मात्रा में हो तो आयु का लम्बा होना तथा रोग रहित होना स्वाभाविक ही है। 'सर्व मनोरथ सिद्ध होते हैं' का अर्थ है कि आयु सम्बन्धी सभी कामनायें पूर्ण होती थी।

वेद में मनुष्य की आयु सौ वर्ष लिखी है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ॥

हे मनुष्यो कर्म करते हुए १   वर्ष तक जीने की इच्छा करो।

तो क्या यह समझा जाये कि वेद में यह मन्त्र केवल कलयुगी जीवों के लिए है ? इसमें हमारा मत है कि न्यूनातिन्यून मानव आयु एक सौ वर्ष मानी है और इतनी ही आयु तक इस प्रकार के कर्म करते हुए जीना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि आयु अधिक हो नहीं सकती थी।

जैसा कि हमने ऊपर बताया है कि सतयुग में भोजन सामग्री प्रचुर मात्रा में होने से तथा वायुमण्डल में अधिक शुद्धता के कारण प्रायः मानवों की आयु १   वर्ष से बहुत अधिक थी। मनु के उक्त श्लोक लिखने का आशय है कि सतयुग में ४   वर्ष की औसत आयु थी। यह अनहोनी नहीं है।

मनु से यज्ञों का आरम्भ

यह परम्परा है कि ब्रह्मा जी वेदों के साथ उत्पन्न हुए। वेदों का अर्थ है सब विद्याओं का मूल ज्ञान। इस परम्परा का उल्लेख भारत के सब शास्त्रों में मिलता है। राजनीति शास्त्र जिसमें धर्म अर्थ और काम की शिक्षा है ब्रह्मा के त्रिवर्ग-शास्त्र में वर्णित है। ब्रह्मा ने मोक्ष धर्म की भी शिक्षा अपने मानस पुत्रों को दी। आयुर्वेद ज्योतिष-शास्त्र काव्य और नाट्य कला इतिहासादि की शिक्षा। अभिप्राय यह है कि प्रत्येक विद्या के ब्रह्मा जी ज्ञाता थे और इन विद्याओं की उन्होंने मानवों को शिक्षा दी।

परन्तु ये सब विद्याएँ प्रलय के पश्चात् मनु और ऋषियों द्वारा ही मानवों को मिलीं।

ब्रह्मा के अमित ज्ञान का स्वामी होने की भारतीय परम्परा का समर्थन इरानी प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलता है। ब्रह्मा का नाम उनकी भाषा में आदम (प्रथम मानव) है। आदम के विषय में स्टानले अपनी पुस्तक ओरिएन्टल

डिक्शनरी में इस प्रकार लिखा है —

The Hebrew doctors ascribe to Adam various compositions on the subject of Ethics Theology and Legislation as well as a book on the creation of the world which he bequeathed to his posterity and which to-gether with the book of Seth and Edris as the Arabians denominate Enoch were deposited in a chest which many centuries after the deluge was found by the Patriarch Abraham in the country of the Sabians This information is given to us by Stanley out of the old Chaldean and Arabian authors in the following passage :

Kissaens, a Mahomedan writer asserts that the Sabians possessed not only the book of Seth and Edris but also others written by Adam himself for Abraham after his expulsion from Chald by the tyrant Nimrod going into the country of the Sabians opened the chest of Adam and behold in it were the books of Adam as also those of Seth and Edris and the names of all the prophets that were to succeed Abraham.

अर्थात् — इबरानी विद्वानों में यह माना है कि आदम (ब्रह्मा) ने धर्म (कर्म) विद्याओं (मतों) और राजनीति पर पुस्तकें लिखी थी। ब्रह्मा ने संसार के उत्पत्ति पर भी पुस्तक लिखी थी जो उन्होंने अपनी सन्तानों के लिये दे दी थी। यह भी पुस्तक व उनके साथ Seth (वशिष्ठ) की और Edris (अत्रि) की पुस्तक भी एक पेटिका में बन्द कर रखी हुई थी जो कई सौ वर्ष प्लावन के पश्चात् पितामह इब्राहीम ने निकाली थी जब वह सीबियन के देश में गया था।

यह सूचना स्टैनले ने चाल्डियन और अरबी लेखकों को पढ़कर निम्न शब्दों में दी है

किस्सा एक मुसलमान लेखक कहता है कि सेबियन के पास न केवल सेथ (वशिष्ठ) और एड्रिस (अत्रि) की पुस्तक थी प्रत्युत दूसरी पुस्तकें जिनको आदम ब्रह्मा ने स्वयं लिखा था थी। इब्राहिम जब वह चाल्डिया से निमरूद द्वारा बलपूर्वक निकाला गया था और जब वह सेबियन के देश में पहुँचा तो उसने वह पेटी खोली जो आदम की थी। और उसमें से आदम की तथा सेठ व एड्रीस की पुस्तक निकल आयीं। उन पुस्तकों में सब (पैगम्बरों) के नाम भी थे जो इब्राहिम के उपरान्त आने वाले थे।

इससे लेख से इस रहस्य का पता चलता है कि ब्रह्मादि द्वारा लिखित

शास्त्र प्लावन आने से पूर्व एक पेटिका में रखकर भूमि में गाड़ दिये थे। जो प्लावन के पश्चात् खोदकर निकाले गये। एक अन्य बात का पता चलता है कि लेखन-कला व सामग्री-प्लावन पूर्व के लोगों को भी ज्ञात थी साथ ही इस बात का समर्थन भी मिलता है कि वेदादि शास्त्र सृष्टि के आदि काल से ही चले आते हैं।

इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि वर्तमान चतुर्युगी से पूर्व भी पुराणादिक ग्रंथ थे। उक्त उद्धरण में ब्रह्मा के विषय में Book on the creation of the world. (सृष्टि प्रारम्भ का इतिहास) लिखने की बात भी लिखी है। यही तो पुराणों का प्रारम्भ है। इससे यह सिद्ध होता है कि बहुत-सी पुस्तकें प्लावन में विनष्ट हो गई होंगी।

भारतीय परम्परा में तो यह है कि मनु ने प्लावनपूर्व का ज्ञान ऋषियों द्वारा प्लावन पश्चात् की सृष्टि में प्रचलित किया।

प्लावन पूर्व के काल को यदि आदि युग के नाम से स्मरण किया जावे तो अधिक उपयुक्त होगा। प्लावन पश्चात् में तो इतिहास क्रम-वार एवं ज्ञान स्वरूपानुसार मिलता है।

प्लावन पश्चात् में जो पहिली घटना लिखी मिलती है वह मनु के पुत्रों के विषय में है। मनु के कई पुत्र परस्पर वैमनस्य के कारण नाश को प्राप्त हुए। इससे यह स्पष्ट होता है कि जैसे आदि युग में ब्रह्मा की कई सन्तानें पाप मय प्रकृति वाली हो गयीं थीं वैसे ही मनु की सन्तानें भी ऐसी ही हो गयी थीं। अर्थात दिन व रात की भाँति दैवी और आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य आदिकाल से होते रहे हैं। ये अनन्त काल तक होते रहेंगे। इनकी उत्पत्ति पूर्व जन्म के कर्म-फलों के अधीन होती रही है। आदि-युग के प्रारम्भ में तो पूर्व कल्प की आत्माएँ ही अपने अच्छे-बुरे कर्मों को लेकर इस कल्प में आयी हैं।

इससे यह कहना ठीक प्रतीत होता है कि सतयुग में भी सब लोग श्रेष्ठ आचार-विचार के नहीं थे। मनु की अपनी सन्तान ही दुष्ट थी।

मनु के कई धर्मात्मा पुत्र भी हुए। उनमें इक्ष्वाकु एक था। इला भी सद्गुण युक्त कन्या प्रतीत होती है। दोनों ने अपनी योग्यता के आधार पर राज्य वंश चलाये। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि इक्ष्वाकु इत्यादि सूर्यवंश और चन्द्रवंश चलाने वाले मनु की पहिली पीढ़ी में ही हुए होंगे मानना आवश्यक नहीं। यह हम लिख आये हैं कि पुत्र-पुत्री के अर्थ सन्तान के ही हैं और सन्तान पहिले के अतिरिक्त पीढ़ी में भी हो सकती है। दूसरी तीसरी और इससे भी अगली पीढ़ियों में उत्पन्न भी सन्तान में आते हैं। इतना तो

स्पष्ट है कि मनु और इक्ष्वाकु तथा मनु और इला के मध्य में कोई उल्लेखनीय सन्तान नहीं हुई। इसके पश्चात् हम दोनों वंशों के मुख्य-मुख्य सन्तानों के सम्बन्ध में पृथक लिखेंगे।

यह हम लिख चुके हैं कि इला की चन्द्र के पुत्र बुद्ध से पुरुरवा सन्तान हुई। इला स्वयं शासन करती थी। तत्पश्चात् उसने अपने पुत्र पुरुरवा को राज्य गद्दी पर बिठाया। पुरुरवा अभिमानी एवं क्रूर प्रकृति का राजा था। इसने अपने राज्य से बाहर भी हाथ पसारे थे। गन्धर्व लोक की अप्सरा उर्वशी को पकड़कर लाया था और उसको अपनी पत्नी बनाकर उसने सन्तान उत्पन्न की थी। पुरुरवा वहाँ की त्रिविध अग्नियों को भी ले आया था।

अग्नि का शब्द प्राचीन वैदिक वाङ्मय में दैवी शक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। इसलिए पुरुरवा कौन-सी गन्धर्वों की शक्तियों को उठा लाया था जिसका वर्णन लाखों वर्ष पश्चात् भी महर्षि व्यास करना आवश्यक मानते थे विचारणीय है। ये शक्तियाँ अवश्य ही अद्भुत रही होंगी जो मानवों के पास नहीं होंगी अथवा जिनका ज्ञान भी मानवों को नहीं होगा।

पुरुरवा के पश्चात् आयु नाम की एक सन्तान विख्यात हुई है। आयु की ख्याति कदाचित् इतनी ही थी कि उसने नहुष को जन्म दिया था। आयु ने स्वर्भानुकुमारी नाम की स्त्री से विवाह किया और उसके गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम थे नहुष वृद्धशर्मा रजि गय और अनेना। राज्यभार नहुष ने सँभाला था। नहुष का जीवन-वृत्तान्त हम विस्तार से आगे चलकर लिखेंगे।

नहुष का पुत्र ययाति हुआ जिसको उल्लेखनीय माना गया है। ययाति का वंश दो भागों म बँट गया। एक यदुकुल कहलाया जिसमें पीछे चल कर कृष्णादिक महापुरुष उत्पन्न हुए एवं दूसरा वंश पुरु ने चलाया। यह पुरु-वंश था जिसमें आगे चलकर कौरव इत्यादि राजा-महाराजा हुए। पुरुवंश में अन्य अनेकों यशस्वी शूरवीर चक्रवर्ती राजा-महाराजा हुए। दोनों वंश सतयुग से चलते हुए द्वापर के अंत तक चलते रहे। महाभारत युद्ध के कुछ ही पश्चात् यदुवंशी परस्पर लड़ते-लड़ते सब विनाश को प्राप्त हुए। पुरु का वंश भी महा भारत युद्ध में प्रायः समाप्त होने को रहा था। इस कुल का एक बालक जो गर्भ में था बच सका। वह पीछे जाकर राजा परीक्षित के नाम से विख्यात हुआ। राजा परीक्षित की सन्तान मुसलमान आक्रमण आरम्भ होने के समय भी विद्यमान थी। पंजाब का राजा जयपाल चन्द्रवंशी ही माना जाता था। यों तो अंग्रेजी राज्य के समय भरतपुर तथा कुछ अन्य राजस्थान के राजा-महाराजा भी यदुकुल के अवशेष कहे जाते थे।

यह कुल लम्बा बहुत चला। समय-समय पर इस कुल में धर्मात्मा शूरवीर, बुद्धिमान व्यक्तियों का उत्पन्न होते रहना ही कारण था।

इसी प्रकार इक्ष्वाकु वंश की परम्परा भी चली। उस वंश में भी अनेकों यशस्वी और धर्मात्मा राजा-महाराजा उत्पन्न हुए। इनमें त्रिशंकु मान्धाता प्रसेनजित सगर दलीप भगीरथ रघु, दशरथ एवं राम हुए।

सूर्यवंश की परम्परा भी चलती रही। इस वंश का मुसलमानी काल तक अयोध्या में राज्य चलता रहा प्रतीत होता है। यों तो अनेकों राजा-महाराजा जो राजस्थान में राज्य करते थे अथवा अन्य राज्यों में थे अपने को सूर्य वंशी ही बताते हैं।

सूर्यवंश एवं चन्द्रवंशियों की अनेक शाखाएं, उपशाखाएं पूर्ण भारतवर्ष में विद्यमान थीं। इनका अब अन्त हो गया है। भारत में अब राजा-महाराजा समाप्त होकर प्रजातन्त्र शासन चल पड़ा है। यह सड़क कूटने वाले इंजन की भांति सबको समान रूप में चकनाचूर कर एक तह में बिठाने वाला सिद्ध हो रहा है।

पंचम परिच्छेद

वेद

भारतीय परम्परा है कि वेद सब सत्य विद्याओं का मूल ग्रन्थ है। अर्थात् ये ग्रन्थ सब विद्याओं इहलौकिक एवं पारलौकिक को बीज रूप में रखते हैं। अतः इन ग्रन्थों के विषय में संक्षेप में लिख देना ही ठीक रहेगा।

यह हम लिख चुके हैं कि वेद ब्रह्मा के साथ ही बने। भारतीय परम्परा यह है कि मनुष्य में ज्ञान स्वयमेव उत्पन्न नहीं होता। आज उन्नत कहे जाने वाले युग में भी यदि किसी मनुष्य को उत्पन्न होते ही पूर्ण मानव समाज से पृथक रख दिया जाए तो वह अपने आप कुछ भी नहीं सीख सकता।

विकासवादी तो आज के युग को उस युग से जब ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है बहुत उन्नत मानते हैं। मनुष्य ने उनके विचारानुसार अपनी मानवीय शक्तियों में बहुत उन्नति की है। जब इस काल में मनुष्य अपने माता-पिता भाई-बन्धुओं मित्रों एवं गुरुओं से सीखे बिना पशु-का-पशु रहता है, तो ब्रह्मा के युग में यह सम्भव ही नहीं हो सकता था कि बिना कहीं से ज्ञान प्राप्त किए उस युग के लोग सीख सके होंगे।

इसी कारण यदि हम उन प्रमाणों को सत्य मानें जिनसे ब्रह्मा के काल में अनेकानेक ज्ञान-विज्ञान की बातों का पता चलता है तो यह मानना पड़ेगा कि आदि मनुष्य को किसी ने ज्ञान दिया होगा। चाहे तो यह मानें कि परमात्मा ने दिया था चाहे आप ने इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि ज्ञान किसी के देने से मिला। भारतीय परम्परा यह है कि आदि युग के प्रारम्भ में मानव-कल्याण के लिए वेद पुरुष को मिले।

ब्रह्मा के विषय में यह कहा जाता है कि वह वेदों का ज्ञाता था। उसने वेद-ज्ञान मरीचि इत्यादि अपने मानस पुत्रों को दिया। साथ ही समझने के लिए एक विस्तृत ग्रन्थ जिसका नाम त्रिवर्ग शास्त्र रखा गया लिखा।

वेद परमात्मा से ब्रह्मा को मिले। इस विषय में प्रमाण मिलते हैं। यह भी प्रमाण मिलते हैं कि इनका प्रसार अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा के

इस प्रकार पूर्ण भारतीय साहित्य में वेदों को सत्य और लोक-कल्याण के लिए माना है।

इसके साथ यह भी मान्यता है कि सृष्टि की उत्पत्ति के समय ब्रह्मा के द्वारा ये वेद इस भूतल पर आए और अग्नि वायु आदित्य तथा अङ्गिरा के द्वारा प्रसारित हुए।

त्रिवर्ग शास्त्र

समय व्यतीत होने पर—

ते मोहवशमापन्ना मनुजा मनुजर्षभ।
प्रतिपत्तिविमोहाच्च धर्मस्तेषामनीनशत् ॥१६॥
नष्टायां प्रतिपत्तौ च मोहवश्या नरास्तदा।
लोभस्य वशमापन्ना सर्वे भरतसत्तम ॥१७॥
अप्राप्तस्याभिमर्शं तु कुर्वन्तो मनुजास्ततः।
कामो नामापरस्तत्र प्रत्यपद्यत वै प्रभो ॥१८॥
अगम्यागमनं चैव वाच्यावाच्यं तथैव च।
भक्ष्याभक्ष्यं च राजेन्द्र दोषादोषं च नात्यजन् ॥२०॥
विप्लुते नरलोकेऽस्मिन् ब्रह्म चैव ननाश ह।
नाशाच्च ब्रह्मणो राजन् धर्मो नाशमथागमत् ॥२१॥

महाभा शान्ति ५९—१६, १७ १८, २ २१

"सब लोग मोहवश हो गए। वे कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान से शून्य हो गये तथा धर्म का लोप हो गया। कर्तव्याकर्तव्य का ध्यान छूट जाने पर मनुष्य मोहवश (के अधीन) हो गए।

लोभ के अधीन होने से अन्य दोष लोभ काम एवं अहंकार उत्पन्न होने लगे।

इससे वे अगम्यागमन वाच्यावाच्य भक्ष्याभक्ष्य तथा दोष-अदोष का विचार छोड़ बैठे।

इस पर मनुष्य लोक में धर्म का विलोप हो जाने पर वेदों के स्वाध्याय का भी लोप हो गया। वैदिक ज्ञान के नाश होने से यज्ञादि कार्यों का नाश हो गया।

ऐसे समय में ब्रह्मा ने—

श्रेयोऽर्थं वै विचिन्त्याथ मिश्येतु यो भी सुदुर्लभः ॥२८॥

उन (लोगों) के क्षेम के लिए विचार किया और विचार कर—

ततोऽध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम् ।
यत्र धर्मस्तथैवार्थः कामश्चैवाभिवर्णितः ॥२९॥
त्रिवर्ग इति विख्यातो गण एष स्वयम्भुवा ।
चतुर्थो मोक्ष इत्येव पृथगर्थः पृथग्गुणः ॥३०॥

म. भा. शा. अध्याय ५९—२९, ३०

अपनी बुद्धि से एक लाख अध्याय का एक ऐसा नीति-शास्त्र रचा जिसमें धर्म अर्थ और काम का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इसको त्रिवर्ग के नाम से विख्यात किया।

चौथा वर्ग मोक्ष है। उसके प्रयोजन और गुण इन तीनों से भिन्न हैं।

ब्रह्मा जी का यह नीति-शास्त्र आज प्राप्त नहीं। कदाचित् इतना बड़ा ग्रन्थ महाभारत-जैसे प्रलय में सुरक्षित रखना सम्भव नहीं था। परन्तु परम्परा है इस ग्रन्थ में लिखा विषय मनु को विदित था और मनु ने अपने शास्त्र (मनुस्मृति) में उसका उल्लेख भी किया व उसका संक्षेप भी दिया है।

मनु कहते हैं—

इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेव स्वयमादितः ॥ मनु १ ५८

इसी नीति-शास्त्र को ब्रह्मा ने रचकर मुझको पढ़ाया। महाभारत में भी ब्रह्मा के नीति-शास्त्र से अन्य नीति-शास्त्रों के निर्माण का उल्लेख है। यहाँ पर पढ़ाने का अभिप्राय उससे प्राप्त करना समझना चाहिए।

लिखा है कि ब्रह्मा ने सबसे पहिले भगवान शंकर को यह नीति-शास्त्र पढ़ाया। जब शिव ने देखा कि प्रजागणों की आयु तथा शारीरिक शक्तियों का ह्रास हो रहा है तो उन्होंने इस बृहद् नीति-शास्त्र को संक्षेप कर दिया। तब इस शास्त्र का नाम वैशालाक्ष हो गया। शंकरजी से इस संक्षिप्त शास्त्र को इन्द्र ने पढ़ा। उस समय इसमें दस हजार अध्याय थे। इन्द्र ने भी इसका संक्षेप किया और यह पाँच हजार अध्यायों का ग्रन्थ हो गया। उस समय यह बाहुदन्तक नीति शास्त्र के नाम से विख्यात हुआ।

पश्चात् सामर्थ्य बृहस्पति ने [illegible] किया और इसको बार्हस्पत्य नाम से तीन हजार अध्याय का बना दिया। इसके पश्चात् शुक्राचार्य ने इसको और भी संक्षेप कर दिया तथा इसके केवल [illegible] हजार अध्याय का रहने दिया।

[illegible] ... था। सब तो इस सबके उपरान्त आया है ... [illegible] ... नीति

शास्त्र रचा। मनु ने यह तो बताया है कि यह वही है जो ब्रह्मा से उसने सीखा था। इसका अर्थ हम यह समझते हैं कि ब्रह्मा के बनाये नीति-शास्त्र के अनुसार है। मनुस्मृति में १२ अध्याय रह गए हैं और श्लोक २६ के लगभग हैं। निस्संदेह यह उससे बहुत छोटा है जो ब्रह्मा शंकर इन्द्र बृहस्पति तथा शुक्राचार्य ने लिखा था।

मनु के पश्चात् याज्ञवल्क्यादि ऋषियों ने भी स्मृतियाँ लिखी हैं।

विज्ञानोन्नति

वर्तमान युग में विज्ञान के अर्थ प्रकृति के ज्ञान को कहते हैं। भारतीय शास्त्रों में विज्ञान के अर्थ विशेष ज्ञान से है। भारतीय परम्परा में प्रकृति के अतिरिक्त दो अन्य पदार्थ भी माने गए हैं। जिनका विशेष ज्ञान प्राप्त करना विज्ञान का कार्य है। प्रकृति के अतिरिक्त परमात्मा और आत्मा भी हैं। इन तीनों के सम्यक ज्ञान का नाम विज्ञान है। इन तीनों को ब्रह्म के नाम से स्मरण किया गया है।

लिखा है—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशा-

वजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।

अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता

त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥ श्वे अ १ ९

अर्थात्—एक ज्ञानवान और दूसरा अज्ञ (ज्ञानविहीन) तथा सर्वसमर्थ और असमर्थ है। ये दोनों अजन्मा (अनादि) हैं। एक अन्य अजा (अजन्मा) अनादि भी है। वह अज्ञ के लिए भोग की वस्तु है। पहिला विश्वरूप अनन्तात्मा तो अकर्ता है। जब इन तीनों को ब्रह्म मान लेता है तो प्राणी ज्ञानवान माना जाता है।

और भी लिखा है—

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं

नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा

सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥ श्वे १ १२

अर्थात्—अपने आत्मा में उपस्थित ब्रह्म को जानना चाहिए। इससे

श्रेयोऽहं वै चिन्तयिष्याम्यपैतु वो भीः सुरर्षभाः ॥२८॥
उन (लोगों) के भय के लिए विचार किया और विचार कर—
ततोऽध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम् ।
यत्र धर्मस्तथैवार्थः कामश्चैवाभिवर्णितः ॥२९॥
त्रिवर्ग इति विख्यातो गण एष स्वयम्भुवा ।
चतुर्थो मोक्ष इत्येव पृथगर्थः पृथग्गुणः ॥३ ॥

म० भा० शा० अध्याय ५९—२९ ।

अपनी बुद्धि से एक लाख अध्याय का एक ऐसा नीति-शास्त्र रचा जिसमें धर्म अर्थ और काम का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इसको त्रिवर्ग के नाम से विख्यात किया।

चौथा वर्ग मोक्ष है। उसके प्रयोजन और गुण इन तीनों से भिन्न हैं।

ब्रह्मा जी का यह नीति-शास्त्र आज प्राप्त नहीं। कदाचित् इतना बड़ा ग्रन्थ महाभारत-जैसे प्रलय में सुरक्षित रखना सम्भव नहीं था। परन्तु परम्परा से इस ग्रन्थ में लिखा विषय मनु को विदित था और मनु ने अपने शास्त्र (मनु स्मृति) में उसका उल्लेख भी किया व उसका संक्षेप भी किया है।

मनु कहते हैं—

इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेव स्वयमादितः ॥ मनु १ ५८

इसी नीति-शास्त्र को ब्रह्मा ने रचकर मुझको पढ़ाया। महाभारत में भी ब्रह्मा के नीति-शास्त्र से अन्य नीति-शास्त्रों के निर्माण का उल्लेख है। यहाँ पर पढ़ाने का अभिप्राय उससे प्राप्त करना समझना चाहिए।

लिखा है कि ब्रह्मा ने सबसे पहिले भगवान शंकर को यह नीति-शास्त्र पढ़ाया। जब शिव ने देखा कि प्राणियों की आयु तथा शारीरिक शक्तियों का ह्रास हो रहा है तो उन्होंने इस बृहद् नीति-शास्त्र को संक्षेप कर दिया। तब इस शास्त्र का नाम वैशालाक्ष हो गया। शंकरजी से इस संक्षिप्त शास्त्र को इन्द्र ने पढ़ा। उस समय इसमें दस हजार अध्याय थे। इन्द्र ने भी इसका संक्षेप किया और यह पाँच हजार अध्यायों का ग्रंथ हो गया। उस समय यह बाहुदन्तक नीति-शास्त्र के नाम से विख्यात हुआ।

पश्चात् सामर्थ्य बृहस्पति ने इसका संक्षेप किया और इसको बार्हस्पत्य नाम से तीन हजार अध्याय का बना दिया। इसके पश्चात् शुक्राचार्य ने इसको और भी संक्षेप कर दिया तथा इसको केवल एक हजार अध्याय का रहने दिया।

इतना संक्षिप्त तो महाभारत पूर्व काल में ही हो गया था। मनु तो इन सबके उपरान्त आया है। महाभारत पश्चात् मनु ने अपनी स्मृति से यह नीति-

शास्त्र रचा। मनु ने यह तो बताया है कि यह वही है जो ब्रह्मा से उसने सीखा था। इसका अर्थ हम यह समझते हैं कि ब्रह्मा के बनाये नीति-शास्त्र के अनुसार है। मनुस्मृति में १२ अध्याय रह गए हैं और श्लोक २६ के लगभग है। निस्संदेह यह उससे बहुत छोटा है जो ब्रह्मा शंकर इन्द्र बृहस्पति तथा शुक्राचार्य ने लिखा था।

मनु के पश्चात् याज्ञवल्क्यादि ऋषियों ने भी स्मृतियाँ लिखी हैं।

विज्ञानोन्नति

वर्तमान युग में विज्ञान के अर्थ प्रकृति के ज्ञान को कहते हैं। भारतीय शास्त्रों में विज्ञान के अर्थ विशेष-ज्ञान से है। भारतीय परम्परा मे प्रकृति के अतिरिक्त दो अन्य पदार्थ भी माने गए हैं। जिनका विशेष ज्ञान प्राप्त करना विज्ञान का कार्य है। प्रकृति के अतिरिक्त परमात्मा और आत्मा भी हैं। इन तीनों के सम्यक ज्ञान का नाम विज्ञान है। इन तीनो को ब्रह्म के नाम से स्मरण किया गया है।

लिखा है—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशा-
वजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता
त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥ श्वे अ १-६

अर्थात् —एक ज्ञानवान और दूसरा अज्ञ (ज्ञानविहीन) तथा सबसमर्थ और असमर्थ है। ये दोनों अजन्मा (अनादि) हैं। एक अन्य अजा (अजन्मा) अनादि भी है। वह अज्ञ के लिए भोग की वस्तु है। पहिला विश्वरूप अनन्तात्मा तो अकर्ता है। जब इन तीनो को ब्रह्म मान लेता है तो भारी ज्ञानवान माना जाता है।

और भी लिखा है—

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं
नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥ श्वे १ १२

अर्थात्—अपने आत्मा में उपस्थित ब्रह्म को जानना चाहिए। इससे

अक्षर और कोई शाश्वत पदार्थ नहीं। भोक्ता (जीव) भोग्य (जगत्) और प्रेरक (ईश्वर) यह तीन प्रकार का ब्रह्म है ऐसा सब कहते हैं।

इसका अर्थ यह है कि भारतीय परम्परा में विज्ञान का अर्थ वर्तमान विज्ञान के अर्थ से विशाल है। देखने की बात यह है कि प्रकृति के ज्ञान में भी क्या वर्तमान विज्ञान ने भारतीय विज्ञान से अधिक उन्नति की है? जहाँ तक आत्मा एवं परमात्मा का सम्बन्ध है आज का विज्ञान शून्य के समान है।

प्रकृति के विषय में विज्ञान के दो अंग हैं। एक है प्रकृति की वास्तविकता को जानना। दूसरा अंग है उस वास्तविकता को जानकर प्रकृति का प्रयोग करना। एक को Pure Science कहते हैं और दूसरे को Technolgoy अथवा Applied Science कहते हैं। विज्ञान के प्रयोग को देखकर आज के पढ़े लिखे लोग कहते हैं कि वर्तमान युग में प्राचीन भारत से विज्ञान में अधिक उन्नति हुई है।

वास्तविकता इसके विपरीत है। जो विज्ञान को जानते हैं उनको विदित है कि पिछले दो सौ वर्ष में विज्ञान की उन्नति किस स्थान से चलकर कहाँ तक पहुँची है।

डाल्टन से पहले प्रकृति पाँच तत्त्वों की बनी मानी जाती थी। जल पृथ्वी वायु, अग्नि और आकाश। स्मरण रहे कि ये पाँच महाभूत नहीं थे। प्रत्युत ये स्थूल जलादि थे और इनको तत्त्व माना जाता था।

डाल्टन ने अपनी ‘एटॉमिक थ्यौरी" विचार की। उसमें उसने बताया कि ये पाँच वस्तु जल पृथ्वी इत्यादि तत्त्व नहीं हैं। तत्त्व तो और अधिक हैं। उस समय चालीस-पचास के लगभग ज्ञात थे।

डाल्टन का विचार था कि लोहा सोना चाँदी ताँबा सीसा इत्यादि और ऑक्सीजन हाईड्रोजन नाईट्रोजन इत्यादि तत्त्व हैं। इनके बहुत छोटे-छोटे कण होते हैं जो अपने तत्त्व के गुण रखते हैं और आगे इनको तोड़कर उनके टुकड़े नहीं किये जा सकते। इन टुकड़ों का नाम उसने एटम रखा। इस प्रकार इस विद्वान् के मत से चालीस तत्त्वों से पृथ्वी पर के सब पदार्थ बने हैं और संसार में इतने ही प्रकार के एटम हैं। एटम दो-दो तीन-तीन मिलकर संयोग बनाते हैं और भिन्न-भिन्न संयोगों से भिन्न-भिन्न पदार्थ बनते हैं। यह थी Dalton's atomic Theory

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने नये-नये तत्त्वों का आविष्कार करना आरम्भ किया और वे कुछ ही वर्षों में तत्त्वों की संख्या ९ तक ले गये।

इस शताब्दी के आरम्भ में यह पता चला कि कुछ तत्त्वों के एटम

स्वयमेव टूटते रहते हैं और उनमें से उनसे भी बारीक कण निकलते हैं। इस आविष्कार ने डाल्टन के विचार को गलत सिद्ध कर दिया। तत्पश्चात् कई अन्य तत्त्व पता किये गए, जिनके एटम स्वयमेव टूटते रहते हैं। यह भी पता चला कि सब के टूटने से जो कण निकलते हैं वे एक ही प्रकार के होते हैं। इन कणों का नाम Electron रखा गया और अधिक प्रयत्न से दो अन्य प्रकार के कण देखे गये। ये थे Proton और Neutron। सब टूटने वाले एटमों में तीन प्रकार के कण निकलते हैं और ये सब एक समान एक ही बल एवं एक ही आकार के होते हैं। सब Electron परस्पर समान होते हैं। सब Proton तथा सब Neutron आपस में समान होते हैं।

अब यह निश्चित मत है कि सब-के-सब ९१ प्रकार के परमाणुओं (एटमों) में ये तीन प्रकार के कण होते हैं। अतः संसार में केवल तीन तत्त्व ही रह गये हैं। इसके साथ यह भी सिद्ध हो चुका है कि कभी-कभी एक एटम टूटता है तो उससे दो छोटे-छोटे एटम बन जाते हैं। ऐसे अवसरों पर प्रायः दो बनने वाले एटमों का संयुक्त भार मूल एटम के भार से कम होता है, शेष भार प्रकाश एवं ताप में परिवर्तित हो जाता है। उदाहरण के रूप में जब युरेनियम का परमाणु तोड़ा जाता है तो दो परमाणु बनते हैं। दोनों का भार युरेनियम से कुछ कम होता है। यह कमी शक्ति में बदल जाती है। यह कमी इस कारण होती है कि एक Proton गुम हो जाता है। इसी प्रकार अब यह पता किया गया है कि हाईड्रोजन जिसके atoms सबसे हलके हैं संयुक्त होकर हीलियम का एक परमाणु बनता है। जब हाईड्रोजन के चार एटम संयुक्त होते हैं तो एक हीलियम का एटम बनता है। परन्तु चार हाईड्रोजन एटमों का भार एक हीलियम के एटम के भार से कुछ अधिक होता है। अतः हाईड्रोजन के परमाणु जब संयुक्त होते हैं तो हाईड्रोजन का कुछ भाग नष्ट हो जाता है और वह शक्ति के रूप में प्रकट होता है।

यही सूर्य में हो रहा है। वहाँ जब एक पौंड हाईड्रोजन के एटम संयुक्त होकर हीलियम के एटम बनते हैं तो हीलियम बनती है ९९२५ पौंड। प्रति पौंड हाईड्रोजन के हीलियम में परिवर्तन से ७५ पौंड हाईड्रोजन शक्ति में बदल जाती है। यही शक्ति है जो सूर्य में प्रकाश और ताप उत्पन्न कर रही है।

यही हाईड्रोजन बम का रहस्य है।

अर्थात् पिछले दो सौ वर्षों के अनवरत प्रयत्नों से और योरप तथा अमरिका के राज्यों के अरबों पौंड का खर्च करके वे डाल्टन से चलकर इस अवस्था तक पहुँचे हैं और यह रहस्य प्राप्त कर पाये हैं कि पृथ्वी पर के

सब पदार्थ तीन प्रकार के कणों (Particles) से बने हैं। ये कण हैं Electron, Proton एवं Neutron। ये जब विनाश को प्राप्त होते हैं तो शक्ति में परिवर्तित हो जाते हैं।

हमारा यह मत है कि वर्तमान Pure Science (शुद्ध विज्ञान) भारतीय विज्ञान से अभी भी पीछे है।

हम यह बयान कर आये हैं कि आदि प्रकृति से महत् बनता है और महत् से तीन अहंकार—सात्त्विक तेजस एवं भूतादि। तेजस और भूतादि अहंकार के संयोग से पंच महाभूत बनते हैं। हमने यह भी बताया है कि इस संयोग में थोड़ा अंश सात्त्विक अहंकार भी रहता है। हमने यह भी बताया है कि हिरण्यगर्भ में तो महत् से ३ अहंकार बनते हैं और सूर्य की चक्राकार गति से अहंकार पृथक-पृथक होते हैं जिससे अपार ताप और प्रकाश उत्पन्न होता है। हमारा यह कथन सांख्यदर्शन के आधार पर है।

इसकी तुलना यदि हम वर्तमान विज्ञान की उन्नति के साथ करें तो पता चलेगा कि सात्त्विक अहंकार = Neutron तेजस अहंकार = Electron और भूतादि अहंकार = Proton। ये परस्पर मिलकर भिन्न-भिन्न प्रकार के एटम बनते हैं। इन सब में कुछ अंश सात्त्विक अहंकार (Neutron) का भी रहता है।

जहाँ तक तकनीकी अर्थात् Technology का सम्बन्ध है आज के वैज्ञानिकों में बहुत उन्नति की प्रतीत होती है। इस विषय में यह लिखा तो मिलता है कि प्राचीन काल के लोगों के पास विमान थे एवं शिल्प-अस्त्र थे और वे बड़े-बड़े ऊँचे मुहल्लों और नगरों में रहते थे। उन नगरों की सफाई एवं स्वच्छता का भी लिखा मिलता है।

इस विषय में हम यदि अयोध्या का विवरण दें तो उस समय की उन्नति का भास होगा।

अयोध्या कौशल राज्य की राजधानी थी। यहाँ इक्ष्वाकु-वंश का राज्य था। यह नगरी—

आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।

श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्त महापथा॥ वा० रा० बाल० ५-७

यह शोभाशालिनी महापुरी बारह योजन लम्बी और तीन योजन चौड़ी थी। एक योजन साढ़े चार मील का होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि चौवन मील लम्बी एवं साढ़े तेरह मील चौड़ी थी। (इसकी तुलना करिये वर्तमान युग के किसी नगर के साथ) नगर के मध्य में एक चौड़ा मार्ग बना हुआ था जो दूसरे मार्गों से सटा हुआ था।

उस मार्ग पर—

मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः ॥८॥

दोनों ओर बिखे हुए फल बिखरे रहते थे और उनको नित्य जल से सींचा जाता था—

कपाट तोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्

सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः ॥१०॥

वह पुरी बड़े-बड़े फाटकों एवं द्वारों से सुशोभित थी। पृथक-पृथक् व्यवसायों के बाजार थे। उसमें सब प्रकार के यन्त्र तथा अस्त्र-शस्त्र संचित थे। वहाँ सभी कलाओं के शिल्पी निवास करते थे।

उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम् ॥११॥

उसमें ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थीं। उन पर ध्वज फहराते थे। सैकड़ों शतघ्नियों से वह पुरी सुरक्षित थी।

शतघ्नि उस अस्त्र को कहते हैं जो एक ही बार में सैकड़ों को खेत कर दे। आज कल की तोप की तुलना उससे हो सकती है।

वधूनाटकसंघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम् ॥१२॥

नगरी में स्थान-स्थान पर नाटक मंडलियाँ थीं। जिनमें स्त्रियाँ भी नाटक करती थीं।

नगरी में सामन्त कर देने के लिए आते रहते थे। नाना देशों के व्यापारी व्यापार करने को भी आते थे।

प्रासादै रत्नविकृतैः पर्वतैरिव शोभिताम्।

कूटागारैश्च सम्पूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥१५॥

वहाँ के प्रासादों में रत्न जड़े रहते थे और वे पर्वतों के समान विशाल और ऊँचे थे।

सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम् ॥१६॥

नगरी सब प्रकार के रत्नों से भरी-पूरी तथा सातमहले प्रासादों से सुशोभित थी। इत्यादि।

आगे चलकर लिखा है—

तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः।

नरास्तुष्टाधनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः ॥६॥ बाल ६,६

उस श्रेष्ठ पुरी में निवास करने वाले सभी मनुष्य प्रसन्न धर्मात्मा बहु-श्रुत निर्लोभी सत्यवादी तथा अपने-अपने धन से संतुष्ट रहने वाले थे।

नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत् तस्मिन् पुरोत्तमे ।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥७॥
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् ।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान् न च नास्तिकः ॥८॥
नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान् ।
नामृष्टो न नलिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते ॥९॥
नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक् ।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान् ॥११॥

उस नगरी में कोई भी ऐसा कुटुम्बी नहीं था जिसके पास उत्कृष्ट वस्तुओं का संग्रह अधिक मात्रा में न हो। जिसके धर्म, अर्थ और कामरूप पुरुषार्थ सिद्ध न हो गये हों तथा जिसके पास गाय, बैल, घोड़े, धन-धान्य आदि का अभाव हो।

वहाँ कोई भी कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक देखने को नहीं मिलता था।

वहाँ कोई भी कुण्डल, मुकुट, पुष्पाहार से शून्य न था। किसी के पास भोग सामग्री की कमी नहीं थी। कोई ऐसा नहीं था जो नहा धोकर साफ-सुथरा न हो, जिसके अंगों में चन्दन का लेप हुआ न हो तथा जो सुगन्ध से वंचित हो।

अपवित्र अन्न का भोजन करने वाला, दान न देने वाला तथा मन को वश में न रखने वाला मनुष्य वहाँ दिखाई नहीं देता था। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं दिखाई देता था जो बाजूबन्द, निष्क (स्वर्ण पदक) तथा हाथ के आभूषण धारण न किये हो। इत्यादि।

हमारा यह कथन है कि यदि यह चित्र काल्पनिक नहीं तो उनकी उन्नति अवश्य उच्च स्तर की होगी। भले ही बड़े-बड़े कारखाने न हों परन्तु सबको सुख-सुविधा की सामग्री उपलब्ध थी।

इसके साथ लंका में पुष्पक-विमान और देवताओं के पास भाँति-भाँति के विमान होने का भी उल्लेख है।

यह कहा जा सकता है कि ये सब कल्पना मात्र हैं। हमारा यह कथन है कि कल्पना भी तो उस वस्तु की ही की जा सकती है जिसके दर्शन हुए हों। साथ ही यदि कल्पना की जा सकती है तो निर्माण भी हो सकता है।

हमारा मत है कि रामायण का वर्णन एटम बम इत्यादि के समान ग्रन्थों में है। आज में तब में यह भिन्नता थी कि आज विज्ञान और कलाकार केवल धन के लाभ से अपनी योग्यता बेचता है तब यह था कि विज्ञान और कलाकार

धनियों के पास नहीं होते थे प्रत्युत गुण-सम्पन्न व्यक्ति ही उनको प्राप्त कर सकते थे। इनके निर्माण का रहस्य भी योग्य अधिकारियों को ही दिया जाता था।

इस पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि यह सब-कुछ था तो यह लोप क्यों हो गया ? इसका उत्तर इतिहास में ही मिलता है।

जब-जब और जहां-जहां क्षत्रियों ने ब्राह्मणों पर प्रभुत्व स्थापित किया है ज्ञान-विज्ञान का लोप हुआ है। महाभारत में ऐसे काल का उल्लेख मिलता है जब क्षत्रिय निरंकुश हो गये तब सब कुछ नष्ट हो गया।

ऐसा एक तो कौरव-पाण्डव युद्ध का काल था। महाभारत युद्ध के पूर्व कितने लोग दुर्योधन को समझाने आये थे। महर्षि विद्वान् ब्राह्मण मुनि और ऋषि भी आये। सब समझाते रहे कि युधिष्ठिर आदि को राज्य न देने में कोई कारण नहीं। इस पर भी दुर्योधन अपने हठ पर डटा रहा कि वह सुई की नोक के बराबर भूमि भी युद्ध के बिना पाण्डवों को नहीं देगा।

दुर्योधन को वृद्ध जन भीष्म द्रोणाचार्य धृतराष्ट्र और गान्धारि ने भी समझाया था। वह नहीं माना। परिणामस्वरूप युद्ध हुआ तथा देश और राष्ट्र का घोर पतन हुआ।

यदि यह मान लिया जाये कि भौतिक उन्नति बहुत कम थी तब भी एक बात तो निर्विवाद है कि (Pure Science) विज्ञान में भारतीयों ने बहुत उन्नति की हुई थी। ज्योतिष (Astronomy) भौतिकी (Physics) रसायन (Chemisty) स्थापत्य कला (Archeology) आयुर्वेद (Medical Science) इत्यादि अनेकों विद्याओं में बहुत उन्नति हुई थी।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान की उन्नति का एक और प्रमाण है। भारत के रहने वालों का राज्य (चक्रवर्ती राज्य) तिब्बत चीन इत्यादि देशों में (उत्तर में समुद्र तट तक) पश्चिम में कन्धार ईरान बाल्किया तथा अरब तक और कदाचित इससे भी दूर तक रहा है। महाभारत काल तक अनेकों बार चक्रवर्ती राज्य भारत के सम्राटों का हुआ। यह तब तक सम्भव नहीं हो सकता था जब तक भारत शस्त्रास्त्र में विदेशों से अधिक उन्नत न रहा हो। शस्त्रास्त्र में उन्नति के लिए पड़ोसियों से भौतिक विद्या में अधिक उन्नत होना आवश्यक था। भारत निःसंदेह जहां शुद्ध विज्ञान (Pure Sciences) में उन्नत था वहां प्रायोगिक विज्ञान (Applied Sciences) में भी उन्नत रहा होगा। अन्यथा ये चक्रवर्ती राज्य स्थापित न हो सकते।

वेदों में इतिहास

वेदों के विषय में कुछ अर्वाचीन विद्वानों का मत है कि इनमें इतिहास एवं भारत के नदी नालों का वर्णन मिलता है। इन आचार्यों में सायण और महीधर तो भारतीय ही हैं। कई एक योरपियन आचार्यों ने भी यह बात लिखी है। इन्होंने वेदों में इन्द्र वरुणादिक नाम पढ़कर इनमें इन्द्रादिक का इतिहास निकालने का यत्न किया है। नदी नालों के नाम से तो वेदों में भूगोल लिखे होने की बात भी निकलती है। इन सब से वेदों का सृष्टि के उत्पन्न होने से बहुत पीछे के लिखे होने में प्रमाण मानते हैं।

यह भारतीय परम्परा के विपरीत है। ब्राह्मण ग्रन्थ जो वेदों की व्याख्या और समीक्षा में लिखे गए हैं दर्शन-शास्त्र तथा उपनिषद् ऐसा नहीं मानते। यद्यपि पुराणादि ग्रन्थों में वेदों में कथाएँ लिखी मानते हैं परन्तु पुराण स्वयं उन कथाओं को अलंकार के रूप में ही वर्णन करते हैं।

इस विषय में महर्षि स्वामी दयानन्द का मत है कि वेदों में ऐतिहासिक कथाएँ नहीं। उनमें सृष्टि तथा नक्षत्रादि की उत्पत्ति का वर्णन है और उसे उपमा अलंकार अथवा रूपकों में वर्णन किया है।

इस विषय में एक-दो उदाहरण दे दें तो यह बात स्पष्ट हो जायगी।

महीधर ने निम्न मन्त्र का अर्थ एक विचित्र ढंग से किया है। यह यजुर्वेद के २३ वें अध्याय का १९ वां मन्त्र है।

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।

महीधर का अर्थ है—सब ऋत्विजों के सम्मुख यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे और सोती हुई घोड़ से कहे कि हे अश्व ! वह जिससे गर्भ धारण होता है ऐसा जो तुम्हारा वीर्य है उसको मैं खींचकर अपनी योनि में ले लूँ। तू उस वीर्य को मुझ में स्थापना करनेवाला हो।

महीधर की भूल का कारण गणपति शब्द का अर्थ घोड़ा करने से हुआ है। वास्तव में गणपति का अर्थ प्रजापति अर्थात् परमात्मा है।

इस मन्त्र के सत्यार्थ दो प्रकार से हो सकते हैं। एक तो परमात्मा को सम्बोधन करके। वे इस प्रकार होंगे। हे प्रजापति ! तुम समस्त प्रजा को बसाने वाले हो तुम गणपति हो गण-नायक हो। हम तुमको अपना प्रिय करने वाला स्वामी स्वीकार करते हैं। हम तुमको निधिपति स्वीकार करते हैं। तुम हमारे

भी स्वामी हो अर्थात् हमारा भी प्रिय करो।

तू प्रकृति में गर्भ (हिरण्य-गर्भ) निर्माण करता है और उससे सृष्टि उत्पन्न करता है। मैं भी उसी पृथ्वी का अंश हूँ। तू मुझको धारण कर।

इसी मंत्र के पति पत्नी के विवाह के समय वचन के रूप में अर्थ किये जाते हैं। उस अवस्था में पत्नी पति से कहती है कि हे पते! मैं तुमको गुणों में गणपति प्रियजनों में प्रिय पति और ऐश्वर्यवालों में निधिपति मानती हूँ। मैं गर्भ धारण करने में समर्थ हूँ! तू मुझको प्राप्त हो।

वेदों के यथार्थ का ज्ञान न होने से भाष्य करने में अर्थ का अनर्थ हो जाता है। यही बात वेदों में इतिहास के सम्बन्ध में है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि आदि सृष्टि में तो विवाह होते ही नहीं थे फिर वेदों में विवाह और गर्भाधान इत्यादि के मंत्र अवश्य बहुत काल पीछे लिखे गये होंगे।

ऐसा नहीं है। वेद में सब प्रकार का ज्ञान मूल रूप में उपस्थित होने से आदि सृष्टि में ही हमको मिला गया था। जिससे जो जैसा करना चाहे उसको उस कार्य में पथ प्रदर्शन मिले। ज्ञान की पुस्तक एक सर्वज्ञ (परमात्मा) के द्वारा मिलने से व्यवहार के पहिले ही बता देने वाली हो स्वाभाविक ही है। जो लोग यह मानते हैं कि मनुष्य प्रारम्भ में अज्ञानी था एक वह पशु तुल्य था वे ही यह समझ सकते हैं कि प्रारम्भ में मनुष्य भी पशुओं की भाँति यत्र-तत्र समागम करता होगा और पीछे उसको विवाह-बन्धन की आवश्यकता उत्पन्न हुई होगी। ऐसा मानने वालों के लिये तो वेद सृष्टि प्रारम्भ से बहुत पीछे बने होंगे। भारतीय परम्परा तो हमने पहिले ही बता दी है। उसमें युक्ति एवं प्रमाण भी दिये हैं। अतः वेदार्थ के समय भी इस बात का ध्यान रखना ही होगा।

सृष्टि बनने से पूर्व ही परमात्मा को यह ज्ञान होगा कि मानव को जीवन चलाने में क्या-क्या व्यवहार रखना होगा। इससे लिख दिया गया। ब्रह्मा ने उसका उपदेश दिया।

सनक सनन्दादिक मुनियों के विषय में लिखा मिलता है कि ब्रह्मा ने उनको सृष्टि-उत्पत्ति के लिये कहा परन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। अतः ब्रह्मा को यह आदेश वेद ज्ञान से ही हुआ होगा।

इससे यह समझ लेना चाहिए *कि स्त्रीयोग के बनाने की आवश्यकता* नहीं थी। वह तो पशुओं ने बिना वेद पढ़े ही जान लिया है। परन्तु विवाह अर्थात् वह सामाजिक कृत्य जिससे स्त्री-पुरुष परस्पर गृहस्थ पालन करते हैं

वेद में बताना आवश्यक था ।

इसी प्रकार वेदों में कुछ ऐसे शब्द आ जाने से इतिहास का भ्रम हुआ है जो सांसारिक वस्तुओं अथवा प्राणियों के नाम हैं । इन नामों से पदार्थों की कल्पना कर ली गई है । भूल का आरम्भ उन शब्दों के मिथ्या अर्थ करने से होता है ।

वास्तव में सांसारिक पदार्थों के नाम वैदिक शब्दों से लेकर रखे गये हैं । उदाहरण के रूप में इन्द्र वरुण इत्यादि परमात्मा के विशेष गुणों के कारण नाम हैं और वेदों में इन्हीं अर्थों में इन शब्दों का प्रयोग हुआ है । इन शब्दों को पढ़कर यदि कोई अपने पुत्र का नाम इन्द्र अथवा वरुण रख ले तो न तो उसका पुत्र परमात्मा हो जाता है न ही वेदों में उसके पुत्रों का उल्लेख माना जाना चाहिए ।

हम बता चुके हैं कि इन्द्र वरुण बृहस्पति परीक्षित इत्यादि शब्द वेद-पाठ में यत्र तत्र आते हैं । उन शब्दों से परमात्मा के गुणों का स्मरण किया गया है । देवताओं ऋषियों अथवा मनुष्यों के नाम तो पीछे इन वैदिक शब्दों से रख लिये गए हैं ।

उदाहरण के रूप में—

अथर्व वेद २ ।१७।४ में इन्द्र शब्द आया है यहाँ वाक्य है इन्द्र मन्दि-नश्चमूपद' । अर्थ है परमात्मा में निरत और आनन्द रस में तृप्त ।

इसी प्रकार अथर्व वेद २ ।१६।२ में बृहस्पति का शब्द आया है यह है 'बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव । (बृहस्पति) वेद-ज्ञान का पालक परमेश्वर (अनुमृश्या) अपने ज्ञान-बल से (वलस्याभ्रमिव) तामस बादलों की भाँति छिन-भिन्न करे ।

इन शब्दों से कोई देवराज इन्द्र के अथवा आचार्य बृहस्पति के अर्थ निकाले तो अयुक्तियुक्त होगा ।

ब्राह्मणों के काल से भी इन वेद मन्त्रों में इतिहास की चर्चा चली थी परन्तु ब्राह्मण ग्रंथकारों ने इस बात का खण्डन किया है ।

वेद प्रकट हुए वैवस्वत मनु के आरम्भ में और ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे गये थे वर्तमान चतुर्युगी में । सम्भवतया त्रेता युग के अन्त में अथवा द्वापर के आरम्भ में । इतने लम्बे काल में कुछ लोग ऐसे उत्पन्न हो गये होंगे जो वेदों में ऐसे शब्दों को देखकर वैसा देवताओं अथवा मनुष्यों के नाम रखे जा रहे थे यह अनुमान लगाने लगे होंगे कि इनमें उन देवताओं अथवा ऋषियों की गाथाएँ लिखी हैं ।

एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायगी। अथर्ववेद २।१२७।७ का मन्त्र है—

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षित ॥

इस मन्त्र में परीक्षित और विश्वजनीनस्य शब्द के आने से कुछ लोगों ने इसको कौरव परीक्षित की गाथा मानते हैं।

अथर्ववेद का ब्राह्मण गोपथ है। उसमें इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार मिली है—

संवत्सरो वै परिक्षित् संवत्सरो हीदं सर्व परिक्षियतीति। अथो खल्वाहुः अग्निर्व परिक्षित् अग्निर्हीदं सर्वं परिक्षियतीति। अथो खल्वाहु गाथा एवैतत् खल्वा राज्ञ परिक्षित इति। तस्मात्तत्र कुर्यात् यथा कुर्यात् गाथा एवैतस्य धत्ता भवन्ति। यदा वै गाथा अग्नेरेव गाथाः संवत्सरस्य वेति ब्रूयात् यदा वै मन्त्रोरेव मन्त्र संवत्सरस्य वेति ब्रूयात् तत्र प्रमाणमित्येव ॥ गोपथ २।६।१२

अर्थात्—इन ऋचाओं के विषय में कोई कहते हैं कि संवत्सर ही परीक्षित है क्योंकि संवत्सर ही इस सब में सब ओर से वास करता है। फिर कोई कहते हैं कि यह काल सम्बन्धी ऋचाएँ मनुष्य की गाथा है। परन्तु ऐसा नहीं है। यह मनुष्य की गाथा नहीं है। यदि ये केवल गाथा हैं तो अग्नि व संवत्सर की ही गाथाएँ हैं और जो मन्त्र भी है तो भी अग्नि अथवा संवत्सर के ही हैं।

गोपथ ब्राह्मण में यह खण्डन इस कारण किया गया था कि उस समय भी कौत्स इत्यादि टीकाकारों ने टीकाएँ करते हुए वेदों को न केवल गाथाएँ ही वर्णन किया था प्रत्युत ऋचाओं को अर्थहीन गूढ़ और एक-दूसरे के प्रतिकूल लिखा था।

यास्काचार्य ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया है कि यदि कोई अन्धा सूर्य को न देख सके तो भुवन भास्कर का कोई दोष नहीं।

ब्राह्मण काल तथा निरुक्त काल में भी वेदों के ज्ञाता कम हो रहे प्रतीत होते थे। इस कारण निरुक्त ग्रन्थ तथा ब्राह्मण ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता पड़ी थी। इस काल में वेदों को प्रकट हुए बहुत काल व्यतीत हो चुका है।

वेदों में मानव गाथाएँ नहीं हैं।

नवीन पुराण लेखकों ने तो और भी अधिक अनर्थ किया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में एक कथा मिलती है कि प्रजापति ने अपनी कन्या में वीर्य स्थापन किया तथा पुत्र-उत्पत्ति की। इस कथा का मूल भी वेद में बताया है।

वह वेद मन्त्र इस प्रकार है—

> द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
> उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥
>
> ऋ० १।१६४।३३

द्यौ लोक में पृथ्वी पर वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाला पिता सूर्य है। बन्धु के समान हित करने वाली पृथ्वी माता है। उत्तम रीति से योग्य गौमपूर्ण समान सूर्य पृथ्वी में वीर्य सिंचन कर पुत्र (वनस्पतियों) को उत्पन्न करता है। पृथ्वी सूर्य की लड़की है। इस प्रकार पिता लड़की में गर्भ स्थापित करता है।

इस प्रकार के रूपक अलंकारों को मानव-सृष्टि की गाथाएं वर्णन किया गया है। इनको लेकर भागवतादि ग्रन्थों में अनेकों कथाएं लिखी गई हैं। ये कथाएं भी यदि अलंकार मान उनके वास्तविक अर्थ बताये जा सकते तब तो ठीक थी परन्तु मूल ग्रन्थ से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने से कथाकार अलंकार का अर्थ न समझ सके न बता ही सके।

इसी प्रकार इन्द्र एवं वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन है। वृत्र बादल का नाम है। इन्द्र सूर्य है। कृष्ण-गोपियों का वर्णन भी वेदों में से निकाला गया है। वहां गोपियों का अर्थ सूर्य की किरणों से है। जो वन-उपवनों में नृत्य करती रहती हैं।

अतः यह स्पष्ट मत है कि वेदों में गाथाएं नहीं हैं। यहां यह समझने की आवश्यकता है वहां यह भी समझ लेना चाहिए कि पुराणादि ग्रन्थ भी साहित्यिक ग्रन्थ हैं। वहां की गाथाएं भी रूपक अलंकार ही हैं। प्राय अलंकारिक आवरण इतना गहरा हो गया है कि तथ्य की बात स्पष्ट ही नहीं होती। अतः पुराणादिक गाथाओं का वर्णन करते हुए कथाकारों का कर्तव्य हो जाता है कि वे तत्त्व को उसका साहित्यिक आवरण पृथक-पृथक् कर वर्णन करें।

पुराणादि ग्रन्थों में इतिहास

मूलतः पुराण का अर्थ ही इतिहास है। भारतीय परम्परा के अनुसार इतिहास का आरम्भ सृष्टि के आदि काल से हुआ है। सृष्टि का आदि उस समय से समझा जाता है जब से आदि प्रकृति में जगत की रचना हुई। अतः प्रत्येक पुराण में सृष्टि की रचना का वर्णन किसी-न-किसी ढंग से आता है। उसके साथ ही पुराणों में राजाओं के नाम तथा वंशावलियां भी आती हैं। इस पर भी पुराणों में इतिहास उस ढंग से नहीं लिखा गया जिस ढंग से वर्त

मान युग के ऐतिहासिक ग्रन्थों में लिखा जाता है।

आजकल इतिहास का अर्थ है वंशावली के प्रत्येक घटक का जन्म-दिवस स्थान तथा उसकी स्त्री का नाम और उसके राज्य की लम्बाई चौड़ाई और उसके राज्य में प्रजा के मुख्य-मुख्य आचार-विचार आदि बातें लिखी जायें।

पुराणादि ग्रन्थों में लिखे इतिहास का ढंग दूसरा है। वहाँ एक काल में मुख्य-मुख्य व्यक्तियों का वृत्तान्त लिखा जाता है। उसमें उनकी जन्म-तिथि जन्म-स्थान सम्बन्धियों का नाम तथा उनके नौकर-चाकर, पान खिलाने वाले अथवा हुक्का भरने वालों के वर्णन की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। इतिहास में उन व्यक्तियों का उल्लेख ही पुराण-लेखकों ने उचित समझा है और उन घटनाओं का लिखना ही ठीक समझा है जिन्होंने मानव समाज के आचार विचार में परिवर्तन किया हो।

यह ठीक भी प्रतीत होता है। जहाँ इतिहास सौ-दो सौ वर्ष अथवा एक-दो हजार वर्ष का लिखना हो वहाँ अधिक व्याख्या से इतिहास लिखा जा सकता है। परन्तु जहाँ इतिहास लिखने के लिए लाखों वर्ष का काल हो वहाँ वर्तमान युग की शैली उपयुक्त नहीं रह सकती।

जो कुछ इतिहास लिखने का ढंग विशाल काल के ज्ञान के कारण किया गया था उसको आज के विद्वान् अनभिज्ञता के कारण मानने लगे हैं। संक्षिप्त वर्णन घटनाओं का चयन तो इस कारण किया गया था कि इतने लम्बे काल के विस्तृत वृत्तान्त से कुछ लाभ नहीं होता। एक ही प्रवृत्ति को बार-बार लिखा जाना पुनरावृत्ति हो जायगी। यह बात कि जो घटनाएँ किसी पुराण-लेखक ने अपने पुराण के लिये चयन की हैं वे पाठक को पसन्द नहीं और वे किसी दूसरी घटनाओं को जानना चाहता है यह बात तो किसी भी इतिहास और उसके पाठकों के विषय में कही जा सकती है। लेखक तो जिसको आवश्यक समझेगा वही लिखेगा।

पुराण के विषय में एक बात और कही जाती है कि साहित्यिक आवरण इतना गहरा होता है कि प्रायः कथाएँ उद्देश्यहीन प्रतीत होती हैं। कभी उद्देश्य का ज्ञान होता भी है तो आवरण इतना अस्वाभाविक होता है कि तथ्य को भी स्वीकार करने को चित्त नहीं करता।

हम इस बात के उदाहरण में एक कथा यहाँ लिख देना चाहते हैं। कथा वाल्मीकि रामायण में से दी है। यों तो यह अन्य पुराणों में भी मिलती है।

यह कथा विश्वामित्र राम को सुना रहे हैं। वे कहते हैं—श्रीराम! हिमवान नामक एक पर्वत है जो समस्त पर्वतों का राजा है तथा सब प्रकार की धातुओं का बहुत बड़ा खज़ाना है।

हिमवान की दो कन्याएँ थीं। सुन्दर कटि प्रदेश वाली मैना ही उन दोनों कन्याओं की जननी थी। मेरु पर्वत की मनोहारिणी पुत्री मैना हिमवान की प्यारी पत्नी थी।

मैना के गर्भ से प्रथम कन्या उत्पन्न हुई। वे ही यह गंगा सरिता है। यह हिमवान की ज्येष्ठ पुत्री है। इसकी दूसरी कन्या जो मैना के गर्भ से उत्पन्न हुई उमा नाम से प्रसिद्ध हुई। कुछ काल पश्चात् सब देवताओं ने देवकार्य की सिद्धि के लिए ज्येष्ठ कन्या गंगाजी को जो आगे चलकर स्वयं से त्रिपथगा नदी के रूप में अवतीर्ण हुई गिरिराज हिमालय से माँग ली। हिमवान ने त्रिभुवन का हित करने के लिए अपनी लोक-पावनी पुत्री को उन्हें दे दिया। देवता इससे कृतार्थ अनुभव करते थे।

रघुनन्दन! गिरिराज की दूसरी कन्या उमा थी। वह उत्तम तथा कठोर व्रत का पालन करती हुई घोर तपस्या में लग गई। उसने तपोमय धन का संचय किया। गिरिराज ने अपनी इस तपस्विनी कन्या उमा का भगवान रुद्र से विवाह कर दिया।

इस प्रकार सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा तथा भगवती उमा दोनों गिरिराज हिमालय की कन्याएँ हैं। सारा संसार इनके चरणों में नतमस्तक होता है।

यह कथा है। साधारण बुद्धि का व्यक्ति तो इस कथा का सिर-पैर भी नहीं समझ सकता। इस पर भी यह सतयुग काल की एक ऐतिहासिक घटना है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्लावन के पश्चात् देवता लोग जो त्रिविष्टप के पठार पर रहते थे जलाभाव के कारण कष्ट में थे। हिमालय की प्रायः सब नदियाँ बहकर हिमालय के दक्षिण में जाती थीं। त्रिविष्टप पठार में कोई नदी नहीं जाती थी। अथवा जो जाती थी पर्याप्त जल नहीं ले जाती थी।

देवताओं ने हिमालय की एक नदी काटकर त्रिविष्टप में ले जाने का विचार किया तो बिना हिमालय के शासक की अनुमति के वे ऐसा कर नहीं सके। अतः देवताओं का एक प्रतिनिधि गिरिराज की सेवा में उपस्थित हुआ और गंगा नदी को देवलोक में ले जाने की स्वीकृति माँगने लगा। देवताओं ने अपनी कठिनाई का वर्णन किया और गिरिराज ने—

> ददौ धर्मेण हिमवांस्तनयां लोकपावनीम् ।
> स्वच्छन्दपथगां गङ्गां त्रैलोक्यहितकाम्यया ॥
>
> वा रा बा १३।१८

'त्रिभुवन के हित की इच्छा से स्वच्छन्द पथ पर विचरने वाली लोकपावनी गंगा (पुत्री) को धर्मपूर्वक उनको दे दिया।

देवताओं ने पवत काटकर उसके बहाव को अपनी ओर कर लिया। गंगा स्वर्ग देश में पहुँच गई और वहाँ तीन धाराओं में बहने लगी। एक धारा तो आकाश में (ऊँचे मार्ग पर) बहती थी। दूसरे रमणीय देव नदी के रूप में देवलोक में पहुँच गई एवं तीसरी धारा कुछ दूर जाकर भूमि में समा गई अर्थात् रसातल में पहुँच गई।

यह ढंग इतिहास लिखने का ठीक है अथवा वर्तमान काल के इतिहास लिखने का ढंग ठीक है हम इस विवाद में यहाँ पड़ना नहीं चाहते। हाँ इतना बताना चाहते हैं कि यह प्राचीन भारतीय शैली है। भारत में इस शैली को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसके अपने गुण एवं अपने दोष हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि भारतीय इतिहास है ही नहीं।

यह बात भी विचारणीय है कि इतिहास लिखने का प्रयोजन क्या है ? एक इतिहासकार लिखता है कि मुगल का पहला बादशाह बाबर भारत में आया और यहाँ राज्य जमा बैठा। उसका जन्म १४८३ ई में हुआ। उसने १५ ४ में काबुल विजय किया तथा १५१ में समरकन्द एवं १५२६ में पानीपत का युद्ध जीता। १५२७ में राणा को विजय किया तथा घाघरा पर १५२९ में विजय पाई और उसकी मृत्यु १५३ में हो गई।

इन घटनाओं का विस्तृत विवरण भी दिया गया है परन्तु इसके लिखने का क्या अर्थ निकला ? जो कुछ जनसाधारण को इस जीवन चरित्र से लाभ होता है वह क्या पौराणिक गाथाओं से नहीं होता ? अपनी-अपनी लिखने की शैली है। अर्थ समझकर लाभ उठाने वाले दोनों से न्यूनाधिक लाभ उठा सकते हैं और जो समझ-बूझ नहीं रखते वे किसी शैली से भी लाभ नहीं उठा सकते।

कदाचित् लाखों वर्षों के इतिहास को उपयोगी बनाने का पौराणिक ढंग ही ठीक है। इतने लम्बे काल का इतिहास वर्तमान शैली पर लिखना सम्भव नहीं है उससे किसी प्रकार का लाभ भी नहीं निकलता है।

कम-से-कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि वर्तमान ढंग से भी इतिहास की खोज करने वालों के लिए भारत में पुराण महाभारत रामायण से अधिक सामग्री कहीं नहीं मिलती। शिलालेख अथवा विदेशियों के अधूरे

वृत्तान्त तो तब उपयोगी और प्रमाणित सिद्ध हो सकते हैं जब इस प्रकार लिखे वृत्तान्त न होते।

पुराण इतिहास के ग्रन्थ हैं। इनमें सत्य कथाएँ लिखी हैं। केवल घटनाओं को रंगीन बनाने के लिए, जिससे वे जनसाधारण में भी पठनीय और हृदयग्राही हो जायें कुछ साहित्यिक ढंग अपना लिये गए हैं। तिथियों और स्थानों के पचड़े में न पड़कर सीधी सरल भाषा में उस उद्देश्य को पुष्ट बना दिया जाता है जो इतिहास का परम उद्देश्य है।

मानव मन के विकारों और उनके दुष्परिणामों और उनसे बचने के उपायों का वर्णन यह है संसार के इतिहास लिखने का प्रयोजन। ये मन के विकार राजनीतिक प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। ये राजनीतिक तथा धार्मिक हलचल मचा सकते हैं अथवा यह पारिवारिक कलह-क्लेश उत्पन्न कर सकते हैं। यह बताना पुराण का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐतिहासिक घटनाओं को उदाहरण बनाया गया है।

हम अगले परिच्छेद में आदि युग से लेकर वर्तमान युग तक के इतिहासज्ञों के विचार से ऐतिहासिक काल की मुख्य-मुख्य युग-परिवर्तक घटनाओं का वर्णन करेंगे। वे सब-की-सब इतिहास की भारतीय परम्परा के अनुसार होंगी। उनको पढ़कर उनके वर्तमान इतिहास की तुलना में लाभ तथा हानि का अनुमान तो पाठक ही लगा सकेंगे। हमारा उद्देश्य तो भारतीय ढंग से लिखे इतिहास की झलक दिखाना है।

यहाँ हम यह लिख देना चाहते हैं कि बाइबल में यह किंवदन्ती कि इब्राहिम को आदम की पुस्तकें एक पेटिका में पड़ी मिली थीं अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। यह हमने लिखा है कि वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में हुई प्रलय बहुत ही साधारण थी। इस कारण इसमें पूर्ण सृष्टि का संहार नहीं हुआ था। यह भी लिखा जा चुका है कि किसी-न-किसी प्रकार इस प्रलय के आने का समाचार मनुष्यों को पहिले ही प्राप्त हो चुका था। अतः यह किसी प्रकार भी विचित्र बात प्रतीत नहीं होती कि तत्कालीन विद्वानों ने कुछ पवित्र पुस्तकों को प्लावन से सुरक्षित रखने का प्रबन्ध किया हो। उसी किंवदन्ती में यह भी बात थी कि आदम ने सृष्टि-उत्पत्ति की कथा लिखी और वह भी उस पेटिका में मिल गई थी।

सृष्टि-उत्पत्ति का इतिहास ही पुराण है। भारतीय परम्परा में भी इस प्रकार के प्रमाण मिलते हैं कि वर्तमान अठारह पुराणों के अतिरिक्त भी प्लावन पूर्व के प्राचीन पुराण थे। वे इस युग में लोप हो गए हैं। इस पर भी

ब्राह्मण ग्रन्थों में और अन्य प्राचीन ग्रन्थों में जो वर्तमान पुराणों से पहिले लिखे गए थे ऐसा संकेत मिलता है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन पुराणों से पहले अन्य पुराण हो थे।

वर्तमान पुराणों में सृष्टि क्रम तो उन प्राचीन पुराणों से लेकर ही लिखा गया है। वर्तमान चतुर्युगी की बातें तो उनके अतिरिक्त हैं।

षष्ठ परिच्छेद

आदि युग

अब हम आदि युग से कुछ घटनाएँ लिखना चाहते हैं। इनको ऐसे क्रम और ढंग से लिखने का यत्न किया जा रहा है कि जिससे हम मानव-सृष्टि के आदि-काल से लेकर वर्तमान-काल तक में हुए परिवर्तनों का इतिहास में दिग्दर्शन कर सकें। इन लाखों वर्षों के पूर्ण इतिहास को पूर्ण तो कभी लिखा ही नहीं जा सकता। काल और फिर उसमें युगान्तर प्रलयों के घटने से यह सम्भव नहीं रहा कि कोई उसकी पूरी गाथा को लिख सके।

यह तो भारतीय प्राचीन पुराणों महाभारत तथा रामायण के लेखकों का ही धन्यवाद करना चाहिए कि उन्होंने उस प्राचीन काल की परम्पराओं को सजीव रखा है। दूसरे देशों के लेखक इसको कोरी कल्पना भी कह सकते हैं। ऐसा कहने के लिए वे क्षम्य हैं। उनके पूर्वजों ने उनके लिए इतिहास नहीं लिखा और वे कुछ जानते भी नहीं। जब भारत में महाभारत लिखा जा रहा था तब इंग्लैण्ड और अन्य योरपीय देशों में मनुष्य जानवरों की खालें पहिनते थे और उँगलियों पर गणना करने के अतिरिक्त अन्य कुछ जानते भी नहीं थे। वे बेचारे यदि यह कहें कि इतना प्राचीन इतिहास हो ही नहीं सकता तो अन्धे को सूर्य न देख सकने की कहावत ही यहाँ पर चरितार्थ हो सकती है।

कुछ भी हो जो कुछ यहाँ लिखा जा रहा है यह अविश्वसनीय नहीं है जो हिन्दुओं के घरों में अभी भी कथा के रूप में बहुत श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक सुना जाता है। हमारा अभिप्राय रामायण महाभारत से है।

रामायण महाभारत लिखने का उद्देश्य इतिहास सुनने-सुनाने से कुछ अन्य है। इस कारण उसमें से हम इतिहासमात्र ही लिखेंगे। कुछ घटनाएँ उससे बाहर की भी लिखना चाहते हैं। इन सब के लिखने का अभिप्राय यह है कि वह प्रयोजन जो भारतीय परम्पराओं में इतिहास लिखने का माना जाता है पूर्ण हो सके।

भगवान् हयग्रीव

समुद्र सूख रहे थे। कमल के सदृश भूमि जल से बाहर आ रही थी। ब्रह्मा उस कमल रूपी पृथ्वी पर दो कार्य कर थे। एक ओर तो वे वेद लिख रहे थे। श्री हरि की प्रेरणा से उनके हृदय में सत्य ज्ञान प्रस्फुटित हो रहा था और वे उसको लेखनीबद्ध कर रहे थे। दूसरी ओर वे सृष्टि की उत्पत्ति कर रहे थे। पृथ्वी सर्वथा उर्वरा थी। इस पर तैजस एवं भूतादि अहंकार का संयोग सुगमता से हो रहा था। दूसरी ओर अति-न्यून प्रयास से तैजस एवं सात्विक अहंकारों का भी सुयोग होने से जीवन-संस्थान बन रहे थे। इन दोनों प्रकार के संयुक्त योगों को एक-दूसरे में स्थापित करने से प्राणी बन जाते थे। ब्रह्मा अनेक प्रकार से इन अहंकारों का संयोग कर उनमें न्यूनाधिक मात्रा में महत् का समावेश कर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणी निर्माण कर रहा था। वे प्राणी जो बुद्धि में तामसी अंश अधिक ले आते थे उनमें कल्प-पूर्व की निकृष्ट आत्माएँ आकर अपने कर्मों का भोग करने लगती थीं और जब महत्-बुद्धि में सात्विक अंश अधिक आ जाता था तो उस शरीर में पूर्व कल्प की श्रेष्ठ आत्माएँ आकर वास पा जाती थीं। इस प्रकार पशु पक्षी जलचर नभचर, वन पशु इत्यादि अनेकों प्रकार की तामसी और सनक सनकादि मुनियों जैसी सात्विक विचारों वाली सृष्टि बनती चली जाती थी। ब्रह्मा इस प्रकार की सृष्टि से प्रसन्न नहीं थे। वे ऐसी सृष्टि निर्माण करने की चिन्ता में थे जो स्वयमेव अपनी सन्तान निर्माण करने की शक्ति तथा रुचि रखे।

तामसी प्रकृति के जीव-जन्तु तो उत्पन्न होते ही मैथुनी सृष्टि-निर्माण में लग जाते थे परन्तु ब्रह्माजी का प्रयास इस दिशा में था कि ऐसे प्राणी बनें जो समय पर सात्विक और तामसी स्वभाव रख सकें। समय आने पर वे प्राणी राजसी स्वभाव को भी धारण कर सकें।

अभी वैसी सृष्टि बन नहीं पाई थी कि दो प्राणी जो सात्विक प्रकृति से सर्वथा शून्य थे बन गये। पृथ्वी सागर से पर्याप्त बाहर आ चुकी थी और जो भी प्राणी बनते थे वे दूर-दूर तक भ्रमण करते हुए चले जाते थे। इन दोनों प्राणियों का नाम ब्रह्मा ने कैटभ और मधु रख दिया। ब्रह्मा जो भी प्राणी निर्माण करते थे उनके नाम वेद के शब्दों पर रख देते थे।

यह तामसी बुद्धि के जीव अन्य प्राणियों को मार-मारकर खाते हुए पूर्ण भूमि पर उत्पात मचाने लगे थे। एक दिन वे वहाँ पहुँच गये जहाँ ब्रह्मा ध्यानमग्न बैठ वेद लिख रहे थे। मधु और कैटभ को यह क्रिया विचित्र प्रतीत

हुई वे समझ न सके कि यह ओजस्वी पुरुष यहाँ बैठा क्या कर रहा है। उनके मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि वे देखें कि यह क्या वस्तु है और यह उस वस्तु पर क्या कर रहा है।

अतः वे छिपकर ब्रह्मा को देखते रहे। जब ब्रह्मा अपने लेखन का उस दिन का कार्य समाप्त कर उसको लपेटकर एक ओर रख सागर तट पर भ्रमण कर रहा था कि वे दैत्य उस लिखी पुस्तक को लेकर भाग गए और पृथ्वी के दूसरे छोर पर पहुँचकर ब्रह्मा के कार्य का निरीक्षण करने लगे। परन्तु जब वे कुछ भी समझ न सके तो उनके मन में भय समा गया। वे विचार करते थे कि न जाने वह व्यक्ति यह जानकर कि उसकी वस्तु वे उठा लाये हैं क्या करेगा। अतः उन्होंने उस पुस्तक को सागर के नीचे भूमि खोदकर छिपा दिया।

ब्रह्मा जब भ्रमण से लौटे तो लिखे हुए पत्रों को यथास्थान न देख बहुत परेशानी अनुभव करने लगा। ब्रह्मा ने भगवान् का चिन्तन एवं स्मरण कर एक प्राणी निर्माण किया। यह प्राणी राजसी प्रवृत्ति से भरपूर था। ब्रह्मा ने इसका नाम हयग्रीव रखा। इसकी ग्रीवा कुछ लम्बी थी। इससे इसका यह नाम हुआ।

हयग्रीव को ब्रह्मा ने अपनी कठिनाई बताई तो उसने वेदों का पता किया और उनको रसातल से निकालकर ले आया। जब वह वेद लाकर ब्रह्मा को दे रहा था तब मधु व कैटभ ने देख लिया। उस पुस्तक को लाने के लिए यह सब यत्न देखा तो दैत्यों के मन में भारी क्षोभ हुआ। वे समझने लगे कि उस वस्तु को खोकर उनकी भारी हानि हुई है। अतः वे उस व्यक्ति (हयग्रीव) पर झपटे। वे दो और हयग्रीव अकेला दूसरी ओर। घोर युद्ध हुआ। हयग्रीव ने दोनों को मार डाला और ब्रह्माजी की जान बचा दी। उस समय पृथ्वी पर जितने प्राणी थे वे समझने लगे कि यह अति शक्तिशाली प्राणी है। वह डरने लगे और ब्रह्मा निर्भय शान्तचित्त से अपने दोनों कार्यों में लीन हो गया।

ब्रह्मा को यह ज्ञान हो गया कि भगवान श्री हरि का चिन्तन करने से उसके मन में सात्त्विक प्रवृत्तियों का उत्कर्ष होता है और फिर वह वैसा ही प्राणी बना सकता है। इसके पश्चात् उसने पुनः हरि का धन्यवाद किया और चिन्तन कर सृष्टि का निर्माण आरम्भ कर दिया।

इस कथा को हमने सबसे पहले इस कारण लिया है कि (१) हिन्दू विचारधारा में हयग्रीव प्रथम अवतार माना जाता है। (२) यह उस काल की कथा है जब मानव सृष्टि अभी नहीं हुई थी। (३) इस कथा से यह प्रकट

हिरण्यकशिपु

प्रजापति भगवान दक्ष और दक्ष की पत्नी शतरूपा भी ब्रह्मा की संतान थे। दोनों अमैथुनीय सृष्टि के बीज थे। सबसे प्रथम दक्ष प्रजापति को ही मैथुनीय सृष्टि उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दक्ष ने शतरूपा से पचास कन्याएं उत्पन्न कीं। वे सभी कन्याएं परम सुन्दर अंगों वाली तथा विकसित कमल के समान विशाल लोचन वाली थीं। दक्ष के कई पुत्र भी हुए थे। परन्तु उन्होंने विवाह नहीं किये तथा वे भगवत् भजन में लीन हो वन को चले गये। दक्ष ने अपनी लड़कियों को ही अपना पुत्र मान उनका विवाह कर दिया।

दक्ष ने अपनी दस कन्याओं का विवाह धर्म से किया और सत्ताईस का चन्द्रमा से। शेष तेरह का मरीचि के पुत्र कश्यप से विवाह कर दिया। जिनका कश्यप से विवाह हुआ उनके नाम थे अदिति दिति दनु काला दनायु, सिंहिका क्रूरा प्राधा विश्वा विनता कपिला मुनि और कद्रू। अदिति के बारह पुत्र हुए। अदिति के पुत्र होने से वे आदित्य कहलाये। उनके नाम थे धाता मित्र अर्यमा इन्द्र वरुण अंश भग विवस्वान पूषा सविता त्वष्टा और विष्णु।

होता है कि आसुरी स्वभाव के लोग सदा इस संसार में रहे हैं। ये इस जन्म के नहीं प्रत्युत पूर्व जन्मों के संस्कारों से निर्मित होते हैं। (४) इससे यह भी प्रकट होता है कि दुष्टता शारीरिक आवश्यकताओं से नहीं प्रत्युत स्वभाव से बनती है। स्वभाव पूर्वजन्म के कर्म फल से उत्पन्न होता है। (५) वर्तमान युग के विद्वान् इस कथा पर विश्वास नहीं कर सकते। यद्यपि इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं। अस्वाभाविक बात तो यह है कि प्रथम अमैथुनी सृष्टि कैसे हुई अथवा वेद कैसे लिखे जा रहे थे? परन्तु इन दोनों प्रश्नों के विषय में हम पिछले परिच्छेदों में विस्तार से लिख चुके हैं। शेष तो वही कथा है जो बल वाली तामसी प्रवृत्ति के मनुष्य आज भी करते देखे जाते हैं। यदि यह किसी भारतीय प्राचीन शास्त्र में लिखी हुई है तो गलत ही है। ऐसा मानने वालों को बताने के लिए यह लिखी है कि हमको इसमें कोई भी बात असम्भव प्रतीत नहीं हुई।

यह कथा महाभारत के शान्ति पर्व अध्याय १४७ में लिखी है। इसमें लिखते समय इसका साहित्यिक आवरण उतारकर केवल वह अंश लिखा है जिसको ऐतिहासिक कहा जा सकता है।

इन्द्र आगे चलकर देवताओं का राजा हुआ और विष्णु योद्धा। जहाँ जहाँ एवं जब-जब भी देवताओं पर भीड़ पड़ी विष्णु ने युद्ध कर देवताओं की विजय कराई। इन्द्र राज्य कार्य में कुशल होने से राजा बना। वह देवराज कहलाया।

कश्यप से दक्ष की दूसरी कन्या दिति से एक पुत्र हुआ। वह हिरण्यकशिपु के नाम से विख्यात हुआ। वह दैत्य हो गया। इसके पाँच पुत्र थे नाम थे प्रह्लाद संह्लाद अनुह्लाद शिबि और बाष्कल।

हिरण्यकशिपु के जन्म की कथा इस प्रकार है कि दिति सन्तानोत्पत्ति की इच्छुक नहीं थी एवं वह चिरकाल तक निःसन्तान रही। एक दिन वह पति की कामना से व्याकुल हो उठी और अपने पति के पास जा पहुँची। सायंकाल का समय था और महर्षि कश्यप अग्निहोत्र कर रहे थे। दिति ने अपनी इच्छा प्रकट की तो कश्यप ने उसे किसी अन्य समय आने के लिए कह दिया। इस पर उसने पुनः आग्रह किया। विवश कश्यपजी ने उसकी कामना पूरी की। परन्तु उस अनुपयुक्त समय पर आरोपित सन्तान स्वभाव से ही दुष्ट और क्रूर हुई।

वह सन्तान ही हिरण्यकशिपु थी। बड़ा होकर हिरण्यकशिपु ने अपना राज्य निर्माण कर लिया और महान् शक्तिशाली होने के कारण उसका अभिमान बढ़ता गया। हिरण्यकशिपु का एक छोटा भाई भी था। उसका नाम हिरण्याक्ष था। दोनों भाई महा बलवान थे और अपने सामने किसी की भी गणना नहीं करते थे। समय पाकर उनकी समझ में आया कि—

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी।

मैं ईश्वर हूँ। सब कुछ मेरे भोग के लिए है। मैं सिद्ध हूँ। मैं बलवान् हूँ और परम सुख पाने के योग्य हूँ। इस प्रकार अभिमान से चूर वे दोनों भाई सबको कष्ट पहुँचाने लगे। जो कुछ उनकी लेने की इच्छा होती वे ले लेते और उसका भोग करते।

एक बार हिरण्यकशिपु घोर तपस्या करने गया हुआ था। पीछे उसकी पत्नी की पहली सन्तान उत्पन्न हुई। इसका नाम प्रह्लाद रखा गया। हिरण्यकशिपु घर पर नहीं था इस कारण प्रह्लाद की माँ अपने नव-जात शिशु के साथ नारदजी के आश्रम में ध्यान तपस्या इत्यादि के लिए चली गई। प्रह्लाद वहाँ पला बड़ा हुआ और नारद के उपदेशों से ईश्वर-भक्त हो गया।

जब हिरण्यकशिपु अपने घर लौटा तो उसकी पत्नी भी घर लौट आई। हिरण्यकशिपु तपस्या से अपार बल प्राप्त कर आया था और वह

उस बल का प्रयोग अपनी सुख सामग्री जुटाने के लिए करने लगा।

जब कभी उससे कहते कि वह ईश्वर से डरे और अत्याचार न करे तो वह कह देता कि ईश्वर तो मैं हूँ। मैं बलवान हूँ इस कारण सब प्रकार के भोग मुझको प्राप्त होने चाहिए। सब प्रकार के सुखों पर मेरा अधिकार है।" वह अपनी इच्छा से दूसरे का धन सम्पदा स्त्री एवं कन्या उठाकर ले जाता। सब उसका बल देखकर भयभीत रहते थे।

प्रह्लाद के मन में बचपन के संस्कार जो उसने नारद के आश्रम में ग्रहण किय थ काम रहे थे और वह अपने पिता का व्यवहार देख असन्तुष्ट रहता था। जब प्रह्लाद को विश्वास हो गया कि उसके पिता का व्यवहार ठीक नहीं तो वह उन सब की सहायता करने लगा जिनको उसका पिता एवं चाचा कष्ट पहुँचाने लग।

हिरण्याक्ष तो विष्णु से द्वन्द्व-युद्ध में मारा गया। हिरण्याक्ष ने पृथ्वी के एक बड़े भाग पर अनुचित अधिकार कर रखा था। उस भू-भाग के लोगों ने चीख-पुकार की तो विष्णु ने हिरण्याक्ष को मारकर उस भू-भाग को मुक्त कराया।

इस पर हिरण्यकशिपु को बहुत क्रोध आ गया। विष्णु उसका मौसिया भाई था और वह समझता था कि उसको हिरण्याक्ष से युद्ध नहीं करना चाहिए। प्रह्लाद इससे उलट समझता था। वह समझता था कि उसके चाचा का व्यवहार अधर्मयुक्त था। इस कारण जो कुछ विष्णु ने किया है वह ठीक था।

प्रह्लाद ने उनके साथ जिन पर हिरण्याक्ष अन्यायाचरण कर रहा था सहानुभूति प्रकट की जब वह मारा गया तो उसने इसको ईश्वरेच्छा मान प्रसन्नता प्रकट की। इससे प्रह्लाद का पिता उससे बहुत रुष्ट हुआ।

जब हिरण्यकशिपु अपने भाई का प्रतिकार लेने का षड्यन्त्र कर रहा था तब प्रह्लाद सब को प्रत्यक्ष रूप में कह रहा था धर्म का हनन करने से ही मृत्यु होती है। बिना ईश्वर की इच्छा के न कोई मारता है और न कोई जन्म लेता है।

हिरण्यकशिपु ने यह समझा कि प्रह्लाद घर का भेदी है। इसके रहते वह भाई की हत्या का प्रतिकार नहीं ले सकेगा। इसलिए उसने पहले तो प्रह्लाद को समझाना चाहा कि वह उसका पुत्र है उसको अपने पिता का पक्ष लेना चाहिए।

प्रह्लाद का उत्तर था संसार में दो ही पक्ष हैं एक धर्म का और

दूसरा अधर्म का। माता-पिता, बहिन-भाई, राजा प्रजा, मित्र-परिचित पक्ष विपक्ष का निर्णय नहीं करते। पक्ष ईश्वर का अथवा ईश्वर के विरोध का है। मैं धर्म तथा ईश्वर के पक्ष में हूँ।

हिरण्यकशिपु का कहना था, "देखो प्रह्लाद ईश्वर मैं हूँ, धर्म वह है जो मैं कहता हूँ। इस कारण भी तुमको मेरा पक्ष लेना चाहिए।

"परन्तु तात! ईश्वर तो सर्व व्यापक है। वह सर्वान्तर्यामी है और आप तो इस आकार से बाहर की बात नहीं जानते।"

"सर्व-व्यापक और सर्वान्तर्यामी को बात मैं जानता नहीं। मैंने किसी को देखा नहीं। हाँ, सबसे अधिक बलवान मैं हूँ, अतः मैं ही ईश्वर हूँ।"

"परन्तु इस चराचर जगत् का नियन्त्रण, पालन-पोषण कौन करता है? आप तो नहीं करते?

"मैं अपने अधीन रहने वालों का पालन-पोषण एवं रक्षण तो करता हूँ। कम-से-कम उनका ईश्वर मैं हूँ।"

"परन्तु आप अन्नादि तो उत्पन्न नहीं कर सकते। आप फल-फूल नहीं बना सकते।"

"यह सब कार्य भूमि करती है और भूमि का स्वामी होने से मैं ईश्वर हूँ।"

"नहीं तात! यह भूमि नहीं करती। एक सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान है एवं सूर्य, चन्द्र, तारागण को गति देने वाला है। वही ईश्वर है।

इस पर हिरण्यकशिपु को क्रोध आ गया और उसने कहा, "तुम मेरे पुत्र हो। तुमको मुझसे वाद विवाद नहीं करना चाहिए। इस कारण जब मैं कहता हूँ कि ईश्वर मैं हूँ, तो तुमको भी ऐसा कहना चाहिए, अन्यथा तुमको राजद्रोह के अपराध में दण्ड दिया जा सकता है।"

प्रह्लाद नहीं माना, इस पर उसको आज्ञा मिली कि यदि वह अपने व्यवहार का संशोधन नहीं करेगा तो उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायगा। प्रह्लाद नहीं माना तथा जनसाधारण में प्रचार करता रहा कि इस सब दिखाई देने वाले जगत् का और न दिखाई देने वाले जगत् का स्वामी परमात्मा है। उससे डरो और फिर निर्भय होकर रहो। जिसकी सहायता प्रभु करता है, उसको कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

लोग सुनते थे, परन्तु यह जानकर कि प्रह्लाद तो अपने पिता से बहुत दुर्बल है और वह पिता का विरोध नहीं कर सकेगा, मुख से कुछ कहते नहीं थे। हृदय में वे सब उससे सहानुभूति रखते थे, परन्तु प्रत्यक्ष में वे कुछ नहीं

कह सकते थे।

हिरण्यकशिपु के संगी-साथी भी जनता में असन्तोष देखने लगे थे और उस असन्तोष का कारण प्रह्लाद को जान हिरण्यकशिपु के पास उसकी निन्दा करते रहते थे। अब कहीं-कहीं लोग हिरण्यकशिपु के साथियों का मिलकर विरोध करने लगे थे।

एक दिन प्रह्लाद का गुरु यह आरोप लेकर हिरण्यकशिपु के पास पहुँचा कि प्रह्लाद ने पाठशाला के सब बालकों को सिखा-पढ़ाकर विद्रोही बना दिया है। वे उसकी आज्ञा का पालन नहीं करते। वे राजा को दुष्ट तथा आततायी मानते हैं। वे परमात्मा की भक्ति और उपासना के स्तोत्र गाते हैं।

प्रह्लाद को बुलाया गया और उससे गुरुजी के आरोप का उत्तर माँगा गया। प्रह्लाद ने आरोपों को स्वीकार करते हुए कहा मैं उनको वही कहता हूँ जो मैं ठीक मानता हूँ। यदि मेरी बात गलत है तो आप उनको कह दीजिये कि मेरी बात न मानें। उनकी समझ में आयेगी तो आपकी बात मान जायेंगे।"

"परन्तु उससे पूर्व तो हम तुमको समझाते हैं कि तुम उनको ऐसी कोई बात मत कहो।

"मैं कहूँगा।

"क्यों ?

इस कारण कि यह सत्य है। सत्य को प्रकट करना और उसके अनुसार आचरण करना धर्म है।"

तो तुम हमारी बात नहीं मानोगे ?

"मैं मिथ्या बात को नहीं मानूँगा।

"तो ईश्वर सत्य है।"

"जी हाँ।"

"वह मुझसे अधिक बलवान है ?"

"वह सर्वशक्तिमान है।"

"तो हम तुमको अग्नि समान तपे हुए खम्भे से बाँध देंगे। यदि कोई ईश्वर है और हमसे अधिक शक्तिशाली है तो उसको बुलाओ देखें वह तुम्हारी किस प्रकार रक्षा करता है। आज से तीसरे दिन तुम्हें दण्ड दिया जायेगा। इस काल में तुम उसको बुला सकते हो।

विष्णु को यह जब सूचना मिली तो वह हिरण्यकशिपु की नगरी में आ गया और प्रजा को सुसंगठित हो प्रह्लाद की सहायता करने की प्रेरणा देने

गया। लोगों ने देखा कि विष्णु हिरण्यकशिपु से अधिक नहीं तो कम बलवान भी नहीं साथ ही उनको यह विदित था कि हिरण्याक्ष को उसने द्वन्द्व-युद्ध में मारा था। इससे एक बलशाली का आश्रय पाकर प्रजा उत्साहित हो प्रह्लाद की रक्षा के लिए तैयार हो गई।

निश्चित दिन सार्वजनिक भवन का एक खम्भा उसके चारों ओर अग्नि जलाकर तपा दिया गया और प्रह्लाद को बुलाकर अन्तिम बार उससे पूछा गया अपने विचारों को बदलते हो अथवा नहीं?

आप ईश्वर नहीं हैं। ईश्वर आप से भी बलशाली है। मैं अपने को उसके आश्रय छोड़ता हूँ।"

हिरण्यकशिपु ने आज्ञा दे दी "इस बालक को इस तप्त खम्भे से बाँध दो।

सेवक जब प्रह्लाद को बाँधने लगे तो वे यह देख चकित रह गये कि प्रह्लाद न तो भयभीत है न दुःखी। वह प्रसन्न-वदन खम्भे के साथ बँधने के लिए तैयार हो गया। परन्तु उसके खम्भे से बँधने के पूर्व ही विष्णु विशालजन-समूह के साथ वहाँ आ पहुँचा और उसने हिरण्यकशिपु को युद्ध के लिए ललकारा।

"तुम कौन हो? हिरण्यकशिपु ने प्रश्न किया।

"मैं नरसिंह (नरों में सिंह) हूँ।

हिरण्यकशिपु प्रजा को नरसिंह के साथ देख निस्तेज हो गया था। युद्ध हुआ और विष्णु ने हिरण्यकशिपु को मारकर उसके स्थान पर प्रह्लाद को वहाँ का राज्य सौंप दिया।

हिरण्यकशिपु का नरसिंह द्वारा वध तो सृष्टि के बनने के बहुत पीछे हुआ प्रतीत होता है। उस समय तक जनसंख्या बहुत बढ़ चुकी थी परन्तु इस समय तक पृथ्वी पर बसे भले लोगों ने सुगठित राज्य निर्मित नहीं किये थे। सर्वप्रथम राज्य-व्यवस्था दैत्यों ने ही बनाई। सात्त्विक प्रवृत्ति के लोगों में तो—

न वै राज्यं न राजासीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।

धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्तिस्म परस्परम्॥

न कोई राज्य था न राजा। न दण्ड-विधान था न कोई दण्ड देने वाले। समस्त प्रजा धर्म के द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करती थी।

परन्तु हिरण्यकशिपु ने संगठन तैयार कर लिया था। उसके मित्र थे सेवक एवं सैनिक थे। उनकी उपस्थिति में भले लोगों के लिए भी संगठन बनाना आवश्यक हो गया। विष्णु ने अस्थायी संगठन तो उसकी नगरी में ही बना लिया परन्तु अस्थायी संगठन से काम चलता न देख ब्रह्मा से परामर्श किया।

महाराज पृथु

जनसंख्या में अपार वृद्धि हुई थी। साथ ही विस्तृत भू-भाग भी बस से निकल आया था और ब्रह्मा की सन्तति दूर-दूर तक फैल गई थी। जिस गति से प्रजा में वृद्धि हुई थी उसी गति से वेद को ब्रह्मा ने सिखा लिए वे प्रचारित नहीं हो सके। न ही सब में वेद-ज्ञान को समझने की शक्ति थी। इनके पूर्व-जन्मों के कर्मों के कारण उनकी प्रवृत्ति भी ऐसी थी कि वे धर्म-अधर्म नीति-अनीति कर्तव्य-अकर्तव्य गमनागमन वाच्यावाच्य भक्ष्याभक्ष्य तथा दोषादोष में भेदभाव नहीं कर सकते थे। भूमि भी स्वेच्छा से सब के भरण-पोषण के लिए पैदा नहीं करती थी। अतः बलशाली लोगों ने दल बना-बनाकर दूसरों को लूटना-पीटना आरम्भ कर दिया था।

सब देवता लोग (भले लोग) ब्रह्मा के पास पहुँचे। वहाँ सब ने अपनी अपनी कठिनाई का वर्णन किया तो ब्रह्मा ने एक नीति-शास्त्र का निर्माण कर दिया। वह नीति-शास्त्र "त्रिवर्ग शास्त्र" के नाम से विख्यात हुआ।

इस नीति-शास्त्र में एक राज्य निर्माण करने का आदेश भी था। उसमें एक अधिपति बनाने की सम्मति थी। उसका नाम राजा रखा गया। राज्य नियमों को दण्ड-विधान कहा गया और सब भले लोगों को कहा गया—

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतोविद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः। मनु ७-३

लोक में अराजकता होने से सब-कुछ बिगड़ जाने का भय है। सब की रक्षा के लिए परमात्मा की आज्ञा से राजा बनाओ।

और—

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः॥ मनु ७-१७

दण्ड-विधान ही राजा है। वही पुरुष है वही नेता है वही शासनकर्ता है और वही चारों आश्रमों का रक्षक है।

इस नीति-शास्त्र के बन जाने के पश्चात् भले लोग राजा की खोज करने लगे। एक विरजा नाम का व्यक्ति इस कार्य के लिए चयन किया गया। वह धर्मात्मा निष्काम भाव से जीवन व्यतीत करने वाला और तेजोमय था। परन्तु उस महानुभाव ने राजा होने की अनिच्छा प्रकट की। उसने संन्यास लेने का निश्चय कर लिया।

विरजा का एक पुत्र था कीर्तिमान। उससे कहा गया तो उसने भी

राज्य करने से इनकार कर दिया। वह भी मोक्ष-मार्ग का ही अवलम्बन करने वाला निकला।

कीर्तिमान के पुत्र कर्दम को राजा बनाने का निश्चय हुआ तो उसने भी स्वीकार नहीं किया। अतः कर्दम के पुत्र अनंग को राजा बनाया गया। अनंग प्रजा का संरक्षण करने में समर्थ साधु तथा दण्ड-नीति विद्या में निपुण हुआ।

इस प्रकार राज्य-परम्परा चल पड़ी। अनंग का पुत्र अतिबल था। उसने भी राज्य का विस्तार किया। परन्तु राज्य पाने पर वह विषय-लोलुप हो गया। इससे प्रजा असन्तुष्ट रहने लगी।

मृत्यु की एक मानसिक कन्या थी सुनीता। सुनीता का एक पुत्र था वेन। अतिबल के पश्चात् वेन को राज्यगद्दी पर बैठाया गया परन्तु राज्यगद्दी पर बैठते ही वह राग-द्वेष के वशीभूत प्रजाओं को दुःख देने लगा।

इससे ऋषि वर्ग वेन से रुष्ट हो गया और उन्होंने उसकी हत्या कर दी। वेन के दो पुत्र थे। शूद्र पत्नी से उत्पन्न पुत्र आयु में बड़ा था। उसने राजा बनाये जाने की मांग की परन्तु जब उसकी सूरत देखी तो वेदवादी महर्षियों ने उसको अस्वीकार कर दिया। उन्होंने उसे कहा 'निषीद' बैठ जाओ। इससे उसका नाम निषीद हो गया अर्थात् जो बैठ गया।

महर्षियों ने वेन का क्षत्रिय पत्नी से उत्पन्न पुत्र राजगद्दी पर बैठाया। वह राजा पृथु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पृथु को महर्षियों ने अपने समक्ष बुलाया और उससे राज्यारोहण की शपथ ली। ऋषि पहिले कहते थे और पृथु उस शपथ को दुहराता था। महर्षियों ने कहा—

नियतो यत्र धर्मो वै तमशङ्कः समाचर ॥१०३॥
प्रियाप्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु।
कामं क्रोधं च लोभं च मानं चोत्सृज्य दूरतः ॥१०४॥
यश्च धर्मात् प्रविचलेल्लोके कश्चन मानवः।
निग्राह्यस्ते स्वबाहुभ्यां शश्वद् धर्ममवेक्षता ॥१०५॥
प्रतिज्ञां चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत् ॥१०६॥
यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीतिव्यपाश्रयः।
तमशङ्कः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन ॥१०७॥
अदण्ड्या मे द्विजाश्चेति प्रतिजानीहि हे विभो।
लोकं च संकरात् कृत्स्नं त्रातास्मीति परंतप ॥१०८॥

महाभा० शां० अ० ५९

ऋषियों ने उससे वचन लिया—

जिस काम में धर्म की सिद्धि हो उसे निर्भय होकर करोगे।

प्रिय और अप्रिय का विचार छोड़कर काम क्रोध लोभ और मोह को दूर हटाकर समस्त प्राणियों के प्रति समभाव रखोगे।

जब कोई मनुष्य धर्म से विचलित हो उसे सनातन धर्म का विचार कर, बाहुबल से परास्त कर दण्ड दोगे।

मन वाणी और कर्म द्वारा वेद भगवान् की आज्ञा का पालन करोगे और उससे स्वच्छन्द नहीं होगे।

साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि तुम्हारे राज्य में ब्राह्मण आदरणीय होंगे तथा सम्पूर्ण जगत् को संकरता और वर्ण-संकरता से बचाओगे।"

पृथु ने यह शपथ ली और ऋषियों ने प्रसन्न हो उसको वेन का राजा स्वीकार किया। शुक्राचार्य पृथु के पुरोहित हुए और बालखिल्य एवं सरस्वती तटवर्ती महर्षि उसके मंत्री बने।

यह प्रसिद्ध है कि पृथु विष्णु से आठवीं पीढ़ी में था। पृथु प्रथम राजा था जिसके राज्य में अन्नादि उत्पन्न करने के लिए यत्न किया गया। पृथु ने भूमि को समतल कराया और उस पर कृषि करने का प्रबन्ध कराया। उससे पूर्व भूमि पर जो कुछ अनायास उत्पन्न होता था उसी से मनुष्य पेट भर लेते थे। फल फूल एवं कन्द इतनी बाहुल्यता में उत्पन्न होते थे कि किसी को प्रयत्न करने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती थी। भूमि उर्वरा थी एवं जन संख्या कम।

परन्तु समय व्यतीत होने के बाद जनसंख्या बढ़ी और भूमि की उपज सब का पेट भरने में अयोग्य हो गयी। तब यह आवश्यक हो गया कि भूमि में से भोज्य-पदार्थ उत्पन्न करने के लिए नियमित ढंग से प्रयत्न किया जाए।

पृथु के राज्य गद्दी पर बैठते ही पृथ्वी के लोग प्रसन्न हुए। ऐसा लिखा मिलता है कि पृथ्वी स्वयं (पृथ्वी-भर के लोग) महाराज पृथु के लिए रत्नों की भेंट लेकर आयी। भगवान कुबेर भी स्वर्ण की भेंट लेकर उपस्थित हुआ। मेरु पर्वत (वहाँ की प्रजा) भी उसके पास बहुत बड़ी राशि में स्वर्ण की भेंट लाये। इस सब धन से पृथु की सेवा में रथ घोड़े एवं करोड़ों मनुष्य आ उपस्थित हुए।

पृथु के राज्य का प्रबन्ध इतना अच्छा था कि—

न जरा न च दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा ॥१२१॥

सरीसृपेभ्यः स्तेनेभ्यो न चान्योन्यात् कदाचन ।
भयमुत्पद्यते तत्र तस्य राज्ञोऽभिरक्षणात् ॥१२३॥

म० भा० शा० प० ५९

पृथु के राज्य में किसी को बुढ़ापा नहीं आता था। वहाँ दुर्भिक्ष तथा आधि-व्याधि का कष्ट नहीं था। राज्य की ओर से रक्षा समुचित थी। यहाँ कभी किसी को साँपों, चोरों तथा आपस के लोगों से भय नहीं होता था।

तेनेयं पृथिवी दुग्धा सस्यानि दश सप्त च ॥१२४॥

राजा ने पृथ्वी पर सत्रह प्रकार के धान्य का दोहन (उत्पादन) किया।

ब्रह्मा के नियम शास्त्र का पृथु पंडित था और उसी के अनुसार वह प्रजापालन कर रहा था।

पृथु के राज्य में धर्म के द्वारा श्री देवी से अर्थ की उत्पत्ति हुई और उसमें धर्म, अर्थ और श्री तीनों ही राज्य में प्रतिष्ठित हुए।

भारतीय परम्परा में यह बात मानी गयी है कि असुर तथा दैत्य लोग अपने पूर्व जन्म के कर्मों से उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी ये असुर देवताओं के घर भी उत्पन्न हो जाते हैं और कभी असुरों के घर देवता भी।

कश्यप का लड़का हिरण्यकशिपु हुआ और हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद। इसी प्रकार वेन की सन्तान पृथु हुई। यह प्रथम दैवी सम्पत्ति वाला राजा हुआ था।

यह महाभारत में लिखा है कि पृथु विष्णु की आठवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुआ था। विष्णु को भारतीय परम्परा में भगवान् का स्वरूप ही माना जाता है। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि जैसा ब्रह्मा के विषय में भ्रम होता रहता है वैसा ही देवी देवताओं के विषय में भी है। उपनिषद् में लिखा है 'त्रिविधं ब्रह्म'। अर्थात् तीन प्रकार का ब्रह्म है। एक ब्रह्म सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, जगदाधार परमात्मा को कहते हैं। दूसरा अव्यक्त प्रकृति का नाम ब्रह्म है। तीसरा ब्रह्म आत्मा का नाम है। ऊपर दिये श्लोकों में से १ ६ में ब्रह्म शब्द वेद के लिए प्रयोग किया गया है। जहाँ-जहाँ जिस अर्थ का अभिप्राय हो वैसा ही वहाँ समझ लिया जाता है। इसी प्रकार देव तीन प्रकार के हैं। एक तो प्राकृतिक शक्तियों को देवता मानते हैं जैसे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र देवता कहलाते हैं। दूसरे पुण्यात्मा आत्माओं को भी देवता के नाम से स्मरण किया जाता है। यह माना जाता है कि पंच-भौतिक शरीर से मुक्त होकर वे अन्तरिक्ष में स्थित स्वर्ग लोक में रहते हैं। तीसरे अदिति के बारह पुत्र और उनकी सन्तान को

सतयुग का अन्त

अमृत मंथन

यहाँ यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि मन्वन्तर अथवा चतुर्युगी इत्यादि केवल काल के विभाग हैं। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि किसी काल की विशेषता के कारण लोग धर्मात्मा अथवा पापी होते हैं।

यह किंवदन्ती है कि सतयुग में धर्म का राज्य था और त्रेता में धर्म की एक टाँग टूट गयी थी तथा कलयुग में धर्म एक टाँग पर खड़ा है। इस बात का पौराणिक कथा साहित्य अथवा इतिहास में प्रमाण नहीं मिलता। कोई काल ऐसा नहीं मिलता जिस काल में आसुरी सम्पत्ति के लोग निःशेष हो गये हों। आदि सृष्टि की तीन कथायें हमने ऊपर लिखी हैं। उनसे भी यही प्रकट होता है कि सुर एवं असुर दोनों आदि सृष्टि के साथ-साथ चलते आ रहे हैं।

यही बात सतयुग की थी। मनु की अपनी सन्तान में से भी कई ऐसे थे जो आदर्श सतयुगी जीव नहीं कहे जा सकते थे।

> अन्यास्तु मनोः पुत्रास्तत्राऽन्येऽभवन् क्षितौ ॥१७॥
> अन्योन्यभेदात् ते सर्वे विनेशुरिति न श्रुतम् ॥१८॥
>
> म० भा० आ० अध्याय ७५

अर्थात् मनु के पचास और पुत्र थे परन्तु वे परस्पर लड़ते-लड़ते विनाश को प्राप्त हुए।

मनु के पश्चात् सृष्टि का विस्तार हो चुका था। देश एवं कर्मों के विचार से भी जातियाँ बन चुकी थीं। उन जातियों में परस्पर स्पर्धा भी होने लगी थी

देवलोक (तिब्बत) में रहती थी उनको भी देवता कहते थे।

अब यह कहा जाये कि पृथु विष्णु की आठवीं पीढ़ी में था तो विष्णु से अभिप्राय है रति का पुत्र। फिर लिखा है कि जब वह राज्य करने लगा था तो—

> तपसा भगवान् विष्णुः आविवेश च भूमिपम्।

अर्थात् राजा पृथु की तपस्या से प्रसन्न होकर साक्षात् भगवान् विष्णु राजा में आकर बैठ गये।

यहाँ विष्णु के अर्थ परमात्मा से हैं। यह बात निर्विवाद है कि सब श्रेष्ठ तपस्वी मनुष्यों में परमात्मा का विशेष रूप से वास रहता है। कभी-कभी भगवान् उन मनुष्य द्वारा अपना कार्य सिद्ध कर उसमें से चला भी जाता है।

मुख्य रूप से दो स्वभाव के लोग थे। एक आसुरी और दूसरे दैवी। दोनों में भी देश एवं वंश के भेद से जातियाँ बन गयी थीं। इस पर भी जब आसुरी और दैवी सभ्यता वालों में युद्ध होते तो स्वभाववश अपने-अपने वर्ग में लोग सम्मिलित हो जाते थे।

इस प्रकार के संग्रामों को देवासुर संग्राम कहते थे। ऐसे कई संग्राम हुए हैं। इनमें से एक संग्राम अमृत-मंथन के पश्चात् हुआ था।

प्रायः असुर अधिक सन्तान उत्पन्न करते थे। पुरुष कई-कई स्त्रियाँ रख लेते थे और उनसे सन्तान पैदा करते थे। इसके अतिरिक्त असुर बड़भागी होने से भोग-विलास में अधिक रत रहते थे। उन्होंने बड़े-बड़े विशाल नगर बसा लिए थे और उनमें सब प्रकार की भोग-सामग्री उपलब्ध की जाती थी। ऐसे उदाहरण कई स्थलों पर मिलते हैं जब देवता देवताओं को छोड़ असुरों में सम्मिलित हो जाते थे। उनको असुर नगरों में शारीरिक सुख-सुविधा की उपलब्धि अधिक मिल सकती थी।

असुरों के नगर और देश जन एवं धन से परिपूर्ण थे। वे अपनी बढ़ रही जनसंख्या के लिए सदा स्थान की खोज में रहते थे। इसी स्थान की खोज के कारण देवताओं के देशों पर आक्रमण होते थे और युद्ध हो जाते थे। अतः एक बार देवता इन निरन्तर होने वाले संग्रामों से असंतुष्ट इनसे छुटकारा पाने का उपाय विचार करने के लिए सुमेरु पर्वत पर एकत्रित हुए।

सुमेरु पर्वत-शृंखला देवलोक को चारों ओर से घेरे हुए थी। इस पर्वत शृंखला के कई शिखर थे। इनमें से एक शिखर पर यह सम्मेलन रखा गया और देवताओं के सब प्रसिद्ध नेतागण वहाँ उपस्थित थे।

इस सम्मेलन का उद्देश्य था कि कैसे असुरों से मुक्ति प्राप्त की जाय? इसमें ब्रह्मा का कथन था कि मरने से असुर समाप्त नहीं होंगे न ही किसी अन्य उपाय से इनको निर्मूल किया जा सकता है। इनको कम करने का एक ही उपाय है कि धर्म कर्म का प्रचार किया जावे। इस जगत् में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में धर्म का इतना विस्तार हो कि पापमयी आत्माएँ कम हो जावें। तब ही आसुरी सभ्यता के लोग कम हो सकते हैं तथा संसार में सभी जीवों का कष्ट कम हो सकता है। यह काम इतना विशाल है कि इसको करते हुए भी कष्ट से मुक्ति प्राप्त करने का एक दूसरा उपाय करना होगा। वह उपाय है देवताओं की संख्या में वृद्धि की जाय। इस वृद्धि के लिए देवताओं को युद्धों और अन्यथा मृत्यु से बचाया जाय। इसके लिए देवताओं को अमृत का पान करना चाहिए।

अमृत समुद्र में से निकल सकता है। अतः इसके लिए समुद्र का मंथन करना होगा।

ब्रह्मा का यह उपाय सब को पसन्द आया। अतः इसके लिए प्रस्ताव किया गया और यत्न प्रारम्भ किया गया।

मंदराचल पर्वत (अवश्य कोई ऐसा यन्त्र होगा जो मन्थर गति से चलता होगा तथा समुद्र को मंथन करता होगा) को उपलब्ध किया गया। इस मन्दराचल को समुद्र तक ले जाने के लिए अनन्त नाग (कोई अद्वितीय इन्जनीयर रहा होगा) की सेवाएँ उपलब्ध की गयीं। मंदराचल के घुमाने के लिए वासुकी नाग (एक अन्य इन्जनीयर) को कहा गया। मन्दराचल को टिकाया गया एक कच्छ-राज की पीठ पर (यह भी किसी प्रकार का यन्त्र रहा होगा)।

मुख्यतः यह प्रयास देवताओं का था परन्तु इसमें दैत्य भी आकर सम्मिलित हो गये। उन्होंने अपनी सेवाएँ देते समय कुछ माँगा नहीं था। वे इस आयोजन के वैचित्र्य को देखने के लिए आये थे और स्वेच्छा से सहयोग देने लगे थे।

परन्तु जब मन्थन प्रारम्भ हुआ और उसमें से अनेकानेक प्रकार की अद्भुत वस्तुएँ निकलने लगीं तो दैत्यों के मन में भी लोभ आ गया। अमृत के निकलने पर जब देवताओं ने हर्ष प्रकट किया तो दैत्य भी अमृत में भाग पाने की माँग करने लगे।

देवताओं का निश्चय था कि अमृत तो दैत्यों में नहीं बाँटा जायगा। इसके लिए उनको समझाया गया कि यह उनको नहीं मिल सकता। इस पर दैत्य लड़ने-मरने को तैयार हो गये। तब विष्णु ने कहा कि युद्ध तो होगा परन्तु इससे पूर्व अमृत पान कर लेना आवश्यक है।

दैत्य अमृत के घट पर झपटना चाहते थे और छीन कर अपना अपने भाग लेने के लिए हठ कर रहे थे। इस समय विष्णु ने एक अति सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर वहाँ पदार्पण किया। देवता असुर दोनों उस पर मुग्ध हो उसके हाव-भावों को देखने लगे तथा अमृत की बात भूल गये।

इस पर मोहिनी स्वरूप विष्णु ने अमृत उठा लिया और दोनों पक्षों को कहा कि अपनी अपनी पंक्तियों में बैठ जाओ मैं यह बाँट देती हूँ। देवता और दानव पृथक्-पृथक् पंक्तियों में बैठ गये और मोहिनी ने अमृत देवताओं में बाँटना प्रारम्भ कर दिया। जब असुर उसकी माँग करते तो मोहिनी मद भरे नयनों से उन पर कटाक्ष करती वे शान्त हो जाते और मोहिनी देवताओं को अमृत बाँटती रहती।

दैत्यों में राहु नाम का एक चतुर दैत्य था। वह उस स्त्री की छलना

जान गया और जब अन्य दैत्य मोहिनी के हाव-भाव और कटाक्षों पर मुग्ध हो रहे थे वह अपनी पंक्ति से उठा और देवताओं की पंक्ति में जा बैठा। उसके सामने भी अमृत परस दिया गया और उसने तुरन्त उठाकर मुख में डाल लिया। परन्तु उसी समय सूर्य एवं चन्द्र उसको पहिचान गये। उन्होंने विष्णु को बताया और विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से राहू का सिर छेदन कर दिया। एक ग्रास अमृत का गले के नीचे उतर गया था। इससे राहू अभी भी देवताओं को कष्ट पहुँचाने के लिए जीवित है।

इस पर तो दैत्य देवताओं का छल जान गये जिससे युद्ध हो गया। मोहिनी ने सब अमृत देवताओं को पिला दिया और देवता अमृत पानकर युद्ध के लिए तैयार हो गये।

यह दैवासुर संग्राम अति भयंकर हुआ। विष्णु को अपना सुदर्शन चक्र चलाना पड़ा। इस युद्ध में पहली बार नरों ने भी देवताओं की ओर से युद्ध किया। नर का अर्थ मानव सन्तान से था। ये नर नाम के मानव विष्णु के सहयोगी थे। जब उनको मालूम हुआ कि देवताओं और असुरों में एक अति भयंकर युद्ध हो रहा है तो देवताओं की सहायता में नर भी अपने दिव्य धनुष लेकर लड़ने के लिए आ जुटे। विष्णु ने भी अपना चक्र निकाला। इस सुदर्शन चक्र के विषय में लिखा है

तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं
भयंकरं करिकरबाहुरच्युतः।
मुमोच वै प्रबलवदुग्रवेगवान्
महाप्रभं परनगरावदारणम्॥

म भा आदि प १९—२१

अर्थात् वहाँ आया हुआ वह भयंकर चक्र प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित हो रहा था। उसमें शत्रुओं के बड़े-बड़े नगरों को ध्वंस कर डालने की शक्ति थी। विष्णु ने जिसकी बाँहें हाथी की सूँड के समान बड़ी एवं बलशाली थी उस चक्र को असुरों पर चला दिया।

और युद्ध के पश्चात् दैत्यों असुरों एवं दानवों की पराजय हुई और देवताओं की विजय हुई।

यह अमृत के लिए दैवासुर संग्राम कहा जाता है।

अमृत क्या था? समुद्र में से कैसे निकला ऐरावत तथा कल्पवृक्ष इत्यादि अनेक बातें हैं जो इस कथा में समझ में नहीं आतीं। इस पर भी हमने इस कथा को देने का साहस किया है। इसका कारण है।

अमृत कुछ भी रहा हो। समुद्र के और समुद्र के मंथन के कुछ भी अर्थ हों। उसकी व्याख्या को छोड़कर इस कथा में कुछ अति गम्भीर राजनीतिक तथ्य हैं, जिन पर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। एक यह कि असुरों की समाप्ति नहीं हो सकती। युद्ध इनको दबाकर रखने में ही समर्थ हो सकते हैं। अब भी ये अवसर पायेंगे सिर उठायेंगे तथा देवी-सम्पदा वालों को कष्ट देंगे। असुरों का स्रोत इनके पापकर्म ही हैं। युद्ध देवताओं के त्राण के लिए बहुत उपयोगी उपाय होता हुआ भी स्थायी उपाय नहीं है। समय-कुसमय पर ही यह प्रयोग में लाया जा सकता है। स्थायी उपाय है देवताओं को अमृत पिलाकर चिरंजीवी करना? वह अमृत क्या था यह तो पता चला नहीं परन्तु एक अमृत का ज्ञान भारतीय परम्परा में आज तक विद्यमान है। वह है यह विचार —

> न जायते म्रियते वा कदाचिन्
>
> नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
>
> अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
>
> न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ भ गी २।२

आत्मा किसी काल में भी न जन्म लेती है न मरती है। न ही यह होकर न होने वाली है। कारण यह है कि यह अजन्मा है नित्य है और शाश्वत एवं सनातन है। शरीर के नाश होने पर भी नाश नहीं होती।

देवताओं ने इस अमृत का पान किया हुआ था। समुद्र-मंथन से निकला हुआ वह अमृत क्या करता है? यह तो पता नहीं परन्तु वेद और उपनिषद् के मंथन से यह अमृत तो कार्य करता देखा जाता है।

एक अन्य राजनीतिक तथ्य भी इस कथा में दृष्टिगोचर होता है। वह है आयुधों के विषय में। युद्ध में जीत उसकी होती है जो बढ़िया-से-बढ़िया अस्त्रशस्त्र रखता है। देवताओं की संख्या दानवों से कम थी परन्तु जीत उनकी हुई थी जिनके पास शस्त्रास्त्र दिव्य थे। नर भी इस संग्राम में सम्मिलित होने आये थे तो अपना दिव्य धनुष-बाण लेकर। देवताओं ने सब प्रकार के दिव्यास्त्रों का निर्माण अपने हाथों में रखा हुआ था। कभी कोई असुर सन्तान भी जब तपस्या (अपने तपमय जीवन) से देवताओं को विश्वास दिला देता था कि उसने आसुरी स्वभाव छोड़ दिये हैं तो वह एक आध दिव्य अस्त्र पा जाता था परन्तु सबसे बड़ा दिव्यास्त्र सुदर्शन चक्र उन्होंने कभी किसी के हाथ में नहीं दिया।

ययाति

नहुष और ययाति दो व्यक्ति हैं। एक चन्द्र-वंश में दूसरे सूर्य वंश में। सूर्य-वंशीय नहुष और ययाति ऐतिहासिक पुरुष नहीं हुए। चन्द्र-वंशीय नहुष और ययाति तो जब तक भारतीय परम्पराएँ स्मरण रहेंगी तब तक इनका नाम रहेगा। नहुष पहिली मानव (मनु की) सन्तान थी जिसने देवलोक पर राज्य किया था जिसने इन्द्र को पराजित कर बन्दी बनाया था और जिसने ऋषियों से भी कर ग्रहण किया था।

यह ययाति जिसकी हम कथा लिख रहे हैं उसी नहुष का पुत्र था जिसने इन्द्र को पराजित कर बन्दी बनाया था। नहुष के छः पुत्र थे यति ययाति संयाति आयाति एवं ध्रुव। यति योग-साधनाकर ब्रह्मभूत मुनि हो गये थे। इस कारण ययाति को राज्य मिला।

ययाति अति पराक्रमी सम्राट् थे। उन्होंने बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया था। वे कभी किसी से परास्त नहीं हुए।

ययाति अभी युवा ही थे कि दानवों के पुरोहित शुक्राचार्य की कन्या से विवाह के लिये निर्वाचित हो गये। दोनों का समागम एक विचित्र घटना से हुआ था।

शुक्राचार्य दानवराज वृषपर्वा का राजपुरोहित था और उसकी राजधानी में रहता था। शुक्राचार्य की लड़की देवयानी वृषपर्वा की लड़की शर्मिष्ठा की सखी थी। दोनों परस्पर हेल-मेल से रहती थी। देवयानी के मन में यह अभिमान था कि उसके पिता राजा के पुरोहित हैं और वे संजीवनी विद्या को जानते हैं, जिसके आश्रय दानव अपना अस्तित्व रखे हुए हैं। जब-जब भी दानव और देवताओं में युद्ध हो जाता था और दानव युद्ध में मारे जाते तो महर्षि उनके मृतकों को पुनः जीवित कर देते थे। वृषपर्वा की लड़की शर्मिष्ठा को यह अभिमान था कि वह राजा की लड़की है और देवयानी का पिता एक निर्धन ब्राह्मण है जो उसके पिता के आश्रय पलता है। इस पर भी दोनों में सखीपन था।

इन्द्र जानता था कि दैत्य-दानवों को महर्षि शुक्राचार्य की सहायता होने से वे अजेय हो रहे हैं। इससे वह चाहता था कि आचार्यजी दानव-राज से लड़ पड़ें तो वे पुनः देवताओं में ले लिए जायें। एक दिन इन्द्र को इनमें वैमनस्य कराने का अवसर मिल गया। वह वन में घूम रहा था कि उसको शर्मिष्ठा अपनी सखियों के साथ वन में जल-विहार करती दिखाई पड़ी। उन्होंने

अपने वस्त्र पुष्करिणी के तट पर उतारे हुए थे और जल में खेल-कूद कर रही थीं। इन्द्र ने देखा कि देवयानी के वस्त्र शर्मिष्ठा के वस्त्रों के समीप रखे हैं। अत: उसने एक के कपड़े उठाकर दूसरों के वस्त्रों से बदल दिये।

सखियाँ स्नान कर निकलीं तो अँधेरा हो चुका था। अत: दोनों ने अपने स्थान पर रखे वस्त्रों को उठाया और अँधेरे में बिना पहिचाने पहिनने लगीं। शर्मिष्ठा के वस्त्र रेशमी एवं अलंकृत थे। अत: जब वह देवयानी के साधारण वस्त्र पहिनने लगी तो जान गयी कि वे उसके नहीं हैं। इस समय तक देवयानी वस्त्र पहिन चुकी थी। जब शर्मिष्ठा ने देखा कि उसके वस्त्र देवयानी पहिन चुकी है तो उसने कहा 'तुमको दिखाई नहीं देता कि इतने मूल्यवान वस्त्र तुम जैसी निर्धन ब्राह्मण लड़की के पास नहीं हो सकते?' देवयानी ने भूल स्वीकार कर क्षमा माँग ली परन्तु शर्मिष्ठा उसे खरी-खोटी सुनाती रही। इस पर देवयानी को भी क्रोध चढ़ आया। उसने भी उसको सुनायी। उसने कहा 'मेरे पिता निर्धन अवश्य हैं परन्तु तुम दानवों के वे प्राण हैं। यदि वे तुम्हारे पिता का साथ छोड़ दें तो तुम लोग एक क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते।'

इस पर विवाद बढ़ गया और क्रोध में शर्मिष्ठा देवयानी को वन के एक कुएँ में धकेल अपने प्रासाद को लौट आयी। देवयानी कुएँ से निकल नहीं सकी और वहीं पड़ी कुपित होती रही।

अकस्मात् राजा ययाति शिकार खेलने वन में आये और कुएँ पर जल पीने पहुँच गये। जब वे जल निकालने लगे तो देवयानी ने आवाज़ दे दी 'मुझको निकाल दो।' ययाति ने उसका हाथ पकड़कर कुएँ से बाहर खेंचकर निकाल दिया। तत्पश्चात् दोनों का परिचय हुआ तो देवयानी ने कहा 'आपने मेरा हाथ पकड़ा है इस कारण मैंने आपको वर लिया है।'

ययाति ने अँधेरे में उसकी रूप-राशि नहीं देखी थी। अत: उसने यह कहकर छुटकारा पा लिया कि तुम्हारे पिता मेरे गुरु हैं अत: मैं गुरु कन्या से विवाह नहीं कर सकता। इतना कह वह अपने मार्ग पर चला गया।

देवयानी घर पहुँची तो उसने अपने पिता शुक्राचार्यजी को शर्मिष्ठा की दुष्टता सुना दी। इस पर शुक्राचार्य क्रुद्ध हो वृषपर्वा के पास पहुँचे और कह दिया कि वे उसका देश छोड़ इन्द्र के राज्य में जा रहे हैं। वृषपर्वा इसको पूर्ण क्षति के लिए विपत्ति मान आचार्यजी की मिन्नत-समाजत करने लगा और अन्त में इस बात पर समझौता हुआ कि शर्मिष्ठा देवयानी की दासी बन कर रहे तो आचार्यजी उसके नगर में रह सकते हैं। विवश वृषपर्वा को मानना पड़ा।

इसके कई वर्ष पश्चात् देवयानी अपनी दासी शर्मिष्ठा के साथ वन-विहार कर रही थी कि ययाति ने उनको देख लिया। इस बार उसने देवयानी को दिन के प्रकाश में देखा तो उस पर मुग्ध हो गया।

इस बार परिचय हुआ तो देवयानी ने कुएँ वाली घटना का स्मरण करा दिया कि उसने तो उसको वर रखा है तथा वह ब्राह्मण कन्या होने से अब किसी अन्य से विवाह नहीं कर सकती। इस बार ययाति शुक्राचार्यजी के पास पहुँचा और देवयानी को माँग लिया। शुक्राचार्य ने ययाति से अपनी कन्या विवाहने से पहिले यह वचन लिया कि वह शर्मिष्ठा को अपनी पत्नी नहीं बनायेगा। इस वचन के मिलने पर उसने विवाह कर दिया।

ययाति देवयानी को उसकी सब दासियों सहित अपने राज्य प्रतिष्ठानपुरी में ले गया। वहाँ राजा अपनी रानी देवयानी के साथ सुखपूर्वक रहता रहा। देवयानी के एक पुत्र उत्पन्न हो चुका था कि ययाति की दृष्टि शर्मिष्ठा पर जा पड़ी। उसको वह देवयानी से भी अधिक सुन्दर प्रतीत हुई। इस प्रकार रानी से चोरी-चोरी ययाति का सम्बन्ध शर्मिष्ठा से भी बन गया। शर्मिष्ठा के भी लड़का हुआ तो देवयानी ने उससे पूछ लिया कि यह लड़का किसका है। शर्मिष्ठा ने यह कहा कि एक तपस्वी का है जो वन में रहता है।

कई वर्ष व्यतीत हो गये। देवयानी के दो पुत्र हुए तो शर्मिष्ठा के तीन हो गये। रहस्य खुला तो देवयानी क्रोध से भरी हुई अपने पिता के पास जा पहुँची और अपने पति के वचन भंग की बात बताने लगी।

शुक्राचार्य को भी क्रोध आ गया और उन्होंने ययाति को शाप दे दिया कि वह समय से पूर्व ही वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाए। ययाति वृद्ध हो गया। जब उसको पता चला कि यह आचार्यजी के शाप के कारण है तो वह भी वहाँ पहुँचा और आचार्यजी की मिन्नत-समाजत करने लगा। ययाति की एक युक्ति ने आचार्य पर प्रभाव डाला। वह यह कि अभी आचार्यजी की पुत्री भी युवा है और उसने भी यौवन-भोग नहीं किया। इस युक्ति पर आचार्यजी ने कहा कि राजा किसी युवक से यौवन उधार ले सकता है और जब वह सन्तुष्ट हो जावे तो यौवन वापिस भी कर सकता है।

ययाति इस वर से प्रसन्न घर पहुँचा और अपने पुत्रों से यौवन उधार माँगने लगा। सबने यौवन देने से इनकार कर दिया। केवल शर्मिष्ठा के पुत्र ने ही यौवन को बुढ़ापे से बदलना स्वीकार किया। राजा ने यह मान लिया और पुनः यौवन पा भोग-विलास में लिप्त हो गया। देवयानी और उसके पुत्रों से उसका झगड़ा हो गया था और उसने उनको घर से निकाल दिया।

महाराज ने यह नवीन यौवन पा खूब रास-विलास की। धर्म-कार्य यज्ञ, योगादि कार्य किये और प्रजा का हितसाधन भी किया। साथ ही वे विश्वाची अप्सरा से भोग-विलास करते रहे।

सहस्रों (अनेकों) वर्षों तक वासना में लिप्त रह कर ययाति की समझ में आया कि उसकी वासना-तृप्ति तो होती ही नहीं थी। इस प्रकार ऊब कर उसने पुत्र को उसका यौवन वापिस कर दिया और स्वयं वन को चला गया।

वन में ययाति घोर तपस्या में लीन रहा और फिर अपनी तपस्या के बल पर वह इन्द्र के राज्य स्वर्ग में स्थान पा गया। उसके जीवन भर के पुण्य कार्य इस स्थान को पाने में सहायक हो गये।

परन्तु एक दिन वह अपनी इस सफलता पर जो अन्य मानवों को कई जन्मों में भी प्राप्त नहीं होती अभिमान करने लगा। इस पर इन्द्र क्रुद्ध हो गया और उसने उसको स्वर्ग भूमि से निकालने की आज्ञा दे दी। उसको पुनः मानव-समाज में भेज दिया गया।

गंगा

भारतीय साहित्य में गंगा दो रूपों में मिली मिलती है। गिरिराज

भोगों से तृप्ति भोग करने से नहीं होती प्रत्युत उनके त्याग से होती है। अभिमानी का सिर नीचा ही होता है। ये दोनों ऐतिहासिक तथ्य हैं। भिन्न-भिन्न कालों एवं अवसरों पर इनका अनुकरण होता है। इस पर भी मनुष्य के मन में जब विकार उत्पन्न होते हैं तो उनका विरोध करना अथवा उनके प्रवाह को रोक सकना विरले ही धीर-संयमी मनुष्य कर सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में ययाति का काल शान्तिमय था। देश पर किसी बाहरी राज्य का आक्रमण नहीं हुआ था न ही देश में धर्म का ह्रास हुआ था। इस पर भी काम क्रोध लोभ मोह और अहंकार मन के विकार अपना काम करते थे। इतिहासकार ने वर्णन किया है कि बल सम्पन्न अधिकार पदवी मान-प्रतिष्ठा सब कुछ पाने पर भी और संस्कारों की शुद्धता से धर्म में निष्ठा होने पर भी मनुष्य पतन को प्राप्त हो सकता है।

अब इन विकारों से जनसाधारण को क्या और समाज के उच्च स्तर पर विराजमान राजा-महाराजाओं को क्या सब को सावधान रहने की आवश्यकता रहती है।

हिमवान की कन्या और शिवजी की पत्नी की बहिन के रूप में तथा हिमालय से निकलने वाली नदी के रूप में। ऐसा प्रतीत होता है कि नदी के रूप में गंगा की तो एक बहुत ही प्राचीन कथा है। इस कथा का एक अंश हम पिछले अध्याय में लिख चुके हैं।

गंगा एक नदी थी जो हिमालय के उत्तर से निकलती थी और उसका प्रवाह दक्षिण की ओर था। देवता लोग अपने देश में जल का अभाव होने से उस नदी को अपने देश (देवलोक) में ले जाना चाहते थे। हिमालय के राजा की अनुमति से वे पर्वत काटकर बहुत ऊँचे पर से ही उसे अपने देश की ओर ले गये थे। वहाँ गंगा की तीन धाराएँ हो गयीं। एक स्वर्ग लोक को पुष्ट करती थी। अर्थात् ऊँचे पठार पर जल सिंचन करती थी। दूसरी धारा देवलोक में बहने लगी और देवनदी के नाम से विख्यात हुई। तीसरी भूमि के अन्दर ऐसे धंस गयी (जैसे आजकल सरस्वती धंस गयी है) और रसातल में पहुँच गयी। इससे इसका नाम त्रिपथगा हो गया था। परन्तु गंगा की कहानी यहीं समाप्त नहीं हुई। यह पुन भारत में लायी गयी। किस प्रकार लायी गई इसका विवरण इस प्रकार है।

इक्ष्वाकु वंश में सगर नाम के एक राजा हुए हैं। उन्होंने हिमालय एवं विन्ध्याचल के मध्य की भूमि पर अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था।

सगर की दो महारानियाँ थीं। एक का नाम था केशिनी और दूसरी का नाम था सुमति। चिरकाल तक दोनों के घर सन्तान नहीं हुई। अपने इस अभाव की पूर्ति के लिए महाराज सगर अपनी पत्नियों सहित महर्षि भृगु की सेवा में पहुँचे और तपस्या करने लगे। महर्षि ने प्रसन्न हो वर दे दिया और कहा नृपश्रेष्ठ तुम्हारे घर में बहुत से पुत्र होंगे और तुम्हारी कीर्ति इस संसार में फैलेगी। तुम्हारी एक पत्नी के एक पुत्र होगा जो अपने वंश की परम्परा को चलायेगा। दूसरी पत्नी के साठ हजार (बहुत बड़ी संख्या में) पुत्र होंगे।

जब पूछा गया कि किसके घर कितने पुत्र होंगे तो महर्षि ने रानियों से ही पूछ लिया कि वे क्या चाहती हैं? इस पर केशिनी ने एक पुत्र माँग लिया। सुमति ने साठ हजार (बहुत बड़ी संख्या में) पुत्रों की माँ बनना स्वीकार कर लिया।

दोनों की इच्छाएँ पूर्ण हुयीं। केशिनी के पुत्र का नाम असमंज हुआ। बड़ा होकर असमंज बहुत दुष्ट निकला। वह प्रजा को भारी कष्ट पहुँचाने लगा तो महाराज ने असमंज को नगर से बाहर निकाल दिया। असमंज अपना एक पुत्र वहाँ छोड़ गया। उसके पुत्र का नाम अंशुमान था।

जब अंशुमान भी बड़ा हो गया तो राजा ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। सगर ने अश्व छोड़ा। उस अश्व की रक्षा के लिए अंशुमान को नियुक्त किया गया।

इन्द्र ने यज्ञ के अश्व का हरण कर लिया और इसको पाताल देश में महर्षि कपिल के आश्रम में छोड़ दिया। इन्द्र सगर की बढ़ रही शक्ति को क्षीण करना चाहता था। अश्व चुराते समय इन्द्र ने मायावी भेष बनाया हुआ था। इससे उसके इस कार्य को कोई न जान सका।

अश्व के चोरी हो जाने को भारी अपशकुन माना गया और सगर ने अश्व की खोज करने के लिए अपने साठ हजार पुत्रों को नियुक्त किया। वे युवक जब अश्व ढूंढने निकले तो भूतल के प्राणियों को कष्ट पहुँचाने लगे। इससे पृथ्वी पर बसे हुए सब प्राणी इनके अत्याचार से आर्तनाद करने लगे।

अश्व कहीं मिला नहीं। इस कार्य में कई वर्ष लग गए। भूमि पर अश्व को न पा उन्होंने रसातल में भी खोज की। अन्त में वे पाताल देश में पहुँचे।

सगर के पुत्रों ने यहाँ भी प्रजा को कष्ट पहुँचा-पहुँचाकर अश्व ढूंढना जारी रखा। वे एक-एक प्राणी को पकड़ते और उससे अश्व के विषय में पूछते थे। जब उत्तर असन्तोषजनक होता तो उसकी हत्या कर देते थे। उसकी धन-सम्पत्ति लूट लेते एवं उसके स्त्री वर्ग को अपमानित करते थे। लोग ब्रह्मा जी से शिकायत करने जाते तो ब्रह्मा जी अपनी दूरदर्शिता से यह भविष्यवाणी कर देते कि इनका नाश अवश्यम्भावी है।

ज्यों-ज्यों यज्ञ में देरी होती जाती थी महाराज सगर और उसके पुत्रों का क्रोध बढ़ता जाता था। जिससे प्रजा पर अत्याचार की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। इस कुद्धावस्था में सगर के पुत्रों ने अश्व को महर्षि कपिल के आश्रम में स्वच्छन्द विचरते देखा। महर्षि अपनी खोज साधना में लगे थे। उनको यह विदित भी न था कि उनकी यज्ञशाला में कोई नवीन अश्व आया हुआ है।

सगर पुत्रों ने महर्षि को चोर समझा और उनका अपमान करने दौड़े। इस पर महर्षि को क्रोध चढ़ आया और उन्होंने शाप दे उनको भस्म कर डाला। सगर के इन पुत्रों के भस्म हो जाने पर उनकी अस्थियों का ढेर लग गया।

अपने पुत्रों का समाचार न पा सगर ने अपने पौते अंशुमान को भेजा। अंशुमान ढूंढता-ढूंढता कपिल आश्रम में अस्थियों का ढेर देख समझ गया। उसने महर्षि की चरण वन्दना की और विनम्र वाणी से उन अस्थियों का रहस्य पूछा। कपिल मुनि ने जब उसे बताया तो उसने अपना परिचय दे

-कर अस्थियों को ले जाने की स्वीकृति माँगी । अश्व भी माँगा । अश्व के विषय में मुनि ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की । परन्तु अश्व तो वहीं था । इस पर मुनिवर को अपने किए पर पश्चाताप लगा । उन्होंने उनकी सद्गति का उपाय बता दिया । मुनिजी का कथन था कि स्वर्गलोक में रहने वाली गंगा को आर्यावर्त लाया जावे और उस गंगा में इनकी अस्थियों का विसर्जन किया जावे तब इनकी आत्माएँ मुक्त हो सकेंगी । इन युवकों ने पृथ्वी भर के जीवों पर घोर अत्याचार किए हैं । अतः इन सबका प्रायश्चित्त ही यह है कि जन-जन का कल्याण करने वाली गंगा को उनके हित साधन के लिए यहाँ ले आया जाय ।

अंशुमान अश्व लाया और यज्ञ सम्पूर्ण हुआ । अब महाराज सगर को अपने पुत्रों की आत्माओं के कल्याण की चिन्ता सताने लगी । गंगाजी का हिमालय के दक्षिण में लाने का कोई उपाय नहीं मिला । अनेक वर्ष तक सगर ने राज्य किया और अपना मनोरथ सिद्ध करने का उपाय किए बिना स्वर्ग सिधार गया ।

सगर के पश्चात् अंशुमान ने भी अपने पूर्वजों की आत्माओं को शांति दिलाने के लिये घोर तपस्या की । अंशुमान के पश्चात् महाराज दलीप भी इसी चिन्ता में ग्रस्त तपस्या करते रहे । गंगा जी को भारत भूमि पर लाने में कठोर बाधाएँ थीं । बहुत ऊँचाई पर से पर्वत काट कर ही उसके प्रवाह को बदला जा सकता था । इस भौतिक कठिनाई के अतिरिक्त स्वर्ग लोक के ब्रह्मा देव लोक के इन्द्र एवं हिमालय देश के राजाओं के अनुमति के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था । इसके लिए निरंतर यत्न करने पर भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सका । दलीप जी जीवन भर के निरंतर प्रयत्न के पश्चात् सफल नहीं हुआ ।

दलीप का पुत्र भगीरथ था । भगीरथ ने अपनी तपस्या से पहिले ब्रह्मा जी को (स्वर्ग के मुख्य पुरुष) प्रसन्न किया । तत्पश्चात् इन्द्र को राजी किया और फिर हिमालय के राजा की स्वीकृति ली । इस सब कार्य में शिव जी (कैलाश पति) की सहायता को बहुत श्रेय प्राप्त है । इन सब की कृपा से भगीरथ हिमालय को काट कर गंगा जी की उस धारा को जो स्वर्ग में बहती थी भारत में ले आया । इसी कारण गंगा का नाम भागीरथी पड़ गया है ।

यह कहा जाता है कि गंगा की यह धारा स्वर्ग से कैलाश पर्वत पर आ मानसरोवर में समा गयी । वहाँ से वह भूम्यान्तर्गत मार्ग से बिन्दु सरोवर में आ गयी और फिर यहाँ से गंगा की तीन धाराएँ पूर्व की ओर गयीं तीन धाराएँ पश्चिम की ओर गयीं और सातवीं धारा महाराज भगीरथ के रथ के साथ-साथ भारत भूमि में प्रवाहित होने के लिये चली आयी । यह घटना गंगा-वतरण के नाम से प्रसिद्ध है ।

एक अन्य कथा भी है। उसकी कथा दूसरी है। हिमवान महाराज की दो कन्याएँ थीं। एक का नाम गंगा था और दूसरी का नाम उमा। दोनों अति सुन्दर एवं पवित्र विचार की लड़कियाँ थीं। गंगा बड़ी हुई तो कैलाशपति श्री शंकर से प्रेम करने लगी। परन्तु शंकर तो देवता सृष्टि के जीव थे। अतः उनसे विवाह असम्भव मान उसको उनकी प्राप्ति का एक ही उपाय समझ आया। वह यह कि वह भी देवलोक की नागरिकता प्राप्त कर ले। इसलिए वह तपस्या करने लगी। सुरराज इन्द्र की कृपा से वह देवलोक में निवास तो पा गयी, परन्तु महादेव जी से उसका साक्षात्कार नहीं हो सका।

समय पाकर उमा सज्ञान हुई तो वह भी शंकर जी के प्रेम में ग्रसित हो गई। उमा को शंकर की प्राप्ति का एक दूसरा उपाय सूझा। वह कैलाशपति के चरणों में बैठ तपस्या करने लगी।

उमा सफल हुई। शंकर जी ने एक दिन समाधि से उठ अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो उमा का ध्यान-मग्न वहाँ बैठे देख उस पर मोहित हो गये। पीछे जब उनको यह मालूम हुआ कि वह भी उनके प्रेमपाश में बँधी वहाँ उनकी प्राप्ति के अर्थ तपस्या कर रही है तो फिर विवाह का यत्न किया गया और विवाह हो गया। उमा का दूसरा नाम पार्वती था।

शिव और पार्वती परस्पर बहुत प्रेम से रहने लगे। इस समय देवताओं एवं दानवों में भारी प्रतिस्पर्धा चल रही थी। देवताओं के पास शस्त्रास्त्र थे सेना थी परन्तु उस सेना का संचालन करने तथा शस्त्रास्त्र का प्रयोग करने वाला कोई सेनानायक नहीं था। शिव था जो अब पार्वती के मोहजाल में फँस वासनामय हो रहा था। विष्णु अकेला युद्ध करने में बहुत योग्य था परन्तु सेनाओं का संचालन उसके वश की बात नहीं थी। इन्द्र तो मात्र शासक ही था। अन्य देवता नेता बनने के योग्य नहीं थे।

देवताओं ने विचार किया कि यदि शिव का कोई पुत्र हो तो वह एक योग्य सेनानायक हो सकता है। परन्तु शिव की पार्वती से सन्तान प्रायः असम्भव प्रतीत होती थी। पार्वती श्री शंकर जी के गर्भ धारण करने में अयोग्य मानी गई। प्रथम तो गर्भ ठहरने की आशा नहीं थी। यदि गर्भ ठहर भी जाता तो शिव जैसे ओजस्वी देवता के वीर्य से स्थापित गर्भ धारण कर सकेगी क्या? इन प्रश्नों पर विचार करने के पश्चात् यह निश्चय किया गया कि शिव जी के वीर्य से किसी अन्य योग्य कन्या में गर्भ स्थापित कराया जाए।

एतदर्थ योजना बनी। शंकर जी के वीर्य को ग्रहण करने के लिये उमा की बड़ी बहन गंगा का निर्वाचन किया गया। उसको इसके लिए तैयार किया

गया और फिर शंकर जी के वीर्य को अग्नि वायु एवं पृथ्वी की सहायता से कैलाश पर्वत से ले जाकर गंगा देवी को धारण करने के लिए अर्पित किया गया।

गंगा शंकर से प्रेम करती थी इससे उसने निःसंकोच भाव से वीर्य को धारण किया। उमा को इस बात को जानकर रोष नहीं हुआ। देवताओं का विचार था कि गंगा अपनी तपस्या से तथा देवलोक में चिर काल से रहते हुए गर्भ-पालन में योग्य होगी परन्तु यह भ्रम निकला। गंगा को भी अनुभव हुआ कि समय से पूर्व ही उसके गर्भ स्राव हो जायेगा। इससे वह चिन्ता करने लगी। देवता उसको हिमालय के एक शीतल स्थान पर ले गये और वह गर्भ कुछ और काल के लिये बच गया परन्तु समय से पूर्व ही बालक का जन्म हो गया। अतः काल से पूर्व ही जन्म होने से बालक का नाम स्कन्द पड़ा। इस बालक की रक्षा तथा पालन के लिये छः कृत्तिकाओं को नियुक्त कर दिया गया। कृत्तिकाओं द्वारा पालन किये जाने के कारण यह बालक कार्तिकेय तथा षडानन कहलाया।

कार्तिकेय बड़ा हुआ तो सब देवताओं ने उसको देव सेना का सेनापति नियुक्त किया। कार्तिकेय के जीवन काल तक असुर लोग सिर नहीं उठा सके। कई बार संग्राम हुआ और विजय देवताओं की हुई।

गंगा की एक तीसरी कहानी भी है। उसका सम्बन्ध इतिहास से नहीं। इस कारण हमने उसको इस टिप्पणी में देना उचित समझा है। यह कथा है नक्षत्र-मण्डल की और इसका आरम्भ वेद मन्त्र से होता है।

यजुर्वेद के ३० वें अध्याय के १८वें मन्त्र में यह वाक्य आया है—

द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुम् ।

इसका अर्थ इससे पूर्व के पद को पढ़ने से पता चल जायेगा। उसमें लिखा है कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं। अर्थात् भूत भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों को देखने के लिए सामर्थ्यवान व कल्पनाशील दूरदर्शी विज्ञ पुरुषों को नियुक्त करो।

अब आगे के वाक्य का अर्थ समझ आ जायेगा। (द्वापराय) इन दो प्रकार के व्यक्तियों से भी अधिक (अधिकल्पिनमास्कन्दाय) कल्पनाशील चतुर मस्तिष्क को (सभास्थाणु) सभा व प्रधान बनाए।

आस्कन्दाय और सभास्थाणुम् शब्द का स्रोत नक्षत्रों से लिया गया है। शतपथ ब्राह्मण में नक्षत्र मण्डल की एक घटना का वर्णन है।

कृत्तिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते। सर्वाणि ह वा

अध्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते ।

कृत्तिका (ये ७ नक्षत्र हैं) पूर्व दिशा से च्युत नहीं होते और सब यह च्युत हो जाते हैं।

अर्थात्—आकाश गंगा एक काल में सूर्योदय के समय क्षितिज से छूती थी और हिमालय की चोटी से निकलती दिखाई देती थी । तथा कृत्तिका नक्षत्र भी उसी स्थान पर थे । यह समय अग्न्याधान का होता है और उस समय अग्नि-होत्र करने से कामनाएं सिद्ध होती हैं ।

शतपथ ब्राह्मण और वेद में नक्षत्र-मण्डल की घटना का वर्णन है । यह है तीसरी आकाश गंगा की कथा । इसका पूर्व की ऐतिहासिक घटनाओं से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं । रूपक अलंकार बोलते हुए साहित्यिक ग्रन्थों में तीनों को मिश्रित कर दिया गया है । हमने अपनी बुद्धि के अनुसार तीनों को पृथक्-पृथक् कर दिया है ।

हमारे एक मित्र ने हमसे यह बात कही है कि हम जैसे अल्पबुद्धि को पौराणिक गाथाओं के अर्थ लगाकर प्राचीन परम्पराओं को नष्ट भ्रष्ट नहीं करना चाहिए । यह हमारे लिए एक अति कठिन बात है । एक लेखक हाथ में लेखनी लेकर अपने मन में आई बात न लिखे यह असम्भव है । इसलिए हमारा उन मित्र महानुभाव से तथा अन्य ही के विचार वालों से यही निवेदन है कि जैसा हमने अपनी बात को समझाने का यत्न किया है वे भी इस विश्लेषण के विपरीत अपने विचार विज्ञ पाठकों के सम्मुख रख दें । उनकी युक्ति ठीक होगी तो ये बातें व्यर्थ समझ छोड़ दी जायेंगी ।

उक्त ऐतिहासिक कथा में ध्यान देने योग्य बात है राष्ट्र राज्य और धन की स्थापना के लिए जहाँ जन तथा धन की आवश्यकता रहती है वहाँ एक नेता सेनापति अथवा राजा की भी आवश्यकता रहती है । देवताओं अर्थात् बुद्धिशील कर्मठ मानवों की परम्परा आज भी चल रही है । अन्तर केवल यह हो गया है कि वे देवता अब तिब्बत के पठार को छोड़ योरप अमेरिका इत्यादि देशों में वास करते हैं ।

जहाँ तक संसार को अधर्माचरण तथा अत्याचार से बचाने की दूर कालीन योजनाओं का सम्बन्ध है आज भी अनेक विद्वान बैठे विचार करते हैं और उनके लिए यत्नशील हैं । यह कहा जा सकता है कि योरप इत्यादि के लोग तो धर्म के विषय में जानते नहीं परन्तु प्रश्न यहाँ तो यह है कि क्या अनेकों ऐसी घटनाएं मिलती नहीं मिलती जहाँ इन्द्र विष्णु इत्यादि देवताओं से अधर्म हो गया प्रतीत होता है । इन्द्र का गौतम की पत्नी से सम्भोग, विष्णु का

त्रेतायुग का वृत्तान्त

विश्वामित्र-वसिष्ठ संघर्ष

यह ब्राह्मणत्व एवं क्षत्रियत्व का संघर्ष माना जाता है। प्राचीन काल में कुश नाम के एक राजा हो गये हैं। वे प्रजापति की सन्तानों में से थे। कुश के पश्चात् उसका पुत्र कुशनाभ राजगद्दी पर बैठा। कुशनाभ के पुत्र थे गाधि एवं गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए।

एक समय की बात है कि विश्वामित्र एक अक्षौहिणी सेना एकत्रित कर पृथ्वी पर विचरने लगे। वे अनेकानेक नगरों राष्ट्रों नदियों बड़े-बड़े पर्वतों और आश्रमों में क्रमशः विचरते हुए महर्षि वसिष्ठ के आश्रम पर आ पहुँचे। यह आश्रम नाना प्रकार के फूलों लताओं और वृक्षों से शोभायमान था। नाना प्रकार के मृग (वन्य पशु) वहाँ सब ओर फैले हुए थे तथा सिद्ध चारण उस आश्रम में वास करते थे। इस आश्रम में देवता दानव गन्धर्व किन्नर आ-आकर इस आश्रम की शोभा और ख्याति को बढ़ाते रहते थे। तपस्या से सिद्ध हुए, अग्नि के समान तेजस्वी महात्मा तथा ब्रह्मा के समान महामहिम महात्मा (श्रीमद् ब्रह्मकल्पै महात्मभिः) भी उस आश्रम में आते रहते थे। इन सबके कारण यह वसिष्ठ जी का आश्रम दूसरे ब्रह्म लोक के समान जान

मोहिनी बन दानवों को ठगना कुछ उदाहरण हैं। परन्तु हमारा तो विचार है कि इस धर्म अधर्म के निर्णय को त्याग कर इन महानुभावों के दिव्य गुणों का ही स्मरण करना ठीक-ठीक रहेगा और दूर की कल्पना कर भावी संसार को किसी आने वाले भय से बचाने की योजना बना कार्यान्वित करना एक दैवी गुण है।

पुराणों में इस प्रकार योजनाबद्ध संसार के हित की कल्पना करने और उस योजनानुसार देव लोक की सब शक्तियों को लगा देना देवताओं का एक विशेष कर्तव्य लिखा मिलता है। समय-समय पर देवता लोक-रक्षा की व्यवस्था कराने के लिए पूर्ण यत्न करते रहे हैं।

इस प्रथा की कथा सतयुग से चलकर आज भी प्रचलित है तो इस कारण नहीं कि कथा का कलेवर रोचक मधुर और मीमांसियों से युक्त है। प्रत्युत इसलिए कि इसके पीछे मानव इतिहास की वे पंक्तियाँ छिपी हैं जो मानव संकल्प, दृढ़ता और सद्-उद्देश्यता प्रकट करती हैं।

पड़ता था ।

विश्वामित्र जी का उस आश्रम में यथोचित सत्कार हुआ । विश्वामित्र भी वशिष्ठ जी के दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुए और विनयपूर्वक उन्होंने उनके चरणों में नमस्कार किया ।

इस पर महात्मा वशिष्ठ ने कहा "राजन् ! तुम्हारा स्वागत है ।" उन्हें बैठने के लिए आसन दिया । इसके पश्चात् मुनि जी ने महाराज विश्वामित्र के सम्मुख विधिपूर्वक फल-फूल का उपहार दिया । इस प्रकार दोनों महाजनों में शिष्टाचार की बातें होने लगीं ।

वशिष्ठ जी ने विश्वामित्र से उसके राज्य सेना कोष मित्र वर्ग एवं पुत्र-पौत्र का कुशल समाचार पूछा और दोनों ओर से चिर काल तक बात-चीत होती रही ।

अन्त में जब विश्वामित्र जाने लगा तो वशिष्ठ जी ने महाराज तथा उसकी पूर्ण सेना का आतिथ्य करना चाहा । विश्वामित्र संकोचवश इसको स्वीकार नहीं करता था । वह समझता था कि यह तपस्वी भला एक राज्य की इतनी बड़ी सेना का क्या आतिथ्य तथा सत्कार करेगा ?

वशिष्ठ जी जान गये कि विश्वामित्र के मन में क्या है ? इससे उन्होंने अपनी सामर्थ्य का दिग्दर्शन कराने के लिए बार-बार आग्रह किया और अंत में विश्वामित्र मान गये ।

मुनि वशिष्ठ जी ने विश्वामित्र के सामने ही अपनी कामधेनु शबला को बुलाया और आज्ञा दे दी कि महाराज और उसकी पूर्ण सेना के भोजन का प्रबन्ध हो जाय । मुनि की आज्ञा पा शबला ने देखते देखते सबकी इच्छानुसार सब सामग्री जुटा दी । ईख मधु लाजा मैरेय श्रेष्ठ आसव पानक रस और नाना प्रकार के सुस्वादु भोज्य पदार्थ प्रस्तुत कर दिये ।

गरम-गरम भात के पर्वत सदृश ढेर लग गये मिष्टान्न और दाल भी तैयार हो गई । दूध दही एवं घी की नहरें बह न चलीं । यह सब सामग्री सोने के बर्तनों में परोसी जाने लगी ।

पूर्ण सेना जब तृप्त हो गई और यथारुचि इच्छानुसार भोजन पा प्रसन्न हो गई तो विश्वामित्र अन्तःपुर की रानियों सहित खा-पीकर तृप्ति अनुभव करते हुए उस 'शबला' के कौशल पर विस्मय करने लगे ।

फिर उस समय विश्वामित्र ने वशिष्ठ जी की बहुत प्रशंसा की और कहा "महामुने ! यह आपकी कामधेनु शबला तो राजा-महाराजाओं की शाला में रहने योग्य है । इसे आप मुझको दे दीजिये । इसके बदले में आपको एक

लाख सुन्दर हृष्ट-पुष्ट भरपूर दूध देने वाली गौएँ दे दूँगा।"

वशिष्ठ जी ने उसकी इस बात को नहीं माना और कह दिया "एक लाख क्या सौ करोड़ गौएँ लेकर भी इसको नहीं दे सकता। सोने चाँदी के ढेर भी इसका मूल्य नहीं चुका सकते। राजन्! जैसे मनस्वी पुरुष अपनी अक्षय कीर्ति किसी को दे नहीं सकते उसी प्रकार यह मेरी शबला मेरे साथ सम्बन्ध रखने वाली है। यह मुझ से पृथक होकर रह नहीं सकती। मेरा हव्य-कव्य और जीवन-निर्वाह इसी पर निर्भर है।"

इस इनकार से तो विश्वामित्र को क्रोध आ गया। राजा होते हुए वह अपनी इच्छा की अपूर्ति देखने का स्वभाव नहीं रखता था। इस पर भी क्रोध को भीतर छिपाते हुए उसने स्वर्ण रजत रथ घोड़े बहुत कुछ देने का प्रस्ताव किया परन्तु वशिष्ठ जी नहीं माने। उन्होंने कह दिया "राजन्! मैं यह चितकबरी शबला तुमको कभी नहीं दूँगा।"

जब वशिष्ठ जी वह कामधेनु शबला देने को तैयार नहीं हुए तो विश्वामित्र बलपूर्वक उसको पकड़ कर ले गये परन्तु वह छूटकर भागी और वशिष्ठ जी के सामने अति करुणाजनक अवस्था में आ खड़ी हुई।

शबला ने पूछा "महर्षि क्या आपने मेरा त्याग कर दिया है?"

"नहीं यह तो महाराज विश्वामित्र अपने बल से मतवाला हो तुमको छीनकर ले जा रहा है। यह राजा है। पृथ्वीपति है। धन-धान्य-सम्पन्न है। सेनानायक है। इसको हम आश्रम निवासियों की आवश्यकताओं और इच्छाओं का सत्कार करने में कोई कारण प्रतीत नहीं होता।"

शबला ने वशिष्ठ जी से कहा "महामुने! क्षत्रिय बल कोई बल नहीं। ब्राह्मण क्षत्रिय से अधिक बलशाली होता है। महर्षि आपका बल अप्रमेय है। महापराक्रमी विश्वामित्र आपसे अधिक बलवान नहीं। आपका तेज दुर्धर्ष है। आप मुझको आज्ञा दीजिये। मैं इस दुरात्मा राजा के अभिमान को चूर कर दूँगी।"

महामुनि वशिष्ठ जी के कहने पर शबला ने एक महान सेना की सृष्टि की।

पह्लव जाति के योद्धा वशिष्ठ जी की रक्षा के लिए आ गये। अब दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हो गया। विश्वामित्र एक उच्च कोटि का योद्धा था और अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग जानता था। उसने उन सब पह्लवों का संहार कर दिया। इस पर वशिष्ठ जी की सहायता के लिए यवन शक आ उपस्थित हुए। उन पर भी विश्वामित्र ने अपने दिव्य अस्त्रों से प्रहार किया।

यवन शक भी बेचारे उन अस्त्र-शस्त्रों की चोटों को सह न सके। इस पर शस्त्र धारी बर्बर आ गये और पुनः युद्ध आरम्भ हो गया। यवन शक बर्बर म्लेच्छ हारीत इत्यादि अनेकों जातियों के वीर युद्ध के लिए आये और विश्वामित्र की पूर्ण सेना समाप्त हो गई।

इस पर तो विश्वामित्र के पुत्रों के रोष का पारावार न रहा और वे अपने अस्त्रास्त्र ले मुनि पर कूद पड़े। महर्षि वसिष्ठ ने उनकी ओर देखा तो उस क्रोधाग्नि को वे सहन नहीं कर सके तथा भस्म हो गये।

अपनी सेना का विनाश और पुत्रों की मृत्यु देख विश्वामित्र अति चिन्तित मन अपने एक बचे पुत्र को सब राज-पाट देकर वन में तपस्या करने चले गये। हिमालय पार कर वे कैलाशपति शिव से अस्त्रास्त्र लेने के लिए तपस्या करने लगे। जब शिव जी ने पूछा कि वह क्या चाहता है तो विश्वामित्र ने उनसे वे सब अस्त्रास्त्र मांगे जो देवताओं दानवों महर्षियों गन्धर्वों यक्षों तथा राक्षसों के पास थे। महादेव ने वे अस्त्रास्त्र उनको दे दिये। इन अस्त्रों एवं शस्त्रों को पाकर विश्वामित्र ने अभिमान से युक्त होकर मुनि जी के आश्रम पर धावा बोल दिया। उन अस्त्रास्त्रों के तेज से पूर्ण तपोवन दग्ध होने लगा। आश्रम वीरान हो गया। वहाँ के प्राणी या तो भाग गये अथवा जलकर भस्म हो गये।

वसिष्ठ जी अपना ब्रह्मदण्ड (ब्राह्मणत्व) लेकर सामने आये तो सब अस्त्रास्त्र ठंडे पड़ने लगे। सब अस्त्र-शस्त्र इस ब्रह्मदण्ड के सामने निरर्थक रह गये। *विश्वामित्र जी का अन्तिम प्रहार था ब्रह्मास्त्र परन्तु वह भी ब्रह्मदण्ड के* सामने ठंडा हो गया।

विश्वामित्र समझ गया कि अस्त्र-शस्त्र एवं क्षत्रियबल ब्रह्मतेज के सामने निस्तेज है। इससे वह वसिष्ठ जी की भांति ब्रह्मर्षि बनने के लिए तपस्या करने लगे।

कई जन्म-जन्मान्तर की तपस्या के पश्चात् वह उस ब्रह्मविद्या को पा सके जो इस पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ है।

यह कथा अधिकांश काल्पनिक कही जा सकती है। परन्तु यह एक कथा है जो पूर्ण संसार में आदि काल से चलती आ रही है। इसमें दो बातें ही आजकल के मस्तिष्क में नहीं आतीं। एक शबला कामधेनु और दूसरे ब्रह्मास्त्र इत्यादि को ठंडा करने वाला ब्रह्मदण्ड।

वास्तव में इसमें किसी प्रकार का वैचित्र्य नहीं है। सम्भवतः शबला

कोई पाप नहीं थी। यह मुनि वसिष्ठ जी के कार्यालय का अति चतुर प्रबन्ध प्रतीत होता है। इसकी कार्य कुशलता अथवा शासन चलाने की क्षमता देखकर ही एक राजा के मन में लोभ आ गया था। वह यह समझने लगा था कि राजा होने से संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त करना उसका अधिकार है। यह लगभग ऐसा ही है जैसे कोई ऐटम बम बनाने वाला वैज्ञानिक अथवा इन्जीनियर इंग्लैण्ड अथवा अमेरिका में से रूस पकड़कर ले जावे अथवा रूस में से अमेरिका पकड़कर ले जाना चाहे। वह वैज्ञानिक दूसरे देश में जाना न चाहे अथवा वहाँ जाकर कार्य न करना चाहे तो जो कुछ हो सकता है वही हुआ है। अन्तर केवल यह है कि विश्वामित्र का विरोध करने के लिए वसिष्ठ जी ने पहिले तो अधिकारी को अपने साधनों द्वारा युद्ध करने की स्वीकृति दी पीछे स्वयं ब्रह्मदण्ड लेकर निकल आये।

शेष एक जाति अथवा दूसरी जाति के सैनिक वसिष्ठ जी के आश्रम की रक्षा करने आये यह वसिष्ठ जी के प्रभाव और लोकप्रियता का सूचक ही मानना चाहिए, भिन्न-भिन्न जातियों के स्वयंसेवक (Volunteers) स्वेच्छा से अपने राज्य को युद्ध में घसीटे बिना आश्रम की रक्षा के लिए आये होंगे।

विश्वामित्र को शिव की सहायता मिली। उसका भी उदाहरण आज संसार में उपस्थित है। अमेरिका ने अस्त्रशस्त्र पाकिस्तान को दिये हैं। यदि वे अस्त्रशस्त्र पाकिस्तान अपनी प्रभुता जमाने के लिए किसी पड़ोसी निर्दोष राज्य पर प्रयोग करे तो वही बात हो जाएगी जो विश्वामित्र ने शिव से अस्त्रशस्त्र लेकर वसिष्ठ के आश्रम पर चलाये थे।

इस कथा के लिखने का वास्तविक उद्देश्य यह है कि क्षत्रिय लोग विद्वानों से द्वेष बनाकर सदा लज्जित होते हैं। ब्रह्मदण्ड कोई बाँस का लट्ठ नहीं था। यह ज्ञान-विज्ञान का तेज पुञ्ज था जो वसिष्ठ जी ने पूर्ण जीवन-भर की तपस्या से उपलब्ध किया होगा।

साथ ही स्मरणीय बात यह है कि जैसे काम क्रोध मोह इत्यादि बुद्धि मलिन करते हैं वैसे ही लोभ भी बुद्धि भ्रष्ट करने की क्षमता रखता है। ये सब विकार बुद्धि मलिन करने की क्षमता रखते हैं परन्तु इस मलिन बुद्धि को अपने दुष्परिणाम उत्पन्न करने का अवसर तभी प्राप्त होता है जब मलिन-बुद्धि व्यक्ति के पास बलबुद्धि होती है। बलबुद्धि से मलिनबुद्धि में अहंकार पैदा होता है और अहंकार से विनाश निश्चित् रूप से होता है।

अतः सुरक्षित नीति यही है कि यथासम्भव विस्फोट-युक्त बम वाले

राक्षसों की उत्पत्ति और पराजय

इस युद्ध की पृष्ठ-भूमि समझने के लिए एक-दो शब्दों के अर्थ समझ लेने चाहिएं। यों तो इस बात का उल्लेख हम इस पुस्तक में पहिले भी स्थान स्थान पर कर चुके हैं। देवता दानव दैत्य राक्षस गन्धर्व मानव यक्ष शब्द भारतीय परम्परा में गुणवाचक नहीं हैं। ये जातिवाचक हैं। कुछ जातियाँ देश-विशेष में रहने से एक नाम से कहलाती हैं एवं कुछ वंश-विशेष से सम्बन्धित होने से विशेष नाम वाली हो गई हैं। इनमें अच्छे-बुरे लोग साथ साथ रहते हुए उत्पन्न होते हैं तथा लड़ते झगड़ते पाये जाते हैं। कश्यप जी के लड़के हिरण्यकशिपु एवं हिरण्यकशिपु का लड़का प्रह्लाद हो गया। इसी प्रकार का एक उदाहरण सूर्यवंशियों में मिलता है।

रघोरभूत्सुतस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः। कल्माषपादोऽस्मभवत्।
अर्थात्—रघु का पुत्र प्रवृद्ध हुआ जिसका दूसरा नाम कल्माषपाद था। यह असुर हो गया। इसी प्रकार रावण का भाई विभीषण इत्यादि। यह ठीक है कि यदि किसी देश अथवा जाति का राजा ही दुष्ट स्वभाव वाला हो जाए तो उसका प्रभाव पूर्ण प्रजा पर पड़ता है और राज्य-शक्ति के बल से अपने स्वभाव के लोग वह अपने समीप एकत्रित कर लेता है। तब वहाँ उन दुष्टों की परम्परा चल पड़ती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि उस राजा को निःशेष कर दिया जाए तब दुष्ट प्रकृति के लोग वहाँ से भाग जाते हैं।

दुष्ट प्रकृति के लोगों को असुर नाम से भारतीय परम्परा में स्मरण किया जाता है और श्रेष्ठ स्वभाव वालों को दैवी स्वभाव वाले। इसका यह अर्थ नहीं कि देवता होने से कोई दैवी स्वभाव वाला हो जायेगा। देवता जैसे हम पहिले लिख चुके हैं मानव ही थे। ये तिब्बत एवं हिमालय के पूर्व के उच्च पठारों पर प्लावन के पश्चात् रहते थे। प्लावन-पूर्व तो ये प्रायः सम्पूर्ण पृथ्वी पर छाये हुए थे।

राक्षस जाति भी ब्रह्मा जी से उत्पन्न किये हुए कुछ एक व्यक्तियों की सन्तान थी। ब्रह्मा जी ने इनको उत्पन्न किया तो तामसी और राजसी प्रकृति रखने वाले ये व्यक्ति ब्रह्मा जी से पूछने लगे कि वे क्या करें। ब्रह्मा जी ने इनको दक्षिण समुद्र में जल से बाहर आ रहे द्वीपों में जाकर रहने की

प्राणी को बल पुष्ट होते ही न किया जावे। इस नीति को काम लेने से दुष्ट की श्रेणि समाप्त न पाने लगती है।

स्वीकृति दे दी। इनको उन तीर्थों की रक्षा का भार सौंपा तो ये राक्षस के नाम से प्रसिद्ध हो गए। यह तो प्लावन-पूर्व की कथा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी सन्तान प्लावन के पश्चात् भी अपने को राक्षस मानती रही।

त्रेता युग में इनका एक राजा हेति नाम से प्रसिद्ध था। वह अप्रमेय आत्मबल से सम्पन्न और बुद्धिमान था। काल की बहिन भया से इसका विवाह हुआ तो इनका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम विद्युत्केश रखा गया। विद्युत्केश का विवाह संध्या की पुत्री सालकटंकटा के साथ हो गया। जब इसके गर्भ ठहर गया तो वह पुत्र के पालन-पोषण के झंझट से छूटने के लिए पुत्र को जन्म देकर मन्दराचल पर्वत पर छोड़ आई और आकर वह पुनः प्रेम पूर्वक अपने पति से रमण करने लगी।

सालकटंकटा का शिशु पुत्र भूख से व्याकुल हो रोने लगा। अकस्मात् उस समय भगवान शिव पार्वती के साथ अपने विमान में बैठे वहां से गुजरे तो उनकी दृष्टि इस नवजात शिशु पर पड़ गई। पार्वती को उस पर दया आई तो उन्होंने विमान उतारा और बालक को उठाकर अपने यहां ले गई। वहां उसके पालन-पोषण का प्रबन्ध कर दिया। इस बालक का नाम सुकेश रखा गया। पार्वती सुकेश से बहुत स्नेह रखती थीं और उनके आग्रह पर महादेव जी ने इस बालक को युवा होने पर न केवल अमरत्व दिया अपितु एक विमान भी दिया जिस पर वह सवारी कर सके।

सुकेश को महादेव का प्रिय जान एक गन्धर्व रूपी ग्रामणी ने अपनी कन्या देववती का उससे विवाह कर दिया। इस दम्पति से तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनके नाम थे माल्यवान सुमाली एवं माली। ये राक्षस और गन्धर्व रक्त से उत्पन्न बालक एक ओर तो अत्यन्त तेजस्वी और विद्वान हुए तथा दूसरी ओर अत्यन्त भयंकर प्रकृति वाले हुए।

तीनों बालकों ने घोर तपस्या की। इस तपस्या का फल इनको यह मिला कि ये परस्पर अति प्रेम करने वाले और अत्यन्त बल के स्वामी हो गये। जब इनको विश्वास हो गया कि वे अति बलवान हो गये हैं तो वे निर्भय हो दूसरों को कष्ट दे देकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे। ये देवताओं और असुरों को एक समान तंग करने लगे। सब लोग इन राक्षसों से दुःखी हो त्राहि त्राहि करने लगे।

इन तीनों भाइयों ने अपने लिए, विश्वकर्मा को कहकर लंका में त्रिकूट पर्वत पर तीन बहुत सुन्दर भवन और एक नगरी बनवाई और वहां सुखपूर्वक रहने लगे। यह नगरी अति सुदृढ़ एवं भव्य पर्वत के शिखिर पर स्वर्ण की

बनाई गई थी। ये राक्षस राज अपने साथियों को लेकर उस नगरी में रहने लगे।

तीनों भाइयों ने नर्मदा नाम की गन्धर्वी की तीन लड़कियों से विवाह कर लिया। माल्यवान की स्त्री का नाम सुन्दरी था। इसके सात पुत्र उत्पन्न हुए। सुमाली की पत्नी का नाम केतुमती था। इसके दस पुत्र एवं चार कन्याएँ उत्पन्न हुईं। तीसरे भाई माली की पत्नी का नाम वसुधा था। इसके चार पुत्र हुए।

तीनों भाई अपनी इच्छा को धर्म का नाम देते थे और प्रजाजनों को अपनी सुख-सामग्री समझते थे। जब पीड़न सीमा से बढ़ा तो प्रजा महादेव जी के पास गई और सुमाली इत्यादि से रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगी।

महादेव ने उनकी बात सुनी परन्तु विवशता बताते हुए कहा कि इन राक्षसों का पिता पार्वती का स्नेह-पात्र है इसी कारण वह हस्तक्षेप नहीं करेगा। अतः वे लोग विष्णु के पास जायें वे ही उनकी सहायता कर सकते हैं।

निराश हो वे विष्णु के पास पहुँचे। विष्णु ने उनको सहायता का आश्वासन दिया। माल्यवान इत्यादि थे तो गन्धर्वी माँ के पुत्र परन्तु उनमें आसुरी आचार-विचार अधिक मात्रा में था और फिर तपस्या से बल प्राप्ति कर अभिमान में वे कुछ ऐसा मानने लगे थे—

अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराडहम्।
अहं यमश्च वरुणश्चन्द्रोऽहं रविरप्यहम्॥ वा० रा० उ० ६।६

अर्थात् मैं विष्णु हूँ मैं रुद्र हूँ मैं ही ब्रह्मा हूँ तथा मैं ही देवराज इन्द्र हूँ। यमराज वरुण चन्द्र और सूर्य मैं हूँ। इत्यादि।

प्रजा की यह बात सुन विष्णु ने कहा—

सुकेशं राक्षसं जाने ईशानवरदर्पितम्।
तांश्चास्य तनयाञ्जाने येषां ज्येष्ठः स माल्यवान्।
तानहं समतिक्रान्तमर्यादान् राक्षसाधमान्।
निहनिष्यामि संक्रुद्धः सुरा भवत विज्वराः॥

वा० रा० उ० ६।२१

" मैं सुकेश और उसके पुत्र माल्यवान इत्यादि के विषय में जानता हूँ। वे धर्म की सीमा का उल्लंघन कर रहे हैं। इसलिए तुम निश्चिन्त होकर लौट जाओ मैं उनका नाश करूँगा।

दूसरी ओर माल्यवान इत्यादि को भी पता चल गया कि विष्णु ने उनकी प्रजा को उनके मारने का वचन दे दिया है। अतः उन्होंने विष्णु के उस ओर आने से पहिले ही देव लोक पर आक्रमण कर दिया।

जब इनके आक्रमण की बात विष्णु ने सुनी तो वे भी गरुड़ पर

गदा, धनुष और खड्ग आदि और उत्तम आयुधों को धारण कर राक्षसों का संहार करने चल पड़े। अपने गरुड़विमान पर बैठे हुए विष्णु राक्षस सेना पर जा पहुँचे।

घोर युद्ध हुआ। महान् संहार हुआ। एक ओर राक्षसों की विशाल सेना थी तथा दूसरी ओर विष्णु अकेला था। इस पर भी अपने आयुधों के बल पर विष्णु ने राक्षसों को अपार हानि पहुँचाई। राक्षसों के शवों के पर्वतों के समान ढेर लग गये। राक्षस लंका की ओर भाग खड़े हुए।

लंका पहुँचने से पहले सुमाली ने एक बार पुनः राक्षसों को उत्साहित कर विष्णु का मुकाबिला करने के लिए खड़ा कर लिया। पुनः युद्ध हुआ। इस बार विष्णु के बाण से सुमाली के रथ का सारथी मर गया तो रथ के घोड़े बेकाबू होकर सुमाली को लेकर इधर-उधर भागने लगे।

इस युद्ध का अन्त हुआ सुदर्शन चक्र से। सुदर्शन चक्र से माली का सिर कटा तो माली के दोनों बड़े भाई और राक्षस लंका की ओर भाग खड़े हुए। एक बार पुनः माल्यवान और सुमाली ने लंका के बाहर विष्णु से लोहा लेने का यत्न किया परन्तु सुदर्शन चक्र ने विजय का निर्णय कर दिया और राक्षस लंका छोड़कर पाताल देश में चले गये।

रावण की समर यात्रा

ब्रह्मा के एक मानस पुत्र पुलस्त्य थे। इन महर्षि पुलस्त्य के विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं। एक पुलस्त्य मुनि मेरु पर्वत के समीप ही राजर्षि तृणबिन्दु के आश्रम में रहते थे। घटना वश राजर्षि तृणबिन्दु की लड़की को पुलस्त्य जी से गर्भ रह गया। अतः दोनों का विवाह कर दिया गया और पुत्र का नाम विश्रवा रखा गया। इन विश्रवा की सन्तान में से ही कुबेर नाम के राजा हुए। विश्रवा के वंश में होने से इनका नाम वैश्रवण भी था।

कुबेर धर्मात्मा तपस्वी और बलशाली थे। अतः देवताओं ने इनको चौथा लोकपाल नियुक्त कर दिया। यम इन्द्र और वरुण तीन लोकपाल पहले ही नियुक्त हो चुके थे। ये तीनों देव लोक तथा भू-मण्डल की तीन ओर से रक्षा करते थे। कुबेर को दक्षिण समुद्र की रक्षा का भार सौंपा गया और लंका पुरी जो असुरों के पाताल देश को भाग जाने से खाली पड़ी थी कुबेर को दे दी गई।

एक बार सुमाली अपनी पत्नी के साथ पुन मानव-लोक में आकर भ्रमण कर रहा था कि उसको विमान पर आरूढ़ कुबेर देवलोक की ओर जाता हुआ दिखाई दिया। कुबेर अति बलवान एवं सुन्दर था। सुमाली को एक बात सूझी जिससे वह अपने वंश की उन्नति करने में योग्य हो सका। वह कुबेर को लंका से निकालने का आयोजन करने लगा।

उसने अपनी लड़की कैकसी को बताया कि वह उसके योग्य वर देख आया है। वह स्वयं वहाँ जाकर उसको वरण करे और उसकी सेवा में रहे। कैकसी को सुमाली ने बताया कि वह वर महर्षि पुलस्त्य की सन्तान में विश्रवा नाम का मुनीश्वर है।

कैकसी पिता की बात सुन समस्त अपने कुल के उद्धार के लिए विश्रवा के आश्रम में जा पहुँची और वहाँ एक ओर खड़ी हो गई।

सायंकाल जब मुनि विश्रवा अग्निहोत्र करने लगे तो कैकसी उनके सामने आ खड़ी हुई। वह विश्रवा मुनि के तेजस्वी मुख को देख काम से पीड़ित हो रही थी। मुनि ने उसे देखा और पूछा कि वह किस अर्थ वहाँ आई है।

कैकसी ने बताया कि वह अपने माता-पिता की आज्ञा से उनकी सेवा में रहने आई है। मुनीश्वर जान गए कि वह उनसे सन्तान की इच्छा करती है। उन्होंने उसे वर लिया और उसमें तीन पुत्र तथा एक लड़की को जन्म दिया। पहिला पुत्र रावण हुआ। दूसरा कुम्भकर्ण और तीसरा विभीषण। लड़की शूर्पणखा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

रावण ने माता कैकसी की प्रेरणा से घोर तपस्या की और बल-वैभव प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कर तथा ब्रह्मा की से आशीर्वाद पाकर पहले अपने पिता विश्रवा के पास पहुँचा और फिर अपनी माता की प्रेरणा से पिता से लंकापुरी माँगने लगा। मुनि विश्रवा ने उसको समझाया कि वह लंकापुरी ही उसके विनाश का कारण होगी। परन्तु वह माना नहीं। वह सीधा लंका जा पहुँचा और अपने भाई कुबेर को डराने धमकाने लगा।

विश्रवा ने कुबेर को समझाया कि भाई-भाई में युद्ध ठीक नहीं होता। इस कारण वह लंका खाली कर दे और एक अन्य नगर बसाकर रहना आरम्भ कर दे। इस प्रकार रावण की राक्षस और यक्ष वर्गों के विग्रह से उत्पन्न हुआ था लंका में राज्य करने लगा।

रावण ने अपने सब राक्षस सम्बन्धियों को पाताल देश से बुला लिया तथा उनको लंका में बसाकर अपने राज्य का विस्तार करने लगा। कुछ ही वर्षों में राक्षस लंका में बढ़ते-बढ़ते भारत भूमि पर और फिर उत्तर की ओर

विन्ध्याचल पर्वत तक फैल गये। उनका विचार पूर्ण आर्यावर्त देश को अपने अधीन कर लेने का था।

आरम्भ से ही राक्षसों की परम्परा आर्यों और देवताओं की परम्परा से भिन्न थी। वे नास्तिक थे जिस को शक्ति का प्रतीक माना जाता था की पूजा करते थे और शक्ति को ही धर्म का स्रोत मानते थे।

मद्यपान नरमांस भक्षण और इन्द्रिय सुख प्राप्त करना ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया था। इसी व्यवहार के कारण राक्षस रावण के संरक्षण में मधुर पद पा गये।

रावण का विवाह दैत्यराज मय की बेटी मन्दोदरी से हो गया। उसका मेघनाथ नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुम्भकरण का विवाह ब ी की दौहित्री वज्रज्वाला से हुआ और विभीषण का विवाह शैलूष गन्धर्व की कन्या सरमा से हो गया।

रावण और उसके साथी राक्षस अत्याचार और पापाचार करते हुए पूर्ण दक्षिण भारत पर छा गये और दण्डक वन में रहने वाले तपस्वियों एवं मुनियों को दुःख देने लगे। वे आर्य विचार के लोगों के यज्ञ-अनुष्ठानों को अपवित्र करने लगे।

कुबेर ने रावण को अपना भाई मान समझाने का यत्न किया। उसने रावण के पास एक दूत भेजा परन्तु रावण अपने भाई की सम्मति सुन क्रुद्ध हो उठा और उसने दूत को मरवा डाला।

रावण भारत के दक्षिण भाग से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। उत्तर में देवताओं का प्रभाव देख उसने देव लोक को भी विजय करने का निश्चय किया। इस समय तक रावण के पुत्र मेघनाथ ने भी तपस्या और कई यज्ञ कर अनेक प्रकार के अस्त्रास्त्रों का संग्रह कर लिया था और ब्रह्मादि देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था।

रावण ने देवलोक पर आक्रमण किया तो देवताओं ने उसका विरोध किया। घोर संग्राम छिड़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि इन्द्र को मेघनाथ ने बन्दी बना लिया। इस पर ब्रह्मा ने दोनों में सन्धि करा दी और इन्द्र को छुड़ा लिया। मेघनाद का नाम इन्द्रजित हो गया।

देवलोक पर विजय प्राप्त कर रावण ने समझा कि देवेन्द्र को पराजित करने के पश्चात आर्यावर्त के राजाओं को तो चुटकी मारकर पराजित कर लेगा परन्तु पहिले ही युद्ध में उसको पराजय का मुख देखना पड़ा। नर्मदा प्रदेश के राजा अर्जुन ने रावण को पराजित कर अपनी नगरी माहिष्मती पुरी में बंदी

कर दिया। यहाँ से रावण को उसके पितामह पुलस्त्य ने अर्जुन से मैत्री करा कर मुक्त कराया। इस पर रावण उत्तर के अन्य नरेशों से जूझ नहीं सका। दक्षिण में वानर राजा बाली रहता था। रावण के मन में आया कि वह तो आर्य जाति का नहीं है। कम-से-कम इस राज्य को तो आत्मसात कर लेना चाहिए।

बाली सागर तट पर बैठा पूजा कर रहा था। रावण ने समझा इस पराक्रमी वीर को पूजा पर से ही पकड़ लेना। अतः वह दबे पाँव उसके पास पहुँचा और उसे पकड़ने की चेष्टा करने लगा। परन्तु बाली ने उसको दबे पाँव अपनी ओर आते देख लिया था। इस कारण जब रावण उसके पीछे पहुँचा तो बाली ने उसे पकड़ कर अपनी बगल में दबा लिया और पूजा करता रहा। जब तक उसकी पूजा समाप्त नहीं हुई बाली ने उसे अपनी बगल में दबाये रखा। रावण छटपटाता रहा परन्तु उसकी पकड़ से वह छूट नहीं सका।

जब पूजा समाप्त हुई तो बाली उसको बन्दी बना किष्किन्धापुरी में ले गया। वहाँ रावण ने बाली से मित्रता कर ली। दोनों अग्नि को साक्षी बना मित्र बन गये।

इस दूसरी घटना ने रावण का उत्साह भंग कर दिया। उसने इन्द्र वरुण और विष्णु को परास्त कर देवलोक की अनेक सुन्दरियों को अपन रति वास में रख लिया था। देवताओं पर विजय प्राप्त कर, वह दो करारी पराजय आर्यावर्त के नरेशों से सहन कर लंका में आकर विचार करने लगा और उसकी त्रिलोक की विजय स्वप्नवत् विलीन हो गई।

अब उसने सांस्कृतिक विजय करने के लिए अपने भाई के खर दूषण को तथा अपने चौदह सहस्र राक्षसों को सेनानायक दूषण के अधीन कर दण्डकारण्य में भेज दिया। उसका विचार था कि सर्व प्रथम आर्यों के ऋषि-मुनियों और विद्वान् ब्राह्मणों को समाप्त किया जाये। तत्पश्चात् भारत के अन्य राज्यों को आत्मसात किया जा सकता है। उसकी योजना थी कि पहिले विन्ध्याचल के दक्षिण के देश को असुरों से भर दिया जाय। तब विन्ध्याचल के पार के देशों को पराजित कर लिया जाय। यह योजना चलने लगी।

खर और दूषण दोनों मिलकर विन्ध्याचल की तलहटी में योग-ध्यान और तपस्या में लीन ऋषियों और मुनियों को मारने तथा काटने लगे। उनके यज्ञों में मांस रक्त इत्यादि डाल-डालकर भ्रष्ट करने लगे। एक युद्ध का-सा समय बिना युद्ध के बन गया। यह एक अद्भीय युद्ध था। ऋषि मुनि अरणी तपस्या में लीन होते थे। राक्षस उनके आश्रमों में जाते और उनको मार कर

ऐसे खा जाते थे जैसे वे वन-पशु हों।

इस समय राम अपने पिता के वचनों से बद्ध अपने भाई लक्ष्मण और सीता के साथ वनवास भोग रहे थे। वे भ्रमण करते हुए दण्डकारण्य में आ पहुँचे। वन में प्रवेश करते ही राम को राक्षसों के झुंड-के-झुंड अपने विनाशकारी कार्य में लीन दिखाई देने लगे।

वहाँ रहने वाले ऋषि-महर्षियों ने राम को वहाँ की परिस्थिति से अवगत कराया। उन्होंने बताया—

सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्।
त्वन्नाथोऽनाथवद् राम राक्षसैर्हन्यते भृशम् ॥१५॥
एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने ॥१६॥
पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि।
चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत् ॥१७॥
एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम्।
क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥१८॥
ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः
परिपालय नो राम वध्यमानान् निशाचरैः ॥१९॥

वा रा अरण्य ६।१५-१९

इसका अर्थ है—

हम इस वन में रहने वाले वानप्रस्थी महात्मागण हैं। हम में ब्राह्मणों की संख्या अधिक है। आप हमारे रक्षक हैं परन्तु हम राक्षसों द्वारा अनाथों की भाँति मारे जा रहे हैं।

देखिये ये अस्थियों का ढेर उन ऋषि-मुनियों का है जो इन राक्षसों द्वारा मारे गये हैं।

सरोवर से लेकर तुंगभद्रा तथा मन्दाकिनी के किनारे किनारे रहने वाले और जो चित्रकूट से पश्चिम की ओर रहने वाले हैं उन सभी ऋषि महर्षियों का राक्षसों द्वारा महान संहार किया जा रहा है।

इन भयानक कर्म करने वाले राक्षसों ने इस वन में तपस्वी मुनियों की हत्याओं का ऐसा भयंकर ताण्डव मचा रखा है कि अब असह्य हो गया है।

अतः हम इनसे बचाये जाने की प्रार्थना लेकर आपकी शरण में आये हैं। हे राम! इन निशाचरों से मारे जाते हुए मुनियों को बचाओ।

यह रूप था उस संघर्ष का जो सीताहरण से पहिले उपस्थित था।

राम ने यह देखा और निर्भीकता से इस अत्याचार का विरोध करने के लिए उन्होंने इस वन में रहना आरम्भ कर दिया।

राम रावण युद्ध

ऐसा प्रतीत होता है कि देवता समुन्नत ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता थे। ब्रह्मा इन्द्र शिव बहुत से दिव्यास्त्रों के निर्माण करने का ढंग जानते थे। एक विद्वान् के नाते वे इन अस्त्रशस्त्रों के बनाने का ढंग अथवा उनके प्रयोग का ढंग उन सबको बताने में संकोच नहीं करते थे जो अपने-आपको उनके पाने का अधिकारी सिद्ध कर दें। एक बात और प्रतीत होती है कि यद्यपि वे स्वयं एक जाति विशेष के साथ सम्बन्ध रखते थे परन्तु अपने ज्ञान विज्ञान की उपज को पूर्ण मानव जाति की निधि मानते थे और उन्होंने उसको किसी भी जाति के योग्य व्यक्ति को देने से कभी इनकार नहीं किया। आरम्भ से ही इसके उदाहरण मिलते हैं।

हिरण्यकशिपु को ब्रह्मा का वर (आशीर्वाद) प्राप्त था कि वह अतुल बलशाली होगा। उसको कोई देवता मार नहीं सकेगा। इसी कारण उसको निक्षेप करने के लिए उसकी प्रजा का सहयोग प्राप्त करना पड़ा। इसी प्रकार अन्य दैत्यों एवं राक्षसों को भी देवताओं से वर प्राप्त होते रहे थे।

रावण को भी ब्रह्मा एवं शिव से वर प्राप्त थे। मेघनाद को भी इस योग्य माना गया कि वह दिव्यशक्ति को अपने पास रखे और उसका प्रयोग कर सके। देवता लोगों को जब भी कोई अपनी तपस्या से विश्वास दिला देता कि वह दिव्यास्त्रों के योग्य है तो उसको वे मिल जाते थे। ज्ञान की उपज को भी वे मानव जाति की सम्पत्ति मानते थे परन्तु जब वे किसी असुर के पास उन अस्त्रशस्त्रों को बढ़ा बढ़ा देखते थे तो फिर उसका विरोध करने का प्रयत्न भी करते थे।

यही बात रावण के सम्बन्ध में हुई। जब ब्रह्मा ने रावण को वह शक्ति और वह अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए जिससे कोई देवता उसको परास्त न कर सके तो फिर देवता तत्कालीन मनुष्य में से किसी को उसका विरोध करने के लिए तैयार करने लगे।

यह कहा जाता है कि भगवान् विष्णु स्वयं राम के रूप में महाराज दशरथ के घर में उत्पन्न हुए। इस बात को हम असत्य नहीं कह सकते। इसमें संदेह

नहीं कि राम अमानुषीय शक्ति का स्वामी था। उसमें परमात्मा की विशेष शक्ति का होना मान लेना किसी प्रकार भी अयुक्तिसंगत बात नहीं। हिन्दुओं में अवतारवाद के यही अर्थ प्रतीत होते हैं।

यह तो कोई भी नहीं मानता कि पूर्ण अंश में परब्रह्म परमात्मा अवतार में समाया हुआ होता है। यदि यह माना जायगा तो ब्रह्माण्ड का कोई-न कोई भाग उससे रहित मानना पड़ेगा। ऐसा नहीं। यह भी कोई नहीं मानता कि परमात्मा की सब प्रकार की शक्तियाँ पूर्ण तीव्रता के साथ अवतार में उपस्थित होती हैं। अवतार भी मनुष्यों की भाँति भूलें करते देखे जाते हैं और उनकी अवहेलना करने वाले भी इस लोक में विद्यमान मिलते हैं। इस विषय में यही बात समझ में आती है कि परमात्मा सर्व-व्यापक है और विशेष पुरुषों में उसकी शक्ति अन्य मानवों से कहीं अधिक मात्रा में उपस्थित होती है।

राम का बाल्यकाल में ही ताड़का को मार गिराना मारीच और सुबाहु को युद्ध में भगा देना अवश्य ही अद्भुत कार्य थे जो राम ने किये थे। इसके साथ ही शिव के धनुष किसी मानव द्वारा जिसकी प्रत्यंचा भी नहीं चढ़ाई जा सकी थी राम-द्वारा प्रत्यंचा चढ़ाने में तोड़ा जाना भी एक विशेष बात थी।

कुछ भी हो यह परमात्मा नहीं तो एक अति-मनुष्य तो मानना ही पड़ेगा। वह परमात्मा की कृपा से नहीं तो अपने पूर्वजन्म के कर्म-फल से रावण को मारने में कृतकार्य हुआ।

वाल्मीकि जी को राम के चरित्र से परिचित कराते हुए नारद ने यह कहा था —

> बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
> मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥
>
> वा० रा० बाल० १।७

मुने ! जिन बहुत-से दुर्लभ गुणों का तुमने वर्णन किया है, उनसे युक्त नर को मैं विचारकर के कहता हूँ।

इस प्रकार नारद ने राम को नर कहकर स्मरण किया है। हाँ यह माना है कि राम के जन्म के समय महाराज दशरथ को पुत्र-प्राप्ति के लिए यज्ञ करना पड़ा था और सफलता के हेतु अभी यज्ञ किया ही जा रहा था कि (ऐसा लिखा है) सब देवता एकत्रित हो ब्रह्मा के पास पहुँचे और कहने लगे कि रावण को दिव्यास्त्र प्राप्त होने के कारण पराजय करने में इस भू-लोक पर कोई भी समर्थ नहीं—

उद्वेजयति लोकांस्त्रीनुच्छ्रितान् द्वेष्टि दुर्मतिः ।
शक्रं त्रिदशराजानं प्रधर्षयितुमिच्छति ॥८॥
ऋषीन् यक्षान् सगन्धर्वान् ब्राह्मणानसुरांस्तथा ।
अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः ॥९॥
तन्महन्नो भय तस्माद् राक्षसाद् घोरदर्शनात् ।
वधार्थं तस्य भगवन्नुपायं कर्तुमर्हति ॥११॥

वा० रा० बाल० १५।८-९, ११

उसने तीनों लोकों के प्राणियों का नाकों दम कर रखा है । वह दुष्टात्मा जिसको उन्नति करता देखता है उन्ही के साथ द्वेष रखने लगता है । वह इन्द्र को भी पराजित करने की अभिलाषा रखता है । आपसे आशीर्वाद प्राप्त कर वह ऋषियों यक्षों गन्धर्वों असुरों तथा ब्राह्मणों को भी पीड़ा देता है और अपमान करता है । वह राक्षस देखने में भी अतिभयंकर है । उससे हमें महान भय प्राप्त हो रहा है । अतः भगवन् ! उसके वध के लिए कोई उपाय करना चाहिए ।

यह लिखा है कि वहाँ उस सभा में यह विचार किया गया कि भगवान विष्णु दशरथ के घर जन्म लें वहाँ यह भी उचित समझा गया—

सत्यसंधस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः ।
विष्णोः सहायान् बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः ॥२॥
मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमान् जवे ।
नयज्ञान् बुद्धिसम्पन्नान् विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥३॥
असंहार्यानुपायज्ञान् दिव्यसंहननान्वितान् ।
सर्वास्त्रगुणसम्पन्नानमृतप्राशनानिव ॥

वा० रा० बाल० १७।२-४

ब्रह्मा ने सब देवताओं से कहा कि विष्णु सत्यप्रतिज्ञ वीर और हमारा हित चाहने वाले हैं । इस कारण तुम सबको उनकी सहायता के लिए ऐसे पुत्रों की सृष्टि करनी चाहिए जो बलवान इच्छानुसार रूप धारण करने वाले माया जानने वाले शूरवीर वायु के समान वेगशाली नीतिज्ञ बुद्धिमान विष्णु तुल्य पराक्रमी किसी से परास्त न होने वाले तरह-तरह के उपायों के जानकार, दिव्य शरीरधारी अमृतभोगी देवताओं के समान सब प्रकार की अस्त्र-विद्या के गुणों से सम्पन्न हों ।

कहने का अभिप्राय यह है कि देवताओं ने रावण को मारकर सृष्टि को भार-मुक्त करने का आयोजन किया था । ऐसा वाल्मीकि ऋषि ने वाल्मीकि

रामायण में मिलता है।

राम के तीन भाई और थे—लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न। राम और लक्ष्मण में घनिष्ठता सबसे अधिक थी। भरत और शत्रुघ्न में परस्पर अधिक पटती थी।

जब विश्वामित्र ताड़का और मारीचादि से पीड़ित किसी नवयुवक क्षत्रिय की सहायता के इच्छुक हुए तो वे राजा दशरथ के पास गये और उसके दो पुत्रों को माँग कर ले गये। विश्वामित्र ने उन दोनों भाइयों को भाँति-भाँति के दिव्यास्त्र दिये और उनके प्रयोग का ढंग सिखाया तथा उनसे ताड़का का हनन करवाया। मारीच भी मारा जाता यदि वह वहाँ से भाग न जाता।

रामादि के विवाह के पश्चात राम को युवराज पद पर सुशोभित करने का निश्चय हुआ तो राजा की सबसे छोटी रानी कैकयी के मन में ईर्षा उत्पन्न हो गई। राम बड़ी रानी कौशल्या का पुत्र था। कैकयी के लड़के का नाम भरत था। उसको यह समझ आया कि राज्य उसके लड़के को मिलना चाहिए। इस समय उसको एक बहुत पुरानी बात याद आ गई। उस समय महाराज दशरथ एक युद्ध में घायल हो गये थे। तब रानी कैकयी ने उनकी बहुत सेवा सुश्रुषा की थी। राजा ने प्रसन्न होकर उसको दो वर देने का वचन दिया था। रानी ने वे वर उस समय नहीं माँगे थे। उनके लिए महाराज को वचनबद्ध कर सुरक्षित कर लिए।

अब उसको वे वर स्मरण आये हों। अतः जब महाराज कैकयी से मिलने आये तो रानी ने वर माँग लिए। उन दो वरों में से उसने एक में तो अपने पुत्र भरत के लिए राज्य और दूसरे में राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास माँग लिया। राजा राज्य तो भरत को देने के लिए तैयार था परन्तु राम को वनवास देने के लिए तैयार नहीं होता था। इस पर दोनों में विवाद हुआ। इस विवाद का समाचार राम को मिला तो वह पिता के सामने आकर अपना वन जाने का निश्चय बता वन को चला गया।

राम गया तो राम की पत्नी सीता भी साथ चल पड़ी। लक्ष्मण राम से अति स्नेह रखता था। वह भी राम के साथ वन को चला गया।

वन में घूमते हुए राम, सीता और लक्ष्मण दण्डकारण्य में पहुँच गये। वहाँ पर रहने वाले मुनियों ने अपने कष्ट का वर्णन किया तो राम ने वहीं डेरा डाल लिया। संघर्ष अवश्यम्भावी था। वह हो गया। वहीं रावण की छोटी विधवा बहिन सूर्पणखा की दृष्टि उन पर पड़ जाने से वह दोनों भाइयों पर मोहित हो गई और उनमें से एक से विवाह करने का विचार करने लगी और

उसको प्रेरणा देने लगी। दोनों ने उसको अस्वीकार कर दिया तो शूर्पणखा को समझ आया कि दोनों सीता के स्वामी हैं और इसके रहते वे उसको स्वीकार नहीं करेंगे। अतः वह सीता को मारकर खा जाने के लिए दौड़ी। लक्ष्मण ने उसको रोककर उसके नाक कान काट उसे कुरूप कर दिया। यों तो वह मारे जाने के योग्य थी। उसने सीता को मार डालने का यत्न किया था परन्तु स्त्री जाति समझ लक्ष्मण ने उसको कुरूप कर देना ही पर्याप्त समझा।

इस पर शूर्पणखा खर के पास रोती-चिल्लाती पहुँची और खर ने दूषण को इन दोनों वनवासियों को मार डालने की आज्ञा देकर भेज दिया। दूषण मारा गया तो खर अपने चौदह सहस्र सैनिकों को लेकर इनको पकड़ने के लिए आया। राम ने सीता को लक्ष्मण सहित दूर वन में भेज दिया और स्वयं खर और उसके सिपाहियों से लड़ने लगा।

राम के पास वे सब दिव्यास्त्र थे जो विश्वामित्र ने उसको दिये थे। अगस्त्य मुनि ने भी उसको कई दिव्यास्त्र दिये थे। अतः राम को राक्षसराज तथा उसके भक्तों को मार डालने में कुछ विशेष कठिनाई नहीं हुई।

परन्तु इससे तो शूर्पणखा को और भी क्रोध चढ़ आया। वह अपने बड़े भाई रावण के पास गई और अपनी दुर्दशा का बदला लेने के लिए कहने लगी।

रावण राम के पराक्रम की बात सुन विस्मय करने लगा। तत्पश्चात् एक योजना बना सीता को हर लाया। वह सीता को अपनी रानी बनाना चाहता था। परन्तु सीता मानी नहीं।

राम और लक्ष्मण सीता को ढूँढते हुए किष्किन्धा पहुँच गए थे। वहाँ उनकी भेंट सुग्रीव से हो गई। सुग्रीव बाली का भाई था और बाली ने उसकी पत्नी तारा को बलपूर्वक अपनी पत्नी बना रखा था तथा सुग्रीव को मारने के लिए उद्यत हो गया था। सुग्रीव उस समय अपने कुछ मित्रों के साथ वन में जा छिपा था।

राम को सुग्रीव ने यह सूचना दी कि सीता-हरण रावण ने किया है और वह उसको लेकर दक्षिण की ओर गया है। इस पर सुग्रीव और राम में समझौता हो गया। राम ने उसको उसका राज्य एवं पत्नी को वापस दिलाया और सुग्रीव ने राम की रावण के विपरीत युद्ध में सहायता की।

वानरसेना के साथ राम और लक्ष्मण लंका पर चढ़ गये। लंका में घोर युद्ध हुआ और रावण अपने सब सम्बन्धियों और सहस्रों राक्षसों सहित मारा गया। सीता छुड़ाई गई और चौदह वर्ष की अवधि समाप्त होने पर राम लक्ष्मण और सीता वानराधिपति सुग्रीव तथा लंका-अधिपति विभीषण

के साथ अयोध्या पहुँच गये ।

ऐसा कहा जाता है कि राक्षसों का राज्य विभीषण के हाथ में आ जाने से वह असुर-राज्य न रहकर धर्मराज्य हो गया । वह संस्कृति जो रावण ने फैलाने के लिए राक्षसों को विन्ध्याचल के पार भेज उत्तरी आर्यावर्त को विजय करने का संकल्प किया था राम के इस महान् प्रयास से चल नहीं सकी ।

राम-रावण युद्ध और उससे पहले मत्स्यकाल इत्यादि से विष्णु का युद्ध वही पुरानी कहानी है जो आदिकाल से चली आती है । मुख्य रूप में दैवी और आसुरी सम्पदा दो ही प्रकार के मनुष्य उत्पन्न होते हैं । इन दो चरम सीमा-वर्ती (Extremes) स्वभावों के बीच में ही मानव मिलते हैं । एक प्रकार का स्वभाव कुछ कम अथवा दूसरे प्रकार का स्वभाव कुछ अधिक होने से मानव-मानव के आचरण में अन्तर पड़ता जाता है । वास्तव में हैं दो प्रकार के ही स्वभाव और इनमें संघर्ष होता है । जब आसुरी स्वभाव वालों के अत्याचार से दुःखी होकर प्रजा दैवी स्वभाव वालों से सहायता माँगती है तब ऐसे युद्ध होते हैं ।

यों तो ऐसे संघर्षों का एक ही परिणाम होता है । वह है दैवी प्रवृत्तियों की विजय । परन्तु इस विजय में कष्ट और हानि दैवी पक्ष वालों की भी उसी अनुपात में होती है, जितनी आसुरी प्रवृत्ति वालों में शक्ति होती है और आसुरी प्रवृत्ति का वे जिस त्याग और तपस्या के साथ विरोध करते हैं ।

इस पर भी भारतीय परम्परा के अनुसार इतिहास की इस घटना का वर्णन इस कारण किया है कि इस युग में युग-प्रवर्तक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई थीं ।

राम-रावण युद्ध से राक्षस समाज और दैवी समाज में सम्पर्क बढ़ा था । यह ठीक था कि रावण का भाई विभीषण धर्मपरायण और वेदानुसार आचरण करने वाला था । परन्तु जब दो जातियों में सम्पर्क बढ़ा तो न तो राक्षस समाज में सब-के-सब विभीषण थे और न ही मानव समाज में सब-के-सब राम । इसके पूर्व मानव देवता और राक्षस दोनों से दुर्बल माने जाते थे । राम-विजय ने दोनों को ह्रासोन्मुख कर दिया । राक्षस जाति के लोग तो समाप्त हो गये । वास्तव में वे मानव समाज में हिल-मिल गये । परिणामस्वरूप जहाँ मानव समाज में अनेकों राक्षस समुदाय की बातें स्वीकार हो गईं वहाँ राक्षसों ने भी आर्यों के अनेकों चलन स्वीकार कर लिए ।

दूसरी ओर देवताओं की समझ में भी आ गया कि वे ह्रासोन्मुख हैं ।

राम-रावण युद्ध के पश्चात् वे दूसरे देशों की राजनीति में हस्तक्षेप करते रहे परन्तु एक तटस्थ राज्य के रूप में। ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु, कुबेर, शिव की सन्तानों में वह ओज और बल नहीं रहा था जिससे वे देवताओं को लेकर युद्धभूमि में उतर सकें। केवल इन्द्र की राजनीतिक चालें ही चलती रहीं परन्तु उन चालों के पीछे बल न रह जाने से वे भ्रम-जालमात्र-सी हो गईं।

उनको अपनी रक्षा के लिए भी अब मानवों से सहायता लेनी पड़ती थी। इस पर भी अभी उनकी प्रतिष्ठा बनी थी।

यहाँ यह बात पुनः दुहरा देने की आवश्यकता अनुभव होती है कि देवता मनु की सन्तान नहीं थे। ऐसा होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार राक्षस दानव इत्यादि भी मनु की सन्तान में से नहीं थे इसका भी कहीं स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। मनु की सन्तान में दो वंश सूर्यवंश और चन्द्र वंश के लोग ही सिद्ध मिलते हैं। इसी आधार पर हमने देवताओं और राक्षसों को प्लावन-पूर्व की सृष्टि का बीज माना है। वे कैसे बच गये? और कहाँ पर बचे? यह स्पष्ट नहीं। इतना कुछ तो पता चलता है कि देवता मेरु पर्वत से घिरे हुए हिमालय पार प्रदेश में रहते थे। यह स्थान सम्भवतः तिब्बत ही था। इस बात के प्रमाण द्वापर युग में भी मिलते हैं।

राम-रावण युद्ध के पहले से ही देवताओं और राक्षसों में मेल-जोल था। यह मेल-जोल बनता और बिगड़ता रहता था। बिगड़ता तब था, जब राक्षसों में आसुरी प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती थीं। दोनों ही मानवों को अपने से दुर्बल मानते थे। प्रथम बार मानवों ने उस देवासुर-संग्राम में भाग लिया था जो अमृत मंथन के पश्चात् हुआ था। उसमें नर (मानवों का नरेश) अपना दिव्यास्त्र एवं धनुष लेकर युद्ध में सम्मिलित हुआ था। इस पर भी विजय मुख्य रूप में सुदर्शन चक्र के आश्रय से हुई थी।

राम-रावण युद्ध में यद्यपि दिव्यास्त्रों का प्रयोग हुआ था, परन्तु वे दिव्यास्त्र राम को देवताओं से प्राप्त नहीं हुए थे। वे राम को महर्षि विश्वामित्र और अगस्त्य ऋषि से मिले थे। इसके विपरीत रावण और मेघनाद के पास दिव्यास्त्र देवताओं के दिये हुए थे। देवता इस बात को अनुभव करते थे। जिसने इन्द्र को बन्दी बना लिया था उस इन्द्रजित को लक्ष्मण ने मार डाला था। जिसने वरुणादि देवताओं को पराजित कर उनकी कन्याओं का हरण कर लिया था उस रावण को राम के बाणों ने धराशायी कर दिया था।

उक्त ऐतिहासिक वृत्तान्त पढ़ते समय यह भी स्मरण रखना चाहिए कि विष्णु इन्द्रादि और ब्रह्मा की दिव्य-शक्तियों का यहाँ उल्लेख नहीं है। यह

द्वापर युग
शकुन्तला तथा भरत

इस ऐतिहासिक खोज में यह मत स्थिर हुआ है कि चन्द्रवंशियों में नैतिकता का वह गुण नहीं था जो सूर्यवंशियों में था। इला के पुत्र पुरूरवा के विषय में जो कुछ लिखने से ही चन्द्रवंशियों के परिवार के प्रथम पुरुष तथा उसके परिवार में होने वाले व्यक्तियों के चरित्र की एक झलक मिल जायेगी।

पुरूरवा के विषय में महाभारत में लिखा है—

> त्रयोदश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः ॥ १८॥
> अमानुषैर्वृतः सत्त्वैर्मानुषः सन् महायशाः ।
> विप्रैः स विग्रहं चक्रे वीर्योन्मत्तः पुरूरवाः ॥२ ॥
>
> म. भा. आदि ७५ । १९-२

अर्थात् पुरूरवा समुद्र के तेरह द्वीपों का शासन और उपभोग करता था। वह मनुष्य होकर भी मानवेतर प्राणियों से घिरा रहता था। वह अपने बल-पराक्रम से उन्मत्त हो ब्राह्मणों से झगड़ा करता था। ब्राह्मण बेचारे चीखते चिल्लाते रहते थे तो भी वह उनका सारा धन छीन लेता था।

वे प्राणी कौन थे जिनसे पुरूरवा की संगति रहती थी? हमारा इसमें यह मत है कि वे वानर और राक्षस लोग ही थे जो मनु के अतिरिक्त बच गये थे। यहाँ मानवेतर से पशु-पक्षी का अभिप्राय नहीं हो सकता। इस मत की इस

तो भूतल पर रहने वाले प्राणियों का ही उल्लेख है। ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड के नामों तथा अपने काल की बहुत-सी सृष्टि के प्राणियों के नाम वेदमंत्रों से ही रखे थे। इस कारण नामों में समानता दिखाई देती है।

एक बात और है वह यह कि बहुत से नाम तो स्वायम्भुव-पूर्व के प्राणियों के रख लिये गए थे। उदाहरण के रूप में इन्द्र, वरुण, विष्णु, पुलस्त्य इत्यादि। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय परम्परा में जैसे इतिहास लिखने का ढंग अपना था तथा वंशावलियाँ लिखने का ढंग भी अपना है वैसे ही वंश चलाने में सन्तान के मुख्य व्यक्ति का नाम पिता के नाम पर रखने की परम्परा भी थी। देवलोक के राजा इन्द्र कहलाते थे और देवलोक के राजपुरोहित ब्रह्मा कहलाते थे। देवलोक की रक्षा के लिए इन्द्र, विष्णु, कुबेर और वरुण चार सेनानायक और लोकपाल (राजा) थे।

सुदर्शन चक्र और विद्याओं के विषय में हम पहले लिख चुके हैं।

बात से पुष्टि होती है कि पुरूरवा भी समुद्र द्वीपों में राज्य करता था और पुलस्त्यसन्तान को भी समुद्र द्वीपों में रहने का अवसर मिला था। मानवेतर से अभिप्राय मनु की सन्तान के अतिरिक्त से ही है।

पुरूरवा का अपने वंश वालों से दूर और राक्षसों की संगति में रहने का ही प्रभाव मानना चाहिए कि वह अपने में उन सात्त्विक गुणों को धारण नहीं कर सका जिनको इक्ष्वाकु तथा उसके कुल वालों ने धारण किया था।

कुलों में प्रायः परम्पराएँ बन पड़ती हैं जिनका आधार केवल किसी परिवार में किसी प्रभावशाली व्यक्ति का आचरण होता है। यही बात चन्द्र वंशियों में हुई प्रतीत होती है। नहुष ययाति दुष्यन्त शन्तनु, धृतराष्ट्र दुर्योधन इत्यादि हमारे कथन के उदाहरण हैं।

एक बात और है जो धर्म और शास्त्र के ज्ञाता भी थे उनके आचरण में भी वह दृढ़ता नहीं पाई जाती जो अन्यत्र मिलती है। कदाचित् यही कारण था गीता के उपदेश देने में। यों तो मानवों में गुण-दोष सदा और सर्वत्र देखे गये हैं। इस पर भी जब किसी बात का उल्लेख इतिहास में आ जाये तो यह समझना चाहिए कि वे उन गुण अथवा दोष से ऐसे स्तर तक पहुँच गये हैं कि उनको बिना लिखे छोड़ा नहीं जा सका। जब किसी परिवार के इतिहास में दोषों का उल्लेख अधिक हो तो यह मानना ही पड़ेगा कि दोष उस ही भारी मात्रा में रहे होंगे।

दुष्यन्त चन्द्रवंश में द्वापर के मध्य में हुआ प्रतीत होता है। इसके पिता का नाम ईलिन था। दुष्यन्त पाँच भाई थे। दुष्यन्त सबसे बड़ा था। एक बार महाबाहु राजा दुष्यन्त बहुत से सैनिकों और साथियों को साथ लिए हुए, सैकड़ों हाथी घोड़ा से घिरे हुए चतुरङ्गिणी सेना के साथ एक घने वन में आखेट के लिए गये हुए थे। वन में पड़ाव पड़ा था। राजा इधर-उधर वन पशुओं का आखेट करता हुआ भ्रमण कर रहा था। इन्हीं भ्रमणों में एक दिन दुष्यन्त सेना से दूर निकल गया और महर्षि कण्व के आश्रम में जा पहुँचा। महर्षि उस समय आश्रम से बाहर गये हुए थे। आश्रम में उनकी पालित कन्या शकुन्तला थी। राजा दुष्यन्त शकुन्तला की रूपराशि देख उस पर मोहित हो गया। उसने उससे गन्धर्व विवाह का प्रस्ताव किया और उचित वचनों के पश्चात् दोनों का समागम हो गया।

समागम के पूर्व शकुन्तला ने राजा से महर्षि के आने तक प्रतीक्षा के लिए आग्रह किया था—

मुहूर्तं सम्प्रतीक्षस्व स ते तुभ्यं प्रदास्यति ।

दो घड़ी प्रतीक्षा करिये। वे ही मुझे आपकी सेवा में समर्पित करेंगे। दुष्यन्त ने प्रतीक्षा करने के स्थान पर कह दिया—

गान्धर्वराक्षसौ क्षत्रे धर्म्यौ तौ मा विशङ्किथाः।

अर्थात्—गन्धर्व और राक्षस विवाह दोनों क्षत्रिय जाति के लिए धर्मानुकूल हैं। अतः किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए।

तनिक ध्यान से पढ़ने पर और उस परिस्थिति पर विचार करने पर जब यह वाक्य कहा गया, यह एक निर्जन वन में अकेली लड़की को एक राजा की धमकी ही प्रतीत होगी। गन्धर्व विवाह करो अथवा राक्षसी विवाह तो किया ही जायेगा। अब गन्धर्व विवाह और राक्षसी विवाह के अर्थ भी समझ लेने चाहिए।

इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥३२॥
हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥३३॥

मनु ३।३२,३३

अर्थात् अपनी इच्छा से कन्या और वर का समागम हो तो वह कामियों का मैथुन्य विवाह गान्धर्व विवाह जानना चाहिये।

छीना झपटी मार-कुटाई हत्या करके गाली देती अथवा रोती हुई कन्या का बलपूर्वक हरण कर लेना राक्षसी विवाह कहलाता है।

दुष्यन्त ने शकुन्तला को अकेला जान और उसके आग्रह कि दो घड़ी ठहर जाय उसका पिता आता होगा, वे ही उसको दे सकते हैं, न मानकर उसका कहना कि गान्धर्व विवाह और राक्षसी विवाह दोनों क्षत्रियों के लिए उचित हैं, यह एक स्पष्ट रूप में धमकी थी कि वह उसकी काम-तृप्ति के लिए मान जाये अन्यथा वह उसको उठाकर ले जायेगा।

इस अवस्था में शकुन्तला ने बेबस हो कर राजा को समागम की स्वीकृति दी। तत्पश्चात् राजा कण्व महर्षि के आने से पहले वहाँ से चल दिया और फिर आश्रम में मुख नहीं दिखाया।

जब बारह वर्ष पश्चात् शकुन्तला अपने पुत्र को लेकर राजधानी में पहुँची और राजा को उस घटना का स्मरण कराया तो वह महानुभाव कहने लगा—

अब्रवीन्न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्टतापसि ॥१९॥
धर्मकामार्थसम्बन्धं न स्मरामि त्वया सह।
गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद् वापीच्छसि तत् कुरु ॥२०॥

न पुत्रमभिजानामि त्वयि जातं शकुन्तले ।
असत्यवचना नार्यः कस्ते श्रद्धास्यते वचः ॥७३॥
सर्वमेतत् परोक्षं मे यत् त्वं वदसि तापसि ।
नाहं त्वामभिजानामि यथेष्टं गम्यतां त्वया ॥८१॥

म भा आदि ७४ में म १२,२ -७३ ८१

राजा दुष्यन्त ने कहा दुष्ट तपस्विनी ! मुझको कुछ भी मालूम नहीं है । तुम किसकी स्त्री हो ? तुम्हारे साथ मेरा धर्म काम अथवा अर्थ को लेकर वैवाहिक सम्बन्ध कब स्थापित हुआ है ? इस बात का मुझे तनिक भी स्मरण नहीं । तुम इच्छानुसार जाओ रहो अथवा जैसी तुम्हारी रुचि हो वैसा करो ।

शकुन्तला के समझाने पर अन्तिम बात राजा ने कह दी :

शकुन्तला ! तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न इस पुत्र को मैं नहीं जानता । स्त्रियाँ प्रायः झूठ बोलने वाली होती हैं । कौन तुम्हारी बात पर विश्वास करेगा ?

तुम जो कुछ कहती हो वह मेरी आँखों के सामने नहीं हुआ । तापसि ! मैं तुमको नहीं पहिचानता । तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहीं चली जाओ ।

शकुन्तला चली जाने के लिए तैयार हो गई थी । परन्तु देवताओं ने साक्षी भरी कि वह उसका ही पुत्र है । इस कारण उसको उसे स्वीकार कर लेना चाहिए ।

ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओं (इन्द्रादि) ने दुष्यन्त को विवश किया था और फिर दुष्यन्त ने अपने पुत्र को स्वीकार करते हुए अपनी सफाई दे दी ।

अहं चाप्येवमेवैनं जानामि स्वयमात्मजम् ।
यद्यहं वचनादस्याः गृह्णीयामि ममात्मजम् ॥१७॥
भवेद्धि शंकयो लोकस्य नैव शुद्धो भवेदयम् ॥१८॥

म भा आदि ७४ ११७-११८

महाभारत के उसी अध्याय में उक्त श्लोक हैं । इनका अर्थ कुछ ऐसा ही जान पड़ता है कि जैसे अंग्रेज अपनी काल में राजा-महाराजाओं को उत्तराधिकारी स्वीकार कराते रहते थे । राजा-महाराजाओं की इच्छा के विपरीत भी जब किसी को उत्तराधिकारी घोषित किया जाता था तो राजा-महाराजा उसको स्वीकार कर लेते थे ।

जो कुछ भी हो दुष्यन्त की कथा महाभारत ग्रन्थ और अन्य वैद शास्त्रों की एक महान् कथा है ।

राजा दुष्यन्त के लिए महर्षि व्यास जी बहुत कुछ लिखते हैं। वे सब मानी सुप्रबन्धक चारों वर्णों के घटकों से उनके धर्म का पालन कराने वाले उनके राज्य में झूठ छल कपट का अभाव रोगों का अभाव धन्यादि की प्रचुरता इत्यादि सब कुछ लिखा है। परन्तु राजा के अपने स्वचरित्र के विषय में कुछ नहीं लिखा।

भूया धर्मपरैर्भावैर्मुदित जनमाविशत् ॥

अर्थात् जनता धर्मयुक्त भावना से सदा प्रसन्न रहती थी। परन्तु राजा स्वयं भी धर्म पालन करते थे अथवा नहीं एक शब्द नहीं लिखा।

महर्षि व्यासजी का यही गुण है कि वे सदा उतना ही लिखते हैं जितना सत्य था।

अतः हमारा निष्कर्ष है कि चन्द्रवंशियों में धर्म तथा नैतिकता का स्तर वह नहीं था जो भारतीय राजाओं के लिए उपयुक्त माना जाता था।

यह साहित्यिक कथा है अथवा कोई ऐतिहासिक घटना ? हमारा मत है कि यह दोनों ही हैं। जहाँ इस कथा में मानवीय गुण-दोष और प्रवृत्तियों का वर्णन है वहाँ उस काल के धर्म और सामाजिक आचार व्यवहार का वर्णन भी है।

हमने इस कथा को इतिहास की दृष्टि से ही लिखा है। चन्द्रवंशियों के प्रमुख काल में जब राजा-महाराजाओं का व्यवहार ऐसा था तो जनता का क्या होगा ? इसका अनुमान लगाया जा सकता है। उनके धर्मपरायण होने के अर्थ क्या हो सकते हैं, अनुमान का विषय है।

यदि इस बात को मान भी लिया जाये कि राजा दुष्यन्त शकुन्तला को जनता की दृष्टि में शुद्ध पवित्र सिद्ध करने के लिए ही यह सब नाटक कर रहा था तो भी उसका शकुन्तला को यह कहना कि एक क्षत्रिय के लिए गान्धर्व विवाह और राक्षसी विवाह दोनों मान्य हैं उस काल की पतितावस्था का वर्णन करते हैं। यह कथन वन में एक राजा किसी अकेली कन्या को पकड़े और वह भी उससे गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव करते समय यह लड़की को बहकाकर अपनी वासना तृप्ति के लिए मनाने से कम नहीं हो सकता।

समागम के पश्चात् यह जानते हुए कि लड़की का पिता एक-दो घड़ी में आने वाला है राजा का वहाँ पिता की प्रतीक्षा के लिए न ठहरना और फिर बारह वर्ष तक पत्नी की सुध न लेना एक ही बात प्रकट करता है कि वैवाहिकी कोई प्रेरणा नहीं प्रत्युत राक्षसत्व था। दुष्यन्त ने विवश होकर ही इसको माना था।

महाराज शान्तनु

कुरुक्षेत्र में महाराज प्रतीप एक यशस्वी राजा हुए हैं। उनके तीन पुत्र थे। उनके नाम थे देवापि, शन्तनु और बाह्लीक। देवापि सबसे बड़ा था परन्तु उसकी राज्यकार्य में अरुचि थी। इस कारण वह मोक्ष-मार्ग पर चल पड़ा और शन्तनु राज्य काज देखने लगा।

एक दिन राजा शन्तनु गंगा तट पर अकेले भ्रमण कर रहे थे कि उनको एक परम सुन्दरी कन्या दृष्टिगोचर हुई। वह अकेली थी। राजा ने उसका परिचय तक नहीं पूछा और उसको वरने की इच्छा प्रकट कर दी। उस स्त्री ने राजा की इच्छा इस शर्त पर स्वीकार की कि अपनी सन्तान से वह स्वेच्छा से व्यवहार करने के लिए स्वतन्त्र होगी। यदि उसने आपत्ति की तो वह उसको छोड़ जाएगी।

राजा इसका अर्थ नहीं समझा। न ही उसने पूछा। वह कामान्ध राजा उसको अपने प्रासाद में ले गया तथा उसको पत्नी बनाकर रखा।

वह गंगा थी। इसके जब भी कोई सन्तान होती वह उसको लेकर गंगा तट पर जाती तथा उसको जीवित ही उसमें बहा देती। इस प्रकार जब वह सात सन्तानों के साथ ऐसा कर चुकी तो राजा विक्षुब्ध हो उठा और आठवीं सन्तान के साथ भी उसने ऐसा करना चाहा तो राजा ने उसका हाथ पकड़ लिया।

इस पर गंगा ने यह कहा कि मैं इस सन्तान को आपके कहे अनुसार नष्ट नहीं करूंगी परन्तु अब मैं आपके पास अपनी विवाह की शर्त के अनुसार नहीं रहूँगी।

यह पुत्र देवव्रत था जो पीछे भीष्म के नाम से विख्यात हुआ।

समय पा महाराज शन्तनु वृद्ध हो गये। उन्होंने गंगा के पश्चात् विवाह नहीं किया। इस पर भी वह एक दिन गंगा के तट पर भ्रमण करते हुए अति मधुर सुगन्ध से चकित हुए। वे उस सुगन्ध के कारण की खोज करते हुए एक निषाद के झोंपड़े पर जा पहुँचे। उस निषाद से पूछने पर पता चला कि सुगन्धि उसकी लड़की से सदा आती रहती है। यह उसको महर्षि पराशर की की कृपा से प्राप्त हुई है।

इस पर शन्तनु ने उससे विवाह की याचना की तो निषाद ने यह शर्त रखी कि जब तक महाराज यह वचन नहीं देते कि उसकी लड़की सत्यवती का पुत्र ही राजगद्दी पर बैठेगा तब तक उसकी लड़की उनसे विवाह नहीं करेगी।

उस समय तक देवव्रत सज्ञान हो चुका था तथा वह प्रजागणों का प्रिय हो चुका था। और राजा उसको नाराज नहीं करना चाहता था।

इस कारण राजा निराश नगरी को लौट आया। देवव्रत ने यह देख लिया और जब उसने पिता से कारण पूछा तो पिता ने बताया—

अपत्यं नस्त्वमेवैकः कुले महति भारत ॥६३॥
अस्त्रनित्यश्च सततं पौरुषे पर्यवस्थितः ।
अनित्यतां च लोकानामनुशोचामि पुत्रक ॥६४॥
कथंचित् तव गाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम् ।
असंशयं त्वमेवैकः शतादपि वरः सुतः ॥६५॥
न चाप्यहं वृथा भूयो दारान् कर्तुमिहोत्सहे ।
संतानस्याविनाशाय कामये भद्रमस्तु ते ॥६६॥

म भा आदि प्र १

अर्थात्—शन्तनु ने कहा भारत ! तुम इस विशाल वंश में मेरे एक ही पुत्र हो। तुम भी सदा अस्त्र-शस्त्रों के अभ्यास में लगे रहते हो और पुरुषार्थ के लिए सदा उद्यत रहते हो। मैं इस जगत् की अनित्यता को लेकर निरन्तर शोक-ग्रस्त एवं चिन्तित रहता हूँ।

गंगानन्दन ! यदि तुम पर किसी प्रकार की विपत्ति आई तो उस दिन हमारा यह वंश समाप्त हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि तुम अकेले ही मेरे लिए सौ पुत्रों से बढ़कर हो।

मैं पुनः व्यर्थ विवाह करना नहीं चाहता किन्तु वंश-परम्परा का लोप न हो इसी के लिए मुझे पुनः पत्नी की कामना हुई है। तुम्हारा कल्याण हो।

यह वक्तव्य महर्षि व्यास जी ने शन्तनु के मुख से कहलवाया है परन्तु इतिहास को उज्ज्वल रखने के लिए पहले ही बता चुके थे—

स चिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीपतिः ।
प्रत्ययाद्धास्तिनपुरं कामोपहतचेतनः ॥५८॥

अर्थात्—राजा का चित्त काम की वेदना से चंचल था और वे निषाद-कन्या का चिन्तन करते हुए हस्तिनापुर को लौट आये।

देवव्रत पिता का हित करने के लिए उस निषाद के पास गया और उससे उसकी कन्या को माँग लिया। निषाद ने अपनी शर्त बताई और साथ यह भी कह दिया कि इस बात का विश्वास करने के लिए कि मेरी कन्या की सन्तान राजगद्दी पर बैठ सकेगी तुम भी वचन करो कि तुम भी सन्तान उत्पन्न नहीं करोगे।

देवव्रत ने ये दोनों वचन दिये और पिता के लिए पत्नी ले आया। देवव्रत ने अपने वचन का जीवन भर पालन किया।

इस अस्वाभाविक कर्म का फल अति भयंकर हुआ। महाराज शन्तनु

ने इस नवीन पत्नी सत्यवती से दो पुत्र उत्पन्न किये। एक चित्रांगद और दूसरा विचित्रवीर्य। बच्चे अभी अल्पायु ही थे कि सन्तनु का देहान्त हो गया। चित्रांगद तो बाल्यकाल में ही एक गन्धर्व से लड़ता हुआ मारा गया। विचित्र-वीर्य अभी सत्रह अठारह वर्ष का ही था कि महाराज काशिराज की तीन पुत्रियों का स्वयंवर हो रहा था और भीष्म (देवव्रत) वहाँ जा पहुँचा और उन तीनों लड़कियों को बलपूर्वक उठा लाया। उसने उनको अपने छोटे भाई विचित्र वीर्य को विवाह के लिए सौंप दिया।

यहाँ पर पुनः आठ प्रकार के विवाहों की विवेचना भीष्म के मुख से ग्रन्थकार ने कराई है और इस प्रकार के अपहरण को श्रेष्ठ बताया है।

स्वयंवरं तु राजन्याः प्रशंसन्त्युपयान्ति च
प्रमथ्य तु हृतामाहुर्ज्यायसीं धर्मवादिनः ॥ १ ९-१६

क्षत्रिय स्वयंवर की प्रशंसा करते हैं और उसमें जाते हैं परन्तु विद्वान् लोग समस्त राजाओं को पराजित करके कन्या का अपहरण करना क्षत्रिय के लिए सबसे श्रेष्ठ मानते हैं।

यह बर्बर प्रथा उस समय प्रचलित रही प्रतीत होती है। वैसे इसे स्मृति में श्रेष्ठ नहीं माना गया। स्मृति का कथन है—

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मता ॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥

॥ मनुस्मृति म ३ १९ ४ ४१४२ ॥

आठ प्रकार के विवाह (ब्रह्म देव आर्ष प्राजापत्य आसुर गान्धर्व राक्षस और पैशाच) लिखे हैं। इनमें प्रथम चार विवाहों में ही क्रम से ब्रह्म-तेजस्वी श्रेष्ठ मनुष्यों में प्रिय रूपवान पराक्रमी गुणवान बलवान यश वाली पुष्कल भाव वाली धर्मात्मा और १ वर्ष की आयु वाली सन्तान होती है।

शेष (पीछे के चार प्रकार के) दुष्ट विवाह की सन्तान निर्लज्ज झूठ बोलने वाली ब्रह्म (धर्म) धर्म द्वेषी उत्पन्न होती है इस कारण निन्दित विवाहों का त्याग करें।

काशिराज की तीन कन्याओं में सबसे बड़ी कन्या थी तो विचित्रवी*

ने विवाह से पहले ही कह दिया कि वह अपने मन से शाल्वराज को वर चुकी है इस कारण वह इस नये पति की भार्या नहीं बन सकेगी। इस पर भीष्म जी ने उसे जाने की स्वीकृति दे दी परन्तु वह कन्या जब शाल्वराज के पास पहुँची तो उसने लड़की को अशुद्ध मान अस्वीकार कर दिया। इस पर वह पुनः भीष्म जी के पास लौट आई और बोली कि वह स्वयं उससे विवाह कर ले। भीष्म जी वचनबद्ध थे अतः ऐसा कर नहीं सके। इससे वह परशुराम के पास गई और परशुराम इसे भीष्म की धृष्टता समझ उससे लड़ने चले आये। परशुराम बूढ़ा हो गया था। भीष्म पूरे यौवन पर था। वह उसको परास्त नहीं कर सका। इस पर काशिराज की यह कन्या चिता बना भस्म हो गई। तथा विचित्रवीर्य के साथ अन्य दोनों लड़कियों का विवाह कर दिया गया। दोनों का नाम अम्बिका अम्बालिका था।

विचित्रवीर्य की इनसे सन्तान नहीं हुई। वह अति दुर्बल होने से और दोनों पत्नियों के सुन्दर, यौवन-सम्पन्न होने के कारण बीमार हो गया तथा मर गया।

विचित्रवीर्य के मर जाने पर भी भीष्म ने विवाह नहीं किया। उसने सत्यवती को अपना वंश चलाने के लिए, अपनी दोनों पतोहुओं को नियोग से सन्तान उत्पन्न करने के लिए कह दिया।

यदि इतिहास का कुछ भी अर्थ है तो यह प्रथम दोनों कथाओं (शकुन्तला-भरत तथा महाराज शन्तनु) से अधिक कोई वृत्त पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इन वृत्तान्तों से जहाँ तत्कालीन आचार-विचार का ज्ञान होता है वहाँ उसके साथ ही चन्द्रवंश के तथा उस काल के देश की पतितावस्था का कारण भी स्पष्ट हो जाता है।

दुष्यन्त ने घोर पाप किया था। इस पाप का निराकरण कुछ सीमा तक भरत की श्रेष्ठ शिक्षा ने किया। भरत बहुत ही योग्य और वीर सम्राट सिद्ध हुआ। इस पर भी उस की पतितावस्था की परछाईं भरत के परिवार पर पड़ी रही। भरत की तीन रानियों से नौ पुत्र हुए। वे राजा के आचार विचार के नहीं हुए। राजा ने उनका तिरस्कार किया और रानियों ने उनको मरवा डाला।

परन्तु शान्तनु की बात तो अत्यन्त ही विलक्षण हुई। पहले गंगा का पुत्रों को, एक के पश्चात् दूसरे की हत्या करते जाना शान्तनु का आँखें मूँदे चुप रहना उसके पश्चात् वृद्धावस्था में कामाग्नि से पीड़ित हो पुत्र को मूक

वासुदेव कृष्ण

यदुवंश एवं पुरुवंश इस प्रकार चन्द्रवंश की दो शाखाएँ थीं। ययाति पत्नी देवयानी के पुत्र यदु ने जब अपना यौवन देना पसन्द नहीं किया तो ययाति ने उसको तथा उसकी माता को राज्य से निकाल दिया। यदु अपनी माता तथा भाइयों के साथ सौराष्ट्र में जाकर बस गया और उसने वहीं अपना राज्य जमा लिया। यदु के नाम से यदुवंश चला और पुरु जिसने अपने पिता को अपना यौवन उधार दिया था ययाति का उत्तराधिकारी बना। उसके नाम से पुरुवंश चला। पुरुवंश में ही एक तेजस्वी राजा कुरु हुआ है। उससे यह वंश कौरव वंश हो गया।

दूसरी ओर यदु से यदुवंश चला। इस वंश की भी कई उपशाखाएँ हो गई थीं। इसमें वृष्णि भोज और अन्धक मुख्य थीं। वृष्णिवंश के राजकुमार वसुदेव की सगाई मथुरा के देवक नाम के क्षत्रिय की लड़की देवकी से हो गई थी।

देवक उग्रसेन का छोटा भाई था। उग्रसेन मथुरा का राजा था परन्तु उग्रसेन का लड़का कंस बहुत ही बलशाली एवं दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति था। वह पिता के काल में ही स्वयं राजा बन बैठा। कंस को किसी ने भविष्यवाणी

सोचने लगना कि उसको वंश की चिन्ता लग रही है। उसके पश्चात् भीष्म का अपने छोटे भाई के लिए राक्षस विवाह को ही सर्वश्रेष्ठ मानना यह सब प्रकट करता है कि उस काल में धर्म स्मृति इत्यादि के अर्थ ही बदल दिये गए थे। अधर्म आचरण को ही धर्म माना जाने लगा था।

स्मृति का कथन सत्य हुआ कि इस प्रकार के विवाह से जैसा कि विचित्रवीर्य का हुआ था, धर्मनिष्ठ ओजस्वी और शूरवीर सन्तान नहीं हो सकती थी।

शान्तनु का सत्यवती से विवाह तो प्राजापत्य विवाह था जो प्रायः वैश्यों में होता था और विचित्रवीर्य का विवाह तो राक्षसी था और इसकी सन्तान निर्लज्ज झूठ बोलने वाली और धर्मविहीन हुई। इस पर एक बात और भी हुई कि अम्बिका का मन नियोग के समय नियोग के भावों से पूरा न भरा हुआ था।

परिणामस्वरूप धृतराष्ट्र उत्पन्न हुआ जो पूर्ण महाभारत के युद्ध का कारण हुआ।

की थी कि उसकी चचेरी बहिन देवकी का पुत्र उसको मारेगा। इससे कंस ने देवकी एवं उसके पति वसुदेव को पकड़कर बन्दी बना लिया। जिससे वह उसकी सन्तानों पर अधिकार रख सके और यथासम्भव उनकी बाल्य-काल में ही हत्या करा सके।

देवकी के घर एक-एक कर आठ सन्तान हुईं और कंस ने उन सब की जन्म होते ही हत्या कर डाली। आठवीं सन्तान के समय एक घटना घट गई। जिस समय यह सन्तान उत्पन्न हुई तब मध्यरात्रि थी। इस सन्तान से पहले कुछ लोगों के षड्यन्त्र से इस सन्तान को बचाने का प्रबन्ध हो चुका था। बालक होने के समय बन्दीगृह का द्वारपाल सो गया और वसुदेव बालक को लेकर बन्दीगृह से बाहर निकल गया। प्रबन्ध के अनुसार बालक को नन्दग्राम में पहुँचा दिया गया और नन्द की नवजात कन्या को लाकर देवकी के पास लिटा दिया गया।

दिन चढ़ने पर कंस को पता चला तो वह आया और उस लड़की को देवकी की सन्तान समझ मारकर चला गया।

देवकी का यह पुत्र कृष्ण था। नन्द ने इसका पालन-पोषण किया। कृष्ण अभी शिशु-मात्र ही था कि उसके तेज एवं बल की प्रशंसा कंस तक पहुँचने लगी।

एक दिन यशोदा शिशु कृष्ण को धूप से बचाने के लिए उसे एक छकड़े के नीचे सुला नदी पर स्वयं जल लेने गई हुई थी। शिशु की नींद खुली तो वह प्रसन्नता में हाथ-पाँव मारने लगा। इस चञ्चल कृष्ण ने पाँव के अँगूठे से छकड़े को धक्का लगा तो वह उलट गया। जब गाँव के लोगों ने यह देखा तो बालक के बल का अनुमान लगा वे चकित रह गये।

कंस ने यह कथा सुनी तो उसने इस बालक को मार डालने का यत्न किया परन्तु वह सफल न हो सका।

वसुदेव की एक अन्य पत्नी थी जिसका नाम रोहिणी था। उसके भी एक पुत्र था जिसका नाम बलराम था। जब कृष्ण चार-पाँच वर्ष की आयु का था तो बलराम को भी वहाँ भेज दिया गया। इससे तो कंस का सन्देह और सुदृढ़ हो गया कि नन्द का लड़का भी वसुदेव से सम्बन्ध रखता है। इस पर तो उसने कृष्ण को मारने का कई बार यत्न किया परन्तु किसी-न-किसी प्रकार सब प्रयत्न असफल रहे। कृष्ण का एक कार्य तो कंस को अत्यन्त भयभीत करने वाला सिद्ध हुआ। वृन्दावन के एक तालाब के किनारे एक कालिया नाग रहता था। यह अति भयंकर जीव था और अकेले दुकेले मानव को देखता तो मार कर

जा जाता था। सब लोग उससे डरते थे। एक दिन कृष्ण वहाँ पहुँचा तो वह कृष्ण को पकड़ने के लिए लपका। कृष्ण कूदकर उसकी पीठ पर चढ़ गया और उसको नाच नचाने। जब यह नृत्य बार-बार होने लगा तो नाग दुःखी हो उठा। इस पर कृष्ण ने उसको कह दिया तुम यहाँ से चले जाओ नहीं तो मैं तुमको मार डालूँगा। महाभारत में इस विषय में लिखा है—

ह्रदे नीपवने तत्र क्रीडितं नागमूर्धनि।
कालियं शासयित्वा तु सर्वलोकस्य पश्यतः।
विजह्रार ततः कृष्णो बलदेवसहायवान्।

अर्थात्—वृन्दावन में कदम्ब वन में एक ताल था। वहाँ वह कालिनाग के सिर पर चढ़कर नृत्य करने लगा। तदनन्तर उसने सबके सामने उसको आदेश दिया कि वह अन्यत्र चला जाये।

बलराम के साथ मिलकर वह अनेक शौर्य के कार्य करने लगा तो कंस ने इन दोनों को मरवा डालने का एक षड्यंत्र रचा।

मथुरा में पहलवानों का एक दंगल बुलाया। उसमें कृष्ण एवं बलराम को भी चुनौती भेज दी। यद्यपि नन्द एवं यशोदा इनके वहाँ जाने को पसन्द नहीं करते थे परन्तु दोनों भाई चुनौती को शुभ अवसर मान वहाँ जा पहुँचे।

मल्ल भूमि के द्वार पर कंस ने एक महान् आकार वाला हाथी खड़ा कर रखा था। हाथी के महावत को आज्ञा थी कि कृष्ण बलराम आयें तो हाथी उन पर छोड़ दे। कृष्ण इस बात को समझ गये और वह लपक कर हाथी की पूँछ पकड़ उसकी पीठ पर चढ़ गये तथा महावत को मार हाथी को भी मार डाला। इससे तो कंस बहुत विचलित हो उठा।

कंस ने कई पहलवान इन दोनों पर एकदम छोड़ दिये परन्तु इन्होंने न केवल उनको पछाड़ दिया प्रत्युत एक चाणूर नाम के पहलवान को एक ही घूंसे से मार डाला। यह देख तो सब पहलवान भाग खड़े हुए। अब कृष्ण ने कंस को ललकारा। कंस स्वयं लड़ना नहीं चाहता था और उठकर मल्ल भूमि से भाग जाना चाहता था परन्तु कृष्ण ने लपककर उसको पकड़कर भूमि पर चित्त पटक दिया तथा घूँसों एवं लातों से ही उसको मार दिया।

इससे पहले कृष्ण केशी नाम के दैत्य को मार चुका था। कंस के मारे जाने के पश्चात् उग्रसेन को मथुरा का राज्य सौंप दिया गया। उग्रसेन एक दुर्बल शासक था। वह मथुरा का राज्य कर नहीं सका।

कंस का श्वसुर था जरासंध। उसकी दो लड़कियाँ कंस से बिवाही हुई थीं। अतः उनके विधवा हो जाने पर जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण कर दिया।

कृष्ण और बलराम मथुरा की रक्षा करते रहे। सोलह बार आक्रमण हुआ तथा हर बार कृष्ण एवं बलराम ने मथुरा की रक्षा की। जरासंध बार-बार आक्रमण करता था। अन्त में कृष्ण मथुरा की रक्षा कर सकना असम्भव मान उग्रसेन को भी अपने साथ द्वारिका ले गया।

कृष्ण और बलराम ने उज्जयिनी के एक अति विद्वान् ब्राह्मण संदीपनि से शिक्षा प्राप्त की और फिर द्वारिका में रहने लगे।

अनेकानेक युद्धों में कृष्ण की योग्यता की प्रसिद्धि होने लगी तो भारत के नरेश उसका आदर करने लगे। द्वारिका उन्नति की ओर अग्रसर हुई। कृष्ण द्वारिका के सु प्रबन्ध में हाथ बँटाने लगा था।

इन दिनों भारत के उत्तर में हिमालय के पार्श्व में एक दैत्य भौमासुर ने बलशाली राज्य स्थापित कर लिया था। भौमासुर का दूसरा नाम नरकासुर था। यह एक ओर तो मानवों तथा दूसरी ओर देवताओं को कष्ट पहुँचाने लगा। उनकी धन-सम्पदा और सुन्दर स्त्रियों को लूट-झूटकर वह अपने यहाँ जमा करने लगा। एक बृहद् सेना को एकत्रित कर वह अपनी रक्षा कर रहा था। देवलोक की समस्त अप्सराओं गन्धर्वों की कन्याओं और मानवों की सुन्दर कन्याओं का हरण कर वह अपने प्राग्ज्योतिषपुर के प्रसाद में रखे हुए था। परिणाम यह हुआ कि त्राहि-त्राहि मच गई। इससे देवता सबसे अधिक कष्ट में थे। इस पर भी वे युद्ध करने की या तो क्षमता नहीं रखते थे अथवा युद्ध करना नहीं चाहते थे।

एक दिन भौमासुर ने इन्द्र को उत्तेजित करने के लिए उसकी माँ अदिति के कुण्डल चुरा लिए। अदिति ने इन्द्र को कहा। इन्द्र ने इस असुर को मारने की एक योजना विचार की। उसका विचार था कि कृष्ण नवयुवक है और वह भौमासुर को द्वन्द्व-युद्ध में ललकार कर मार डालेगा। अतः इन्द्र अपने विमान से कृष्ण से सहायता माँगने द्वारिका जा पहुँचा। इन्द्र को आया देख उसका महान् स्वागत किया गया और उसके आने का कारण पूछा गया। जब इन्द्र ने अपने आने का प्रयोजन बताया तो कृष्ण ने स्थान के ऊबड़-खाबड़ होने की कठिनाई का वर्णन किया और इस कठिनाई को पार करने के लिए दो वस्तुएँ माँग लीं। एक तो गरुड़ विमान और दूसरा सुदर्शन चक्र।

यद्यपि इन्द्र इनको देना नहीं चाहता था परन्तु जब कृष्ण ने बताया कि इनके बिना उस पहाड़ी देश में युद्ध जब नहीं सकेगा तो इन्द्र को विवश होकर दोनों पदार्थ लाकर देने पड़े।

कृष्ण गरुड़ पर सवार हो और सुदर्शन चक्र लेकर भौमासुर से लड़ा।

कृष्ण ने भौमासुर की पूर्ण नगरी का ध्वंस कर डाला तथा भौमासुर को मौत के घाट उतार दिया। जब प्राग्ज्योतिषपुर पर कृष्ण का अधिकार हुआ तो उसके दुर्ग में से कई प्रकार के रत्न अपार स्वर्ण रजत और संसार-भर की सुन्दर स्त्रियाँ निकलीं। कृष्ण स्त्रियों और पूर्ण धन-सम्पदा तथा रत्न भी द्वारिका ले गया।

पहले वह द्वारिका गया। वहाँ से वह रुक्मिणी को भी अपने साथ गरुड़-विमान पर बैठा देवलोक जा पहुँचा। इन्द्र की माँ के कुण्डल पहुँचाने थे। इन्द्र भौमासुर की मृत्यु का समाचार पा अति प्रसन्न हुआ और कृष्ण तथा रुक्मिणी को माता अदिति के पास ले गया। अदिति ने दोनों का बहुत आदर-सत्कार किया।

कृष्ण रुक्मिणी को लेकर मेरु पर्वत के शिखर पर चढ़ गया और वहाँ से उसने देवलोक के दर्शन किये। उसने देखा कि ब्रह्मा का स्थान कहाँ है तथा कुबेर की अलकापुरी किधर है। अन्य सब देव-स्थान भी देखे।

कृष्ण ने अपने जीवन काल में—

निहता मौरवा पाशा निसुन्दनरकौ हतौ
कृतःक्षेमः पुनः पन्था पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति
शौरिणा पृथिवीपालास्त्रासिता भरतर्षभ
धनुषश्च प्रणादेन पाञ्चजन्यस्वनेन च ॥

मुरा दैत्य के पाश काट दिये निसुन्द और नरकासुर को मार डाला तथा प्राग्ज्योतिष का मार्ग निष्कण्टक कर दिया। इसने अपने धनुष की टंकार और पाञ्चजन्य शंख की हुंकार से समस्त भूपालों को आतंकित कर दिया।

रुक्मिणी के विवाह में रुक्मिणी का भाई रुक्म बाधा डालता था। कृष्ण ने रुक्म को हराकर रुक्मिणी से विवाह किया और उसको अपनी पटरानी बनाया।

इस प्रकार एक दीर्घकाल योद्धा की ख्याति प्राप्त करने के उपरान्त ही कृष्ण का घनिष्ठ सम्पर्क कुरुवंशियों से हुआ।

कौरव-पाण्डव युद्ध

विचित्रवीर्य की अकाल मृत्यु के कारण वंश परम्परा चलाने वाला कोई नहीं रहा था। भीष्म अपने पिता को उनके दूसरे विवाह के हेतु वचन दे

चुका था कि वह आजन्म विवाह नहीं करेगा ।

विचित्रवीर्य के विवाह के लिए भीष्म ने काशिराज की कन्याओं का अपहरण किया था । यह विवाह शास्त्रानुसार आसुरी था और इसका सम्भावित प्रभाव होने वाली सन्तान पर हम लिख चुके हैं । आसुरी विवाह की सन्तान निर्लज्ज झूठ बोलने वाली सत्य (ब्रह्म) धर्म की विरोधी होती है । विवाह का यह प्रभाव सन्तान पर क्यों होता है ? इसका सम्भवतया कारण माँ के मन पर अपहरण के दूषित संस्कार ही होते हैं ।

यह प्रभाव अम्बिका एवं अम्बालिका के मन पर हुआ होगा अथवा नहीं एक काल्पनिक (Hypothetical) प्रश्न है । इसका उत्तर आगे घटने वाली घटना ही दे सकती है ।

इन दोनों कन्याओं के घर में विचित्रवीर्य से तो सन्तान नहीं हुई परन्तु विचित्रवीर्य से विवाह के पश्चात् एक अनिच्छित व्यक्ति के साथ इनका नियोग कराया गया । वह व्यक्ति स्वयं अपने विषय में लिखता है

> यदि पुत्रः प्रदातव्यो मया भ्रातुरकालिकः ।
> विरूपतां मे सहतां तयोरेतत् परं व्रतम् ॥४१॥
> यदि मे सहते गन्धं रूपं वेषं तथा वपुः ।
> अद्यैव गर्भं कौसल्या विशिष्टं प्रतिपद्यताम् ॥४७॥

महा० आदि० १ ४६

महर्षि व्यास द्वैपायन जी को अम्बिका से नियोग के लिए कहा । तब व्यास जी ने कहा कि यदि मुझसे यह कार्य कराना है तो उस देवी को मेरे *असुन्दर रूप को देखकर डरना नहीं चाहिए । यदि अम्बिका मेरे गन्ध रूप और* शरीर को सहन कर ले तो एक उत्तम बालक को जन्म देगी ।

व्यास जी के शरीर का रंग काला जटाएँ पिंगल आँखें चमकीली दाढ़ी-मूछ भूरे रंग की थी । जब यह महानुभाव अम्बिका के पास गये तो उसने भयभीत हो आँखें मूँद लीं ।

इस समागम का फल हुआ धृतराष्ट्र । यह चक्षुविहीन निर्लज्ज झूठा और धर्मविरोधी स्वभाव वाला व्यक्ति था । इससे सत्यवती सन्तुष्ट नहीं हुई । उसने विचित्रवीर्य की दूसरी पत्नी अम्बालिका से नियोग के लिए कहा । उसको बहुत समझाया गया कि उसने डरना नहीं । उससे किसी प्रकार की मन में चिन्ता अथवा निराशा अनुभव नहीं करनी चाहिए । इस पर भी जब व्यास जी महाराज उसके पास गये तो वह इतनी भयित हुई कि पीत मुख हो निश्चल पड़ी रही ।

अम्बालिका के भी एक लड़का हुआ । यह पाण्डु वर्ण ही हुआ । सत्य-

स्त्री को इस पुत्र पर भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने अपनी बड़ी पतोहू को एक अन्य बालक प्राप्त करने के लिए आग्रह किया। वह मान गई, परन्तु अन्तिम समय में उसका मन नहीं माना और उसने अपनी दासी को महर्षि के पास भेज दिया। इस दासी के भी एक लड़का हुआ। इस प्रकार इस नियोग कार्य से तीन बालक हुए—धृतराष्ट्र पाण्डु एवं विदुर। राज्य के विषय में उत्तराधिकारी धृतराष्ट्र और पाण्डु ही थे। सत्यवती और भीष्म जी के विचार से यह निश्चय हुआ कि धृतराष्ट्र राजा होगा परन्तु उसके स्थान पर पाण्डु राज्य करेगा और इन दोनों में से जिसका पुत्र पहले होगा वही युवराज पद पायेगा।

यद्यपि विवाह धृतराष्ट्र का प्रथम हुआ था तो भी पाण्डु के पहले पुत्र हुआ। एक बात हुई कि पाण्डु रुग्ण होने के कारण स्वयं सन्तान उत्पन्न करने में अयोग्य था। अतः उसकी दोनों पत्नियों ने नियोग से पाँच पुत्र प्राप्त किये। इनमें युधिष्ठिर सबसे बड़ा था। यह धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन से बड़ा था।

पाण्डु के पाँचों पुत्र वन में ही उत्पन्न हुए तथा वहीं पले। जब पाण्डु का देहान्त हो गया तो वे अपनी माता कुन्ती के साथ अपनी दादी एवं परदादी के पास आ गये। इनके आने से भीष्म ने अपने वचन के अनुसार युधिष्ठिर को युवराज बनाना चाहा परन्तु तब तक धृतराष्ट्र के भी पुत्र उत्पन्न हो चुके थे। अतः धृतराष्ट्र की पत्नी तथा साले शकुनि ने इस निर्णय का विरोध किया। कलह उत्पन्न हो गई।

यह कलह दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। यहाँ तक कि दुर्योधन और उसके भाई (धृतराष्ट्र के पुत्र) पाण्डवों (युधिष्ठिर इत्यादि) की जान के घन हो गये।

पाण्डवों में भीम बहुत बलशाली था। उसके रहते दुर्योधन अपने बुरे कार्यों का किसी प्रकार से भी अहित नहीं कर सकता था। अतः भीम को विष देकर मार डालने का यत्न किया गया। भीम शरीर से अति पुष्ट होने के कारण बच गया। विष से केवल मूर्छा ही हुआ। यह बात भी [illegible] भीष्म तथा धृतराष्ट्र इत्यादि को पता चल गई थी परन्तु पुत्र प्यार के वश वे दुर्योधन को दण्ड न दे सके। इससे दुर्योधन और उसके [illegible] एवं उनके मामा शकुनि का साहस बढ़ गया।

जब युधिष्ठिर को युवराज घोषित करने का विचार निश्चित होने लगा तो दुर्योधन ने युधिष्ठिर को पृथक राज्य देने का आग्रह करना आरम्भ कर दिया। धृतराष्ट्र और भीष्म ने भी कलह के [illegible] को मिटाने के लिए

यही उचित समझा और पाण्डवों को वारणावत का राज्य देकर हस्तिनापुर से विदा कर दिया। परन्तु दुर्योधन ने जो भवन उनके रहने के लिए वहाँ निर्माण कराया वह लाख और अन्य तुरन्त जल उठने वाले पदार्थों का बना हुआ था। यह प्रासाद बहुत सुन्दर बना और ऐसा प्रतीत होता था कि ईंट, चूना मिट्टी का बना हुआ है। वास्तव में दुर्योधन ने वह पाँचों पाण्डवों को उनकी माता सहित जीवित जला देने के लिए बनवाया था।

मकान का यह रहस्य युधिष्ठिर को मालूम हो गया था और उन्होंने मकान के अन्दर से एक सुरंग बना ली जो दूर गंगा तट पर जाकर निकलती थी। जब मकान को आग लगी तो पाँचों भाई अपनी माता सहित बचकर निकल गये।

उनका विचार था कि उनको बच गया देख दुर्योधनादि कौरव उनको मरवा डालेंगे और घोषित कर देंगे कि वे मकान में ही जल गये हैं। इस कारण उन्होंने कुछ काल तक गुप्तवास करना ही उचित समझा। वे ब्राह्मण के भेष में गुप्त रूप से भ्रमण करते रहे।

वे अभी गुप्तवास में ही थे कि उनको महाराज द्रुपद की लड़की द्रौपदी के स्वयंवर की सूचना मिली। उस स्वयंवर में द्रौपदी से विवाह करने की एक अति कठिन शर्त रखी गई थी। एक ऊँचे खम्भे के साथ एक कृत्रिम मछली लटकती हुई घूम रही थी। उसके नीचे एक चक्र घूम रहा था और भूमि पर एक जल-कुण्ड था। जल की ओर देखते हुए बाण द्वारा चक्र में से मछली की आँख को बींधना था।

इस स्वयंवर में देश-देशान्तर से अनेकों राजा-महाराजा आये थे और द्रौपदी को विवाह में प्राप्त करने की शर्त पूरी करने का यत्न कर विफल हो गये थे। पाँचों पाण्डव भी ब्राह्मण के भेष में इस उत्सव में उपस्थित थे। जब उन्होंने देखा कि स्वयंवर की शर्त को कोई पूर्ण नहीं कर रहा तो अर्जुन ने जो इन पाँचों म सबसे योग्य धनुर्धर था आगे बढ़ इस शर्त को सहज ही पूर्ण कर दिया।

इस पर तो द्रौपदी ने जयमाला अर्जुन के गले में डाल दी। परन्तु द्रौपदी के भाई व अन्य क्षत्रियों ने द्रौपदी का विवाह एक निर्धन ब्राह्मण के साथ होने देना स्वीकार नहीं की। उन लोगों ने द्रौपदी को अर्जुन के साथ जाने में बाधा डाली तो भीम और अर्जुन उन राजा-महाराजाओं से भिड़ गये। इन दोनों को सब राजा-महाराजा मिलकर भी द्रौपदी को ले जाने से रोक नहीं सके। द्रौपदी का भाई प्रद्युम्न तो अपनी पूर्ण सेना को बुलाने वाला था परन्तु कृष्ण और

बलराम को स्वयंवर में आये हुए थे प्रद्युम्न को रोककर कहने लगे तुम्हारी बहिन स्वेच्छा से उनके साथ जा रही है इससे तुमको बहिन की इच्छा का विरोध नहीं करना चाहिए। वे क्षत्रिय न सही पर ब्राह्मण तो हैं ही। ब्राह्मण क्षत्रियों से अधिक श्रेष्ठ माने जाते हैं।"

पीछे कृष्ण वहीं गया जहाँ पाण्डु गुप्त रूप से ठहरे हुए थे और उनको पता चल गया कि ये पाण्डव हैं जो वारणावत की अग्नि से बच गये हैं। पाण्डु की पत्नी कुन्ती कृष्ण की सगी बुआ थी। वह वसुदेव की बहिन थी जिसको महाराज कुन्तिभोज ने गोद लिया हुआ था। अतः कृष्ण उनको पहिचानकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी बुआ के चरण-स्पर्श कर, नमस्कार कर उनको प्रकट हो जाने की सम्मति देने लगा।

महाराज द्रुपद भी इस समाचार से अति प्रसन्न हुआ। द्रौपदी का विवाह पाँचों भाइयों से कर दिया गया। इसके पश्चात् पाण्डवों को पुनः हस्तिनापुर में मानयुक्त स्थान दिलवाया गया। इस बार धृतराष्ट्र पर कृष्ण द्रुपद और अन्य सम्बन्धियों ने दबाव डालकर युधिष्ठिरादि को खाण्डवप्रस्थ का राज्य दिला दिया और उनको अपने राज्य की राजधानी इन्द्रप्रस्थ बनाने के लिए कहा गया।

पाण्डवों ने अपने सु-प्रबन्ध और धर्मयुक्त व्यवहार से अपने राज्य की बहुत उन्नति की और इसको सेना तथा धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया। इस काल में कृष्ण और अर्जुन में घनिष्ठ मैत्री का व्यवहार बन गया और फिर कृष्ण की बहिन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हो गया।

इस प्रकार उन्नतावस्था में पहुँचकर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया। कृष्ण को बुलाया गया और उसकी सम्मति ली गई। इस समय तक कृष्ण अनेकों समर जीत चुका था और उसकी एक राजनीतिज्ञ के रूप में ख्याति भारत-खण्ड में विस्तार पा चुकी थी।

कृष्ण ने युधिष्ठिर के विचार का समर्थन किया परन्तु उसकी सम्मति थी कि इसके यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने में तीन व्यक्ति बाधक होंगे—एक दुर्योधन दूसरा शिशुपाल एवं तीसरा जरासंध। इस कारण पहिले इनको पृथक्-पृथक् पराजित कर लिया जावे पश्चात् ही इस यज्ञ की योजना करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में विचार किया गया और सबसे पहले जरासंध को निःशेष करने के लिए भीम को लेकर कृष्ण और अर्जुन जरासंध के राज्य की राजधानी में जा पहुँचे। जरासंध मगध देश में राज्य करता था। उसका निवास गिरिव्रज नगर में था। ये तीनों भेष बदलकर वहाँ जा पहुँचे और जरासंध को मल्ल

युद्ध की चुनौती देने लगे।

जरासंध और भीम में मल्ल-युद्ध हुआ और चौदह दिन के निरन्तर मल्ल-युद्ध के पश्चात् भीम ने जरासंध को मार डाला।

जरासंध की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन को अपने पक्ष में करने के लिए महर्षि व्यास को धृतराष्ट्र के पास भेजा गया। महर्षि व्यास ने धृतराष्ट्र को समझाया परन्तु दुर्योधन ने युधिष्ठिर के यज्ञ में बाधा डालने की घोषणा कर दी। इस पर द्रोणाचार्य और भीष्म ने युधिष्ठिर की ओर से लड़ने की धमकी दे दी। इस प्रकार दुर्योधन को विवश होकर मानना पड़ा।

युधिष्ठिर ने तब पूर्णकाल पृथ्वी के राजा-महाराजाओं को अपने अनुकूल कर लिया और राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया। शिशुपाल ने यज्ञ में विघ्न डालने का प्रयत्न किया परन्तु कृष्ण ने उसको मार डाला।

यज्ञ की सफलता और पृथ्वी भर के नरेशों को युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार करते देख दुर्योधन की छाती पर साँप लोटने लगा। वह यज्ञ से चिन्ता और शोक से भरा हुआ हस्तिनापुर लौटा।

दुर्योधन का मामा एक सिद्धहस्त जुआरी था। अतः उसने दुर्योधन के साथ मिलकर षड्यंत्र रचा और युधिष्ठिर को हस्तिनापुर बुला लिया। वहाँ उसको जुआ खेला कर उसका सब राजपाट भाई और द्रौपदी को भी जीत लिया। इस जीत में एक अन्याय पूर्ण बात हो गई थी। युधिष्ठिर ने पहले अपने को हारा पश्चात् अपने भाइयों को तथा अन्त में द्रौपदी को। अनुचित से यह अद्भुत बात हो गई थी इस कारण यह खेल निरर्थक समझा गया परन्तु एक बाजी और लगाने की शर्त हो गई। उसमें यह निश्चय हुआ कि जो जीते वह पूर्ण राज्य का भागी बने और हारने वाला बारह वर्ष तक वन में रहे तथा तेरहवें वर्ष में गुप्तवास करे। यदि गुप्तवास में न पकड़ा जावे तो राज्य पा जायेगा अन्यथा वह पुनः तेरह वर्ष तक उसी प्रकार वन में विहार करे। युधिष्ठिर इस बार फिर हार गया।

युधिष्ठिर को द्रौपदी और भाई समझाते रहे कि वह जुआ खेलना बन्द कर दे परन्तु युधिष्ठिर नहीं माना और परिणाम स्वरूप राज्य-पाट सब दुर्योधन को हार गया। तत्पश्चात् पाण्डव द्रौपदी सहित वन को चले गये। वन में भी दुर्योधन उनको कष्ट पहुँचाता रहा परन्तु पाण्डवों ने ज्यों-त्यों कर वनवास की शर्त पूर्ण कर दी।

जब वे लौटकर अपना राज्य वापस पाने आये तो दुर्योधन ने राज्य वापस नहीं किया। इन तेरह वर्षों में दुर्योधन ने युधिष्ठिर की बहुत निन्दा की।

युधिष्ठिर के जुए में सब-कुछ हारने पर देश के नरेशों के मन में युधिष्ठिर की महिमा बहुत-कुछ कम हो चुकी थी। इस पर भी जब युद्ध होना अनिवार्य ही गया तो पाण्डवों के सब सम्बन्धी पाण्डवों की सहायता के लिए आ गये।

यद्यपि पाण्डवों ने जुआ खेला था परन्तु उन्होंने किसी दूसरे का अधिकार नहीं छीना था। कौरवों ने तो पाण्डवों के साथ आरम्भ से ही दुर्व्यवहार किया था और जुए में भी कपट का खेल खेला था। जुए की अन्तिम बाजी में जो शर्त हुई थी उसको पूर्ण करने पर भी दुर्योधन की ओर से वचन भंग हुआ था। यह सब बात कृष्ण व्यास भारद्वाज तथा धर्म विद्वानों ने समझाई थी परन्तु दुर्योधन नहीं माना। उसको अभिमान हो गया था कि उसका पक्ष प्रबल है। और युद्ध हो गया।

पाण्डवों की ओर से सात अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई तथा कौरवों की ओर से ग्यारह अक्षौहिणी सेना। कुरुक्षेत्र की मरुभूमि में युद्ध हुआ। सब बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं और दोनों ओर की पूर्ण सेना का विनाश हो गया।

इस युद्ध में सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और नीति तथा छल-कपट का भी व्यवहार हुआ। दुर्योधन की हत्या के पश्चात् अश्वत्थामा ने रात के समय पाण्डवों के शिविर को आग लगा दी और वहाँ पर सोये हुए सब प्राणियों की हत्या कर दी। घटनावश पाण्डव उस रात पूजन के लिए कहीं गये हुए थे इस कारण बच गये। शेष सब मारे गये।

भारत के इतिहास में यह एक अति महान् भयंकर घटना घटी थी।

भगवान कृष्ण ने गीता में आसुरी सम्पत्ति वालों के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं :

> प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
> न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥
> असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
> अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥
> एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
> प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥
> काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
> मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥
> चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
> कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥ १२ ॥
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥
आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

अर्थात्—असुर लोग नहीं जानते कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। उनमें शुद्धता नहीं रहती न आचार रहता है और न सत्य ही।

वे लोग समझते हैं कि सारा जगत् ही असत्य है। अप्रतिष्ठित और निराधार है। बिना परमेश्वर के है। यह जगत् भोग-विलास के अतिरिक्त कुछ नहीं। किसी का आश्रय इसमें नहीं (अर्थात कोई किसी का नहीं बनता)। ऐसी बुद्धि वाले अल्प बुद्धि नष्ट होने वाले दुष्ट कार्य करते हुए जगत का नाश करने में कारण होते हैं।

काम-क्रोध जो कभी भी पूर्ण नहीं होते की पूर्ति के लिए दम्भ मान मद से भरे रहते हैं। झूठा विश्वास और कल्पना करके बुरे कर्म करते हैं।

मरणपर्यन्त सुख भोगने की चिन्ता में फँसे हुए कामोपभोग में डूबे हुए सैकड़ों आशा-पाशों से जकड़े हुए, काम-क्रोध परायण सुख लूटने के लिए अन्याय से बहुत-सा धनसंचय करने की तृष्णा करते हैं।

मैंने आज यह पा लिया है कल यह पा लूँगा यह मेरा है और यह भी मेरा होगा' इसको मैंने मार लिया तथा उसको भी बरबाद कर लूँगा।

म ईश्वर हूँ। मैं भोग करने वाला हूँ। मैं सिद्ध हूँ। बलवान हूँ। सुखी हूँ। सम्पन्न हूँ। कुलीन हूँ। मेरे समान और कोई नहीं।

आत्मप्रशंसा करने वाले ऐंठ से बर्ताव करने वाले धन और मान के मद से संयुक्त दम्भ से अयथार्थ (यज्ञ) कार्य का दिखावा करते हैं। अहंकार के बल से दर्प से काम और क्रोध से जलकर द्वेष करने वाले असुर होते हैं।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि परमात्मा ऐसे लोगों को घोर नरक में डाल

कर जन्म-जन्मान्तर तक इतर योनियों में डालता रहता है।

असुर लक्षणों के प्रकाश में कौरव-पाण्डवों की जीवन-कथा पढ़ने से भारत युद्ध के होने का कारण भलीभाँति समझ आ जाता है। भारत युद्ध एक अति भयंकर युद्ध था। इसमें अठारह अक्षौहिणी सेना का नाश हुआ था। एक अक्षौहिणी सेना में २१८७० रथ ११८७० हाथी १ ६३५ पदल सैनिक और ६५६१० घुड़सवार होते थे।

यदि रथ में एक योद्धा और एक सारथी माना जावे और हाथी पर भी एक महावत और एक योद्धा समझा जावे तो एक अक्षौहिणी सेना में ४३७४ +४३७४ +१ ६३५ +६५६१ =२६२४४ मनुष्य लड़ने वाले रहे होंगे अर्थात् अठारह अक्षौहिणी सेना में २६२४४ ×१८=४७२३९२ मनुष्य रहे होंगे जो सब-के-सब मारे गये। यह कम-से-कम संख्या रही होगी। इतने योद्धाओं के इतने ही सेवक समझ लेने चाहिए।

इस भयंकर युद्ध में इतना बड़ा हत्याकाण्ड और केवल १८ दिन में होने का कारण इतिहास ने बहुत स्पष्ट रूप में वर्णन किया है।

इस युद्ध में दुर्योधन का व्यवहार ठीक आसुरी प्रवृत्ति वालों का-सा रहा है। यदि दुर्योधन के व्यवहार का विश्लेषण किया जावे तो निम्न घटनाएं उसके पक्त स्वभाव को प्रकट करती हैं। (१) परिवार के पुरखाओं के निर्णय अनुसार युधिष्ठिर सबसे बड़ा होने के कारण राज्य का अधिकारी था। धृतराष्ट्र और दुर्योधन ने यह निर्णय उलट दिया। (२) दुर्योधन ने भीम को मार डालने का षड्यंत्र किया। (३) पाँचों भाइयों को उनकी माता सहित लाक्षा-गृह में जला देने का यत्न किया। (४) कपट-पूर्ण जुआ खेला। (५) वन में उनको मार डालने का यत्न किया। (६) विराट नगर में सेना भेज उनको पकड़ाने का यत्न किया। (७) जुए की शर्त के अनुसार वन से लौटने पर उनको राज्य वापस नहीं किया। (८) जुए के उपरान्त द्रौपदी को भरी सभा में नग्न करने का यत्न किया और पाँचों भाइयों के सम्मुख उसका भारी अपमान किया। (९) धृतराष्ट्र गांधारी भीष्म इत्यादि घर के पुरखाओं के वचन को न मानकर अनादर किया। कृष्ण व्यास द्वैपायन नारद विदुर इत्यादि विद्वानों की राय भी नहीं मानी।

इस पर युद्ध हुआ और कृष्ण की सम्मति से युद्ध जीतने के लिए युद्ध के कुछ एक नियमों को भंग भी हुआ। मृत्यु के समय दुर्योधन का यम नियम भंग करने का महापाप मानना उसकी बुद्धि के विकृत होने को ही प्रकट करता है।

तमुद्यतास्त्रं बलाह केशवो विनयान्वितः ।
बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद् बलवद्बली ॥११॥

दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर भयंकर आर्तनाद करते हुए बलराम ने भीमसेन से कहा तुमको धिक्कार है। तुमने इस धर्म-युद्ध में नाभि से नीचे प्रहार किया है। यह गदा-युद्ध में कभी नहीं देखा गया। इस युद्ध के ये नियम हैं कि नाभि से नीचे आघात नहीं करना चाहिए। यह तुमने स्वेच्छाचार किया है।

इतना कहते-कहते बलराम को तो क्रोध बढ़ आया और उनकी आँखे लाल हो गईं।

इस समय बलराम ने कृष्ण से कहा कि दुर्योधन बली था वह मेरे समान बलशाली था। उसको भीमसेन न को दुर्बल था अन्याय से मारा है। इसने भीमसेन ने न केवल दुर्योधन को मारा है प्रत्युत हम सब देखने वालों का भी अपमान किया है।

इतना कहते-कहते उन्होंने अपना हलायुध उठाया और भीम की हत्या करने के लिए लपके।

परन्तु बलराम को इस प्रकार अपनी ओर आते देख भी भीम डरा नहीं न ही उसने अपनी भूल स्वीकार की। कृष्ण ने भाई को दोनों हाथों से पकड़ लिया और आगे नहीं बढ़ने दिया।

तत्पश्चात् कृष्ण ने भाई का समाधान करने के लिए कहा यह ठीक है कि भीम ने अधर्म किया है परन्तु अधर्मी को मारने के लिए ही नियम भंग किया है।

इस दुर्योधन ने ही वीर अभिमन्यु को जो कुरु और वृष्णि दोनों वंशों का रत्न था धोखे से मारने के लिए कहा था। इसी की आज्ञा से कर्ण ने उसके धनुष को पीछे से आकर काट दिया और फिर शस्त्र-विहीन कर मार डाला।

कृष्ण ने यह भी समझाया कि दुर्योधन कर्ण इत्यादि सब कौरव भीम को विष देकर मार डालने के प्रयत्न के अपराधी हैं। भीम की आँखों के सामने उसकी प्रिय भामी का अपमान करने के अपराधी हैं। उसको अपने भाइयों और माता सहित जीवित जला देने के प्रयत्न के अपराधी हैं।

अधर्मी को मारकर भीम ने धर्म किया है अधर्म नहीं। यदि युधिष्ठिर कपट से खेले जाने वाले द्यूत में सम्मिलित न होता तो महाभारत का युद्ध न होता। युधिष्ठिर दुर्योधन के कपटपूर्ण व्यवहार से प्रसन्न था। इस कारण इस कपटी पर विश्वास कर उससे जुआ खेलने के लिए तैयार हो जाना फिर जुआ खेलते-खेलते अपनी बुद्धि को खोकर राजपाट भाइयों एवं पत्नी को दाव पर

लगभग सब-के-सब युधिष्ठिर के पास थे। इसका भी कम उसको मिला। पूर्ण परिवार इस युद्ध में स्वाहा हो गया।

भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य का व्यवहार भी धर्म की कसौटी पर ठीक नहीं उतरेगा।

सबसे बड़ी बात यह हुई कि पूरे देश में क्षत्रिय वंश का विनाश हुआ। इससे देश में धर्म और मर्यादा का लोप हुआ। राम-रावण युद्ध में तो राक्षस एक भिन्न जाति थी और वे राक्षस भी आसुरी व्यवहार करने वाले बने तो युद्ध हुआ और आसुरी संस्कृति का मूलोच्छेदन किया गया। इस पर भी आर्य व्यवहार में भी परिवर्तन आया।

परन्तु कौरव-पाण्डव युद्ध में तो एक ही जाति और एक ही वंश के लोग परस्पर लड़ पड़े थे। दोनों पक्ष धर्म और नैतिक स्तर से गिरे हुए थे। केवल मात्रा का अन्तर था, प्रकार का नहीं। यही कारण था कि दोनों पक्षों का विनाश हुआ। सबसे बड़ी बात यह थी कि कौरव पक्ष पर किसी ब्राह्मण विद्वान् का प्रभाव नहीं पड़ा था। अतः वे किसी भी शासन को तैयार नहीं हुए।

एक बात और है कि महाभारत का युद्ध बताने में धर्म-अधर्म शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है। वहाँ धर्म के अर्थ किसी व्यापक अथवा नैतिक धर्म से नहीं। नैतिक धर्म उस कर्म को कहते हैं जो मनुष्य लोक-कल्याण के लिए और उसमें अपने कल्याण को सम्मिलित कर करता है। इसी दृष्टि से युद्ध के धर्म-अधर्म नियम-भंग करने का मूल्यांकन करना चाहिए। एक कपटी और नैतिक धर्म का उल्लंघन करने वाला अपने विरोधी के युद्ध काल के किसी नियम-भंग करने को अधर्म कह दे तो उस अधर्म को किसी नैतिक अधर्म के सम्मुख कुछ भी पलड़ा नहीं।

कृष्ण युद्ध-कालीन नियमों के भंग को वह महत्ता नहीं देते थे जो साधारण जीवन में नैतिक अधर्मों के करने को देते थे।

यही बात विचारास्पद है कि भारत युद्ध से देश को लाभ हुआ था अथवा हानि। हमने बताया है कि राम-रावण युद्ध के पश्चात् कई राक्षसी व्यवहार आर्य समुदाय में घुस आये थे इस युद्ध से भी भारी हानि हुई थी।

परन्तु हमारा दृढ़ मत है कि यदि क्षत्रियों में विद्वानों की महिमा युद्ध तैयारी के कम न होती और सत्य ज्ञान के ज्ञाताओं की महिमा देश में रहती तो युद्ध से हुई हानि की पूर्ति शीघ्र ही हो जाती।

कलियुग

भारत युद्ध के समय कलियुग का प्रारम्भ माना जाता है। कुछ विद्वान भारत युद्ध को ३१० वर्ष पूर्व हुआ मानते हैं। उनके कथनानुसार भारत युद्ध के सैंतीस वर्ष पश्चात् कलियुग का प्रारम्भ हुआ। इस गणना के अन्तर को इस प्रकार समझा जा सकता है। वे कहते हैं कि कलियुग नक्षत्रों के विचार से तो युधिष्ठिर के राज्यारोहण के समय से ही प्रारम्भ हो गया था। परन्तु कलियुग का दुष्प्रभाव कृष्ण और युधिष्ठिर की उपस्थिति के कारण प्रारम्भ नहीं हुआ। अतः कलियुग इन दोनों महानुभावों के मरने की प्रतीक्षा करता रहा। हम नक्षत्रों के आधार पर काल-गणना कर रहे हैं। अतः हमारा यही मत है कि कलियुग भारत युद्ध समाप्त होने पर प्रारम्भ हो गया था।

हमने पितृ-तर्पण इत्यादि के समय पढ़े जाने वाले संकल्प के आधार पर लिखा था कि कलियुग को ५ ६३ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

यहाँ एक अन्य प्रकार से गणना करके बताते हैं—

चालुक्य कुल के महाराज सत्याश्रय पुलकेशी द्वितीय का रविकीर्ति द्वारा संस्कृत में रचित एक शिला लेख कर्लिग का कालम्बी अर्थात् बीजापुर जिलान्तर्गत ऐहोली स्थान के मेगुटी नामक एक जैन मन्दिर में मिला है। उस पर लिखा है

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः। सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च। समासु समतीतासु शकानामपि
भूभुजाम्॥

इन श्लोकों के अर्थ करने में कुछ मतभेद हो गया है। एक मत से अर्थ यह है कि ३७३५ वर्ष कलि के व्यतीत होने पर जब शक भूभुज सम्वत् ५५६ था यह शिलालेख लिखा गया।

इससे (३७३५—५५६) = ३१७९ + १८८४ (वर्तमान) शक सम्वत् = ५ ६३ वर्ष बनते हैं। यही हमने पिछले अध्यायों में लिखा है। एक दूसरे मत से इस श्लोक का अर्थ यह है—

३ + ३ + १ ०+ ५ + ५ = ३१८७ वर्ष कलि के व्यतीत होने पर भूभुज शक के ५ ६ सम्वत् में यह शिलालेख रखा गया है।

इससे ३१ ७—५ ६ = ३१८१ + १ ८४ = ५ ६५ वर्ष कलि सम्वत।

एक तीसरा मत है ३ + ३ + १ ० + ५ कलि के व्यतीत होने पर भूभुज शक के ५५६ सम्वत् में यह शिला लेख रखा गया।

—१४

इससे ३११७ — २५६=३ ८१+१८८४ = ४६६५ वर्ष कलि सम्वत् है।

कुछ भी हो यह बात निर्विवाद है कि कलि सम्वत् अर्थात् भारत युद्ध हुए आज ५ ११ १५ वर्ष हुए हैं।

इस काल का इतिहास भी पुराणों में अधिक स्पष्ट रूप में मिलता है। यद्यपि इसमें भी उसी प्राचीन शैली का ही अवलम्बन किया गया है अर्थात् विस्तृत वृत्तान्त केवल युग प्रवर्तक राजाओं का ही आया है। तथापि वंशावलि अधिक नियमबद्ध और राज्यकाल के साथ मिलती है।

मगध राजवंशों का ही यहाँ उल्लेख करते हैं। युधिष्ठिर के वंश में उ मगध में निम्न वंश चले—

(१) बृहद्रथ वंश २२ राजा हुए १ १ *

			सम्वत् १ १ १
(२) प्रद्योत वंश	५	१३६	१ १ ११३६
(३) शिशुनाग वंश	१	३६२	११३६ १५ १
(४) महापद्मानन्दवंश	२ + ८	१	१५ १ १५ १
(५) मौर्य वंश	१	१३७	१६ १ १७१८
(६) शुंग वंश	११	११२	१७१८ १८५
(७) कण्व वंश	४ ,,	४५	१८५०-१८६५
(८) आन्ध्र वंश	३	४५६	१८६५ २३११
(९) आभीर वंश	७ ,,	—	—

अर्थात् आन्ध्र वंश की समाप्ति तक १ २ राजा हुए। कुल राज्य काल २३११ वर्ष हुआ।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि भिन्न भिन्न पुराणों में थोड़ा-थोड़ा वर्ष का अन्तर रहता है परन्तु पाठों के ठीक रूप में पढ़ने से निष्कर्ष यह निकलता है कि महापद्मानन्द का अभिषेक काल १५ कलि सम्वत् है। इससे चन्द्रगुप्त मौर्य के अभिषेक का समय १६ १ कलि सम्वत् बनता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक ईसा पूर्व १५०१ वर्ष के आसपास हुआ था।

महाराज परीक्षित तथा सर्प-यज्ञ

परीक्षित अर्जुन का पौत्र अभिमन्यु का पुत्र था। अभिमन्यु भारत

* राज्य-काल।

युद्ध में मारा गया था। उस समय परीक्षित माँ के गर्भ में था। इसका जन्म युधिष्ठिर के राज्यारोहण के कुछ मास पश्चात् हुआ था।

कुछ लोग युधिष्ठिर के राज्यारोहण काल को कलि सम्वत् का प्रारम्भ समझते हैं। युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष राज्य किया था। कृष्ण के देहावसान का समाचार पा युधिष्ठिर परीक्षित को राज्य सौंप अपने भाईयों और द्रौपदी सहित देवलोक में निवास के लिए चल पड़े। महाभारत के लिखने वाले महर्षि का कथन है कि वे मार्ग में ही रह गये। वे देवलोक नहीं पहुँच सके।

परीक्षित ने २४ वर्ष राज्य किया। राजा परीक्षित की मृत्यु इस काल के लोगों पर प्रकाश डालती है।

महाराज वन में आखेट करते हुए थके और प्यासे जल ढूँढते हुए, शमिक मुनि के आश्रम में पहुँचे। मुनि मौनव्रत लिये हुए थे। राजा ने आते ही व्याकुलता में कहा 'मुनिश्रेष्ठ! मैं अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित हूँ। आपने कोई घायल मृग इधर से आते देखा है। मुनि मौन रहे तो राजा ने समझा कि जान बूझकर वह उत्तर नहीं दे रहा। अतः समीप एक मरा सर्प देख उसको धनुष पर उठा मुनि के गले में डाल वह चला गया। मुनि ने भला-बुरा कुछ भी नहीं कहा।

मुनि के एक शृंगी नाम का पुत्र था। वह महान् तेजस्वी परन्तु क्रोधी युवा था। उसने पिता से उक्त घटना का वृत्तान्त सुना तो उसने राजा को मार डालने का षड्यंत्र किया। उसके मन में आया कि ऐसे अभिमानी मूर्ख राजा के जीवित रहने से हित नहीं हो सकता।

शमिक मुनि नागों का गुरु था। शृंगी ने नागों से कहा और यह निश्चय हो गया कि राजा की हत्या कर दी जाय। तक्षक नाग के नाग ने यह कार्य अपने सिर ले लिया। यह षड्यंत्र राजा परीक्षित को मालूम हो गया। अतः इससे बचने के लिए राजा ने अपने चारों ओर सैनिक एवं सेवक रखने आरम्भ कर दिये।

एक दिन कुछ नाग ऋषियों का भेष बना महाराज को फल-फूल भेंट करने के लिए पहुँच गए। ऋषियों का अनादर न करने के लिए तथा उनका आशीर्वाद पाने के लिए राजा ने उनको भीतर बुला लिया। ऋषियों ने फल-पुष्प भेंट किये। आशीर्वाद दिया और ठीक उसी समय जब महाराज परीक्षित भेंट ले रहे थे तक्षक ने जो उन ऋषियों में एक था अपना छद्म निकाल महाराज की हत्या कर दी।

इस कथा में एक वृत्तांत यह भी है कि जब तक्षक ऋषि के भेष में

परीक्षित की हत्या करने जा रहा था तब एक कश्यप नाम का ब्राह्मण महाराज को जिलाने के लिए चल पड़ा। उसने भी सुन रखा था कि तक्षक नाग महाराज को मारने का षड्यन्त्र कर रहा है। वह संजीवनी विद्या का ज्ञाता था। वह पुन: महाराज को जीवित कर देने के विचार से चल पड़ा। नागराज तक्षक ने उस ब्राह्मण से पूछा कि वह ऐसा करने क्यों जा रहा है ? ऐसे अभिमानी राजा का नाश होना ही चाहिए। ब्राह्मण देवता बोले मैं बहुत भारी पुरस्कार लेने की आशा से जा रहा हूँ।

तक्षक ने कह दिया तुम उससे भी अधिक पुरस्कार मुझसे ले सकते हो।

ब्राह्मण वह धन पा सन्तुष्ट हो घर लौट गया। इस धन के लोभ में कश्यप ने राजा को मरने दिया।

महाराज परीक्षित के पश्चात् उसका पुत्र जनमेजय राजगद्दी पर बैठा। जब उसने राज्य-कार्य सँभाल लिया तो अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने की मन में ठान ली। इसी युग में उपाध्याय वेद के एक शिष्य उत्तङ्क से गुरु-दक्षिणा के रूप में उपाध्याय की पत्नी ने पौष्य की स्त्री के कुण्डल माँग लिए। जब वह कुण्डल माँगकर ला रहा था तब तक्षक नागराज ने उन कुण्डलों को छीन लेना चाहा। उत्तङ्क उन कुण्डलों को लाने में सफल तो हो गया परन्तु तक्षक को मरवाने का संकल्प लेकर वह जनमेजय के पास पहुँचा और महाराज को अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये तैयार कर लिया। राजा ने अपने सैनिकों को भेज नागों को पकड़ना और उनको जीवित अग्नि में दग्ध करना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार एक महान् हत्या-काण्ड आरम्भ हो गया। जनमेजय का यह निश्चय था कि वह नागों से अपने राज्य को रिक्त कर देगा। यह हत्या-काण्ड सर्प-यज्ञ के नाम से विख्यात हुआ। जब लाखों नाग मारे जा चुके तो आस्तीक मुनि ने यज्ञ में पहुँच यज्ञ बन्द करने का आग्रह करना आरम्भ कर दिया। राजा नहीं माना तो उसने भूखे रहकर जीवन त्याग देने की धमकी दी।

इस यज्ञ के करने की सम्मति देने वालों में और आस्तीक में विवाद हुआ। न्याय की दृष्टि से वे आस्तीक के कथन का उत्तर नहीं दे सके। निर्दोषों की हत्या हो रही थी। अन्त में ऋषियों ने भी राजा को यज्ञ बन्द करने की सम्मति दी और यज्ञ समाप्त हो गया। तक्षक नाग राज बच गया।

यह घटना लगभग कलि सम्वत् ७-८ की है।

महाभारत युद्ध के पश्चात् तो ब्राह्मणों का प्रभाव और भी कम हुआ प्रतीत होता है। ब्राह्मण भी प्राय: धनलालसा से घोर स्वार्थपर हुए थे। यही

महात्मा बुद्ध

पौराणिक प्रमाणों से यह बात सिद्ध की जा सकती है कि महात्मा बुद्ध कलि सम्वत् ११ ० के लगभग प्रचार कर रहे थे। इसका प्रमाण बहुत सरल

कारण था कि राजा परीक्षित को यह साहस हुआ कि वह एक ऋषि के गले में मरा साँप डालकर चला जाए।

क्षत्रियों में अभिमान की मात्रा भी अधिक हो गई थी। अन्यथा एक क्षत्रिय ऋषि की कुटिया में यह अभिमान-युक्त वचन न कहता "मैं अभिमन्यु का लड़का महाराज परीक्षित हूँ।

फिर ऋषि का लड़का राजा को मरवाने का षड्यंत्र न करता साथ ही तक्षक नागों का राजा छल-कपट से राजा को मारने न आता। वह राजा को द्वंद्व-युद्ध में ललकार सकता था। सब से बुरी बात एक ब्राह्मण को धन लेकर कल्याण के कार्य से पीछे हट जाना भारतीय ब्राह्मण-परम्परा नहीं।

जनमेजय ने तो पिता की मृत्यु पर क्रोध किया हुआ था परन्तु एक ब्राह्मण की प्रेरणा से ही इस विराट हत्याकाण्ड का आयोजन होना भी एक महान् पाप हो गया।

योरुप के द्वितीय युद्ध से पहले और युद्ध काल में हिटलर का यहूदियों को मरवाने का आयोजन भी इस सर्प-यज्ञ की तुलना रखता है। दोनों एक समान पाप थे। किसी भी देश अथवा जाति में ब्राह्मण वर्ग के पतन से ही देश और राष्ट्र के पतन का सूत्रपात होता है। भारत में भी यही हुआ। ब्राह्मणों का पतन तो महाभारत के युद्ध से पहले ही आरम्भ हो चुका था। यदि उस समय देश में सच्चे ब्राह्मण होते तो कदाचित् वह युद्ध होता ही नहीं। कदाचित् युधिष्ठिर धर्म मानकर मूर्खता करता ही नहीं जो उसने जुआ खेलकर तथा उसमें राज्य भाइयों और पत्नी को हारने से की थी। कदाचित् युधिष्ठिर जुए में हारे वस्तुओं को हारा हुआ मानता ही नहीं कदाचित् वह दुर्योधन और धृतराष्ट्र के अपने साथ पूर्व के इतिहास को स्मरण कर उसका विश्वास करता ही नहीं। वह वारणावत की घटना के पश्चात् उनके घर पग धरता ही नहीं।

परन्तु यह सब कुछ हुआ। युधिष्ठिर के पास कोई नीतिमान ब्राह्मण था ही नहीं। यदि द्रोण युधिष्ठिर इत्यादि पाण्डवों को सम्मति देने वाला नहीं होता तो विजय दुर्योधन की होती और जो कुछ भारत का धर्म संस्कृति और परम्पराएं बच सकीं वे भी न बचतीं।

है। महात्मा बुद्ध के शिष्यों के कथनों से यह पता चलता है कि बुद्ध मगध की राजधानी राजगृह में गये जब वहाँ बिम्बिसार राजा राज्य करता था।

बिम्बिसार का संस्कृत नाम विधिसार है। उन दिनों जनता की भाषा संस्कृत भाषा से दूर हो चुकी थी और संस्कृत भाषा की अपभ्रंश पाली के शब्दों का ही बौद्ध शिष्यों ने प्रयोग किया है। महात्मा बुद्ध के शिष्यों का संस्कृत के विद्वानों से मेल-जोल नहीं था। वे प्रायः विद्वानों की भाषा जानते ही नहीं थे। उन्होंने महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाएं भी पाली भाषा में लिखी हैं।

अतः विधिसार को बिम्बसार लिखा गया। इसका दूसरा नाम बिम्ब सेन भी था। यह राजा शिशुनागवंश का पाँचवा महीपाली था। यह हम ऊपर लिख चुके हैं कि मगध में बृहद्रथवंश ने कलि सम्वत् १ १ तक राज्य किया। उसके पश्चात् प्रद्योतवंश ने १३८ वर्ष राज्य किया तथा प्रद्योतवंश के पश्चात् शिशुनाग ने ४ वर्ष राज्य किया। शिशुनाग के पुत्र काकवर्ण ने ३६ वर्ष। इसके उपरान्त क्षेमधर्मा ने ३ वर्ष। क्षत्रौज ने ४ वर्ष और विधिसार (बिम्बिसार) ३८ वर्ष।

इस प्रकार बिम्बसार का राजत्व कलि सम्वत् १२ २ ११२१ है अर्थात् महात्मा बुद्ध ने कलि सम्वत् ११ के लगभग प्रचार किया था। यह बनता है ईसा पूर्व सन् १ के लगभग।

योरपियन लेखकों ने महात्मा बुद्ध का काल ईसा पूर्व ५ ७ वर्ष कहा है। बहुत बड़ा अन्तर है दोनों में। इसमें कारण है कि योरपियन लेखक भारतीय ग्रंथों को प्रमाण न मानकर विदेशीय यात्रियों को प्रमाण मानते रहे हैं। हम पहले लिख चुके हैं कि उनके कथन अधूरे ज्ञान के सूचक हैं। इस विषय में ह्वेनसांग के ज्ञान की अप्रामाणिकता तो स्पष्ट ही है। इस लेखक के यात्रा विवरण में एक पाठ का अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार है—

According to the general traditions Tathagata, was eighty years ld when, on thel 5th day of the second half of the month of Vaisakha he entered Nirvana. This corresponds to the 15th day of the 3rd month with us. But Sarvastivadins (सर्वास्तिवादी) say that he died on the 8th day of the second half of the month of Kart ka, which is the same as the 8th day of 9th month with us The different schools calculat variously from the death of Buddha. Some say it is 1200 years and more since then. Others say 1300 and more Others say 15 0 and more. Others say 900 years have passed but not 1000 years since the Nirvana.

अर्थात्—साधारण परम्परा के अनुसार तथागत निर्वाण प्राप्ति के समय ८ वर्ष की आयु के थे और उनका देहान्त वैशाख पूर्णिमा के दिन हुआ था। यह हमारे वर्ष के अनुसार अमावस तीसरे मास में है परन्तु सर्वास्तिवादियों के कथनानुसार उनका देहान्त कार्तिक की शुक्ल पक्ष की अष्टमी में हुआ है। यह हमारे वर्ष के ९वें मास की शुक्ल पक्ष आठवीं होती है। महात्मा बुद्ध का मृत्युवर्ष भिन्न-भिन्न विचार के लोग भिन्न-भिन्न बताते हैं। कोई कहते हैं कि आज से १२ वर्ष पहले था। कुछ का कथन है ११ वर्ष था। फिर कई कहते हैं कि ११ वर्ष है। कुछ यह भी कहते हैं कि यह ९ वर्ष से कम नहीं और १ वर्ष से अधिक नहीं।

हमारा कथन है कि ऐसे लेखकों की बातों पर जो कि देश के अनपढ़ लोगों से इधर-उधर की बातें सुनकर लिख गये हैं कितना विश्वास किया जा सकता है? योरुपियन लेखकों ने यही किया है। उन्होंने भारतीय इतिहास के स्रोतों को देखा ही नहीं और कह दिया कि यहां के लोग इतिहास लिखना जानते ही नहीं थे।

जितना सुदृढ़ प्रमाण पुराणों से बुद्ध के जन्म का मिलता है इतना अच्छा कहीं अन्यत्र मिलता ही नहीं।

नैपाल की तराई में शाक्य-वंश के क्षत्रियों का राज्य था। वहां के एक राजा शुद्धोधन के घर राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म हुआ। यह राजकुमार बाल्यकाल से ही बहुत सोच-विचार में लीन रहता था। उसकी निवृत्ति की ओर रुचि देख राजा ने १६ वर्ष की आयु में उसका यशोधरा नाम की सुन्दर लड़की से विवाह कर दिया। सिद्धार्थ संसार में जरा रोग और मृत्यु देखकर बहुत घबराता था और एक दिन इनसे मुक्ति पाने का मार्ग ढूंढने के लिए वह घर से भाग गया। इस समय उसकी अवस्था १ वर्ष के लगभग थी।

सिद्धार्थ तत्कालीन ब्राह्मण विद्वानों से शिक्षा ग्रहण करता रहा और वहां शान्ति न पा यह गया में जा कठोर तप करने लगा। ६ वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् वह इस मार्ग को भी व्यर्थ मान छोड़कर एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ विचार करने लगा तो उसको बोध हुआ और वह अपने को बुद्ध कहने लगा। तत्पश्चात् वह अपने ज्ञान का प्रचार करने लगा। वह देश-भर में घूम घूमकर ८ वर्ष की आयु तक प्रचार करता रहा और उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिला के कुशीनगर में उसका देहान्त हो गया।

बौद्ध मत की दो शाखाएं हैं। हीनयान और महायान। हीनयान तो वैदिक धर्म का निवृत्ति मार्ग है। यह वही मार्ग है जो सनत्कुमार सनन्दन

कपिलादि ऋषि-मुनियों ने स्वीकार किया था। महात्मा बुद्ध उन ऋषियों के समान विद्वान् नहीं थे इस पर भी वे तपस्वी जीव थे। महात्मा बुद्ध ने जन-साधारण में उनकी भाषा में ही अपने विचारों का प्रचार किया।

इस त्याग और तपस्या के मार्ग से शक्ति उत्पन्न होती है परन्तु इससे ज्ञान प्राप्ति नहीं होती। ज्ञान के अभाव में शक्ति की कार्य-दिशा अशुद्ध हो जाती है। यही बुद्ध धर्म के हीनयान में हुआ।

इस धर्म का सबसे बड़ा शिष्य मौर्यवंशीय अशोक देवानाम् प्रिय हुआ। अपने पूर्व जीवन काल में वह एक अति क्रूर तथा नृशंस राजा रहा था परन्तु पीछे उसने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर अहिंसावाद को राज्य-कार्य में भी चलाया। इस नीति का अति भयंकर परिणाम हुआ। देश खण्ड-खण्ड हो गया। विदेशियों के आक्रमण होने आरम्भ हो गए और देश में उन आक्रमणों के विरोध की बुद्धि और सामर्थ्य नहीं रही।

बौद्धधर्म आरम्भ में तो बहुत निम्न कोटि के पढ़े लिखों में फला इसी कारण महात्मा बुद्ध और बौद्धधर्म का उल्लेख भारतीय ग्रन्थों में बहुत कम मिलता है। जब अशोक ने इस धर्म को राज्य-धर्म बनाया तब विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इसके साथ ही विदेशीय आक्रमणों ने तथा देश के विद्वानों ने इस धर्म का खण्डन आरम्भ किया। राजनीति में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई। इस प्रतिक्रिया का परिणाम ही शुंग परिवार के पुष्यमित्र का राज्यारोहण है।

पीछे गुप्त परिवार के आ जाने पर तो बौद्धधर्म के विरुद्ध घोर अभियान आरम्भ हुआ और वैदिकधर्म का पुनरुत्थान आरम्भ हुआ। यह हिन्दू वैष्णव मत है।

इस समय बौद्धधर्म के कुछ अनुयायियों ने वेद-शास्त्र-ग्रन्थ पढ़े और बौद्धमत को सांख्य सिद्धान्त पर आधारित करने का यत्न किया। साथ ही महात्मा बुद्ध को अवतार घोषित करने का यत्न किया। यह बौद्ध मत की महायान शाखा कहलाती है।

जब ह्यूनसांग भारत में आया तो महायान का माध्यम से पुनः बौद्ध-धर्म का प्रचार आरम्भ हो चुका था। परन्तु यह कुछ अधिक काल तक चल नहीं सका। इस महायान का खण्डन या दूसरे शब्दों में इस महायान को वैदिक-धर्म में विलय कर स्वामी शंकराचार्य ने नवीन वेदान्त मत को प्रतिपादित किया।

इसके कुछ ही पश्चात् देश पर मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हो गए।

उपसंहार

इस पुस्तक में हमने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि भारतवर्ष में इतिहास की परम्परा बहुत प्राचीन है। यदि उस पूर्ण प्रयास को जो वर्तमान इतिहास लेखक भारतवर्ष और अन्य देशों के इतिहास की खोज करने वाले करते हैं एक अंशमात्र भी भारतवर्ष में उपलब्ध ग्रन्थों में से खोज में लगाया जाता तो आज भारतवर्ष का इतिहास अन्य सब देशों के इतिहास से कहीं अधिक विदित हो चुका होता तथा मानव-ज्ञान की विशेष वृद्धि हो चुकी होती।

भारतवर्ष पृथ्वी पर की सब सभ्यताओं का जन्मदाता है। यहाँ की सभ्यता न केवल प्राचीनतम है प्रत्युत यह सबकी जननी भी है। इस पर भी इतिहास लिखने वालों का उन स्रोतों की ओर ध्यान ही नहीं गया जिनका अपने पूर्व अध्यायों में हमने संकेत किया है।

इस ओर ध्यान न जाने में कारण है। यह्लामी लोग समाघोषों (Slogans) के पीछे-पीछे चलते हैं। जो लोग जनसाधारण को अपने पीछे लगाना चाहते हैं उनको कुछ समाघोष तैयार करने पड़ते हैं। ये समाघोष सीधे मन पर संस्कार जमाने का यत्न करते हैं। जहाँ ज्ञान की परख मन साधारण की बात ही हो जाती है वहाँ समाघोष अपना महान् प्रभाव दिखाते हैं।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में यौरपीय राज्यों ने पूर्वी देशों को विजय करने का विचार किया तो अपना ऐसा करने के अधिकार को सिद्ध करने के लिए उनको पूर्वी देशों को असभ्य अशिक्षित और निम्न कोटि के मानवों से बसे हुए प्रकट करना आवश्यक था। ऐसा करने के लिए उन्होंने अपनी जनता के सम्मुख उन सब क्रूर कार्यों को उचित प्रकट करने के लिये जो उन्होंने पूर्वी देशों में किये कुछ समाघोष प्रचारित किये। दूसरी ओर पूर्वी देशों के रहने वालों को यह बताने के लिए भी कि वे शासक लोग इन पूर्वी देशों के रहने वालों से अधिक पढ़े-लिखे सभ्य और ज्ञानवान् हैं षड्यंत्र किया और इस लिए भी उन्होंने कुछ समाघोष प्रचलित किये।

इन समाघोषों में कुछ एक इस प्रकार हैं—

(१) यह प्राग्‌ऐतिहासिक है। इसका अर्थ है मनुष्यों में लिखने-पढ़ने की बुद्धि आने से पहिले की वार्ता जो कि प्रामाणिक नहीं हो सकती।

यह शब्द उन देशों में तो प्रयुक्त हो सकता था जहाँ के प्राचीन निवासी किसी-न-किसी कारण से सर्वथा अनपढ़ एवं असभ्य थे। हमारा तो मत ऐसा है कि मानव-उत्पत्ति एक ही स्थान पर हुई और वहाँ से पूर्ण पृथ्वी पर फैली। यदि आदि पुरुष विद्वान् था तो सब देशों के लोग भी परम्परागत ज्ञान के स्वामी होने चाहिएँ। परन्तु ऐसे कारण हो सकते हैं जिनसे ज्ञान लोप भी हो जाता है। राजनीतिक उथल-पुथल प्लावन असुर-राज्य भूकम्प अथवा मनुष्यों में प्रमाद इन कारणों से भी ज्ञान का लोप होता देखा जाता है। हमारा मत है कि उक्त कारणों से कई देशों का सम्बन्ध अपने ज्ञान-स्रोत से टूटा और उन लोगों मे प्रमाद आया तो ज्ञान-विहीन हो गये। ऐसे देशों में काल दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्राग्‌ऐतिहासिक और ऐतिहासिक। सम्भव है कि कभी उन देशों में भी ऐतिहासिक परम्परा रही हो। पश्चात् वह परम्परा उक्त कारणों से टूटी हो और एक काल अज्ञान का आया हो और तदनन्तर पुन ज्ञान का प्रकाश हुआ हो।

परन्तु भारतवर्ष में जैसा कि हम पूर्व के परिच्छेदों में कह चुके हैं कोई भी ऐसा काल नहीं आया जब यहाँ के ज्ञान-विज्ञान की परम्परा टूटी हो। हम अभी तक प्राचीनतम ग्रन्थ के उत्तराधिकारी हैं प्राचीनतम भाषा के ज्ञाता हैं प्राचीनतम धर्म एवं संस्कृति के पालन-कर्ता हैं। सबसे पुराना धर्मशास्त्र हम रखते हैं और जैसा कि हम लिख चुके हैं कि हमारी इतिहास की परम्परा अक्षुण्ण है।

अत भारतवर्ष मे किसी भी काल को प्राग्‌ऐतिहासिक काल कहना अपनी अल्पज्ञता को प्रकट करना है। यहाँ इतिहास लिखने की शैली उससे भिन्न थी जो आज प्रचलित है। कोई यह भले ही कहे कि वह शैली इतनी अच्छी नहीं थी जितनी आज की शैली है। परन्तु यह कहना तो अनर्थ होगा कि भारत वर्ष मे कोई ऐसा काल रहा है जब इतिहास लिखा नहीं जाता था पढ़ा नहीं जाता था अथवा लोग लिखने और पढ़ने के गुणों से अनभिज्ञ थे।

(२) यह 'माईथोलोजी (काल्पनिक गाथा) है।

हम दूसरे देशों मे इस प्रकार के कथानकों के विषय में कुछ नहीं कह सकते। परन्तु भारतवर्ष में जिन गाथाओं को काल्पनिक कहा जाता है वे वास्तव में ऐतिहासिक तथ्य रखती हैं। केवल उन पर साहित्यिक अथवा आलंकारिक आवरण चढ़ा है। यहाँ इतिहास को एक अत्यावश्यक ज्ञान का विषय समझा

जाता था जो जनसाधारण के जीवन से सीधा सम्बन्ध रखता था। प्रत्येक व्यक्ति को इतिहास की मुख्य-मुख्य घटनाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। अतः उन घटनाओं को रोचक और समझने योग्य रूप में बिना ऐतिहासिक तथ्य को विलुप्त किये लिखना अत्यावश्यक माना गया था। इसी बात को इतिहास का परम लक्ष्य अथवा इसकी चरम उपयोगिता मानी गई। इतिहास जनसाधारण की वस्तु बनाने के लिए इसको वह रूप दिया गया है जो पुराणादि ग्रन्थों में अंकित है।

ये कहानियाँ असत्य नहीं, अतः ये मिथिकल भी नहीं और इनको इतिहास के रूप में मानना उचित है। केवल इन कथाओं को सुनाने वालों का पर विवेचना लिखने वालों का यह काम है कि वे श्रोता गणों अथवा पाठकों के ज्ञान स्तर को देखकर इनके साहित्यिक अंश और ऐतिहासिक अंश का विश्लेषण करते रहें। भारतवर्ष में यह प्रथा प्रचलित थी। केवल मुसलमानों और अंग्रेजों के काल में यह परम्परा टूटी और आज पाश्चात्य विद्वानों को इनको माइथोलौजी कहने का साहस हुआ। इस स्वराज्य काल में तो पाश्चात्यों के कथन को पक्षपातपूर्ण बताने का अवसर आया था परन्तु वर्तमान स्वराज्य सरकार उन महापुरुषों के हाथों में चली गई है जो प्रायः पाश्चात्यों के चेले हैं और उनके अज्ञान पक्षपात और उनकी मूर्खता के पूर्णतः उत्तराधिकारी हैं।

यदि इन अज्ञानियों के कुकृत्यों के कारण देश पुनः दासता के गर्त में न गया तो निःसन्देह भारत की उर्वरा भूमि में ऐसे विद्वान् पुरुषवत् उत्पन्न होंगे जो सत्य-असत्य का निर्णय करके दिखा देंगे।

(१) विकासवाद के यह विरुद्ध है।

यह समालोच मूर्खों का चलाया हुआ है अथवा मूर्ख बनाने के लिए चलाया गया है कहना कठिन है। हमने विकासवाद के विषय में संक्षेप से अपना मत पिछले एक परिच्छेद में दिया है। विकासवाद एक सिद्ध सिद्धान्त नहीं है। इसके सिद्ध होने के विपरीत इसके विरोध में प्रमाण मिलते हैं। भाषा का ज्ञान इसके विरुद्ध एक प्रबल प्रमाण है। उत्तरोत्तर प्राचीन भाषाओं की विकसित और उन्नत अवस्था इस बात की सूचक है कि मनुष्य में विकास नहीं प्रत्युत ह्रास हो रहा है। तथाकथित भौतिक-उन्नति मानव-उन्नति की प्रतीक नहीं प्रत्युत यह तो केवल मात्र आवश्यकताओं की वृद्धि की सूचक है। आवश्यकताओं की वृद्धि मानव-विकास के साथ सम्बन्ध नहीं रखती। आवश्यकताएँ शरीर और मन तथा आत्मा की दुर्बलतावस्था की द्योतक नहीं। इस विषय में भी हम लिख चुके हैं। अतः अमुक बात विकासवाद के विरुद्ध है

इसके अर्थ कुछ नहीं। अभी तो विज्ञानवाद को ही अपना अस्तित्व स्थापित करने की आवश्यकता है।

(४) यह साम्प्रदायिकता है।

यह एक अन्य समालोच (Slogan) आजकल चल रहा है। यदि कोई यह सिद्ध करने का यत्न करे कि वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है तो तुरन्त उसको साम्प्रदायिकता कहकर अमान्य करने का यत्न किया जाता है। इसमें हमारा मत है कि साम्प्रदायिकता तो मनुष्य का स्वभाव है। आखिर साम्प्रदायिकता किसको कहते हैं? जब किसी एक बात को बहुत से लोग सत्य मानने वाले हो जायें तो वह साम्प्रदायिक ही होगा।

उदाहरण के रूप में ईश्वर नहीं है। प्रकृति ही चेतना का रूप ग्रहण करती है और प्राणी की मृत्यु के समय प्रकृति में विलुप्त हो जाती है। यह एक विचार है। जब इसके मानने वाले बहुत से लोग हो जायेंगे तो यह जन-समूह सम्प्रदाय कहलायेगा और इस विषय पर की गई बात साम्प्रदायिक होगी।

जब तक मनुष्य में विचार-शक्ति रहेगी ऐसे सम्प्रदाय बनते तथा बिगड़ते रहेंगे और उनकी (साम्प्रदायिक) बातें होती रहेंगी।

अतः सम्प्रदाय बनाना अथवा किसी सम्प्रदाय में रहना और उस सम्प्रदाय की बात करना विचारशील मानवों का धर्म है। यह पाप नहीं है। यह वार्तालाप अमान्य नहीं हो सकता। साम्प्रदायिकता कहकर किसी मत का कथन उसका विवेचन अथवा उसका प्रचार किसी भी प्रकार अमान्य नहीं हो सकता। यह कोई बुरी बात भी नहीं। जो बुरा है वह किसी भी विचार को बल-छल तथा लोभ से प्रचलित कराना है। यह तानाशाही और ठगी अमान्य है। साम्प्रदायिकता अमान्य नहीं। विचार विचार करने से ही प्रसारित होते हैं और होने चाहियें।

(५) ऐसा दिखाई नहीं देता। इस कारण यह सत्य नहीं।

यह भ्रममूलक समालोच भी दूसरों को धोखा देने के लिए कहा जाता है। उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायगी। कोई विद्वान् रूस के विषय में वहाँ से आये लोगों के कथनानुसार लिखता है। उससे कोई यह नहीं कह सकता कि चूँकि उसने रूस देखा नहीं इससे उसकी बात अमान्य है। जिन्होंने देखा है उनके कथन का प्रमाण मानकर ही इस लेखक को सत्य मानना होगा। इसी प्रकार कोई स्वयं अशोक के काल में उपस्थित न होता हुआ भी उसका अशोक का वर्णन मानने योग्य हो सकता है। इसको अप्राप्त प्रमाण अथवा शब्द प्रमाण कहते हैं।

सकता है। इसी प्रकार औरङ्गजेब का राज्य हिन्दुओं के लिए हितकर सिद्ध हुआ अथवा अहितकर इसमें भी घटनाओं का तारतम्य दो ढंग से लिखा जा सकता है।

कोई व्यक्ति यह सिद्ध कर सकता है कि मुगल साम्राज्य का विनाश औरङ्गजेब की नीति से हुआ अथवा शिवाजी के धनवान युद्ध अभियान से। इस प्रकार दृष्टिकोण बदलने से इतिहास की कुछ घटनाएँ आवश्यक हो जाती हैं और कुछ अनावश्यक। इसी प्रकार सिकन्दर के आक्रमण का कुछ भी उल्लेख पुराणों में नहीं मिलता। यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य का वर्णन तो आता है। विदेशियों ने सिकन्दर के आक्रमण पर पुस्तकें लिख डाली हैं।

अभिप्राय यह है कि आधुनिक इतिहास पर भी लिखने के लिए बहुत कुछ है परन्तु हमने उसको अपनी पुस्तक के अर्न्तगत न समझ उस पर कुछ लिखा नहीं।

सारांश में हमने यह निश्चय किया है कि (१) मानव इतिहास का आरम्भ तब से माना जाता है जब से प्रथम मनुष्य इस सृष्टि पर बना। वर्तमान लेखकों से भिन्न भारतीय परम्परा यह है कि पहला ही मनुष्य जिसका इस पृथ्वी पर प्रादुर्भाव हुआ वह अति विद्वान् अति बुद्धिशील और कार्यकुशल था। सब भारतीय पुस्तकों में ऐसा ही माना जाता है। (२) सृष्टि की अथवा मनुष्य की इस पृथ्वी पर आयु नक्षत्रों की गति से प्रतीत की गई है। भारतीय परम्परा से यह १९ २११ ९३ वर्ष है।

(३) आदि युग वर्तमान चतुर्युगी से पहले मानना चाहिए।

(४) चन्द्रवंशियों का नैतिक स्तर सूर्यवंशियों से सदा नीचा रहा है।

(५) दैवी और आसुरी प्रवृत्ति के मनुष्य आदि सृष्टि से चले आते हैं। वास्तविक इतिहास दैवी प्रकृति वालों की आसुरी प्रवृत्ति वालों पर विजयों से निर्माण किया है।

(६) महाभारत युद्ध से पहले की सब वंशावलियां वास्तव में नामावलियां हैं। भारत युद्ध के पश्चात् की वंशावलियां प्रायः पूर्ण हैं अथवा दो-तीन पुराणों से देखकर ठीक की जा सकती हैं।

(७) भारत युद्ध के पश्चात् की पौराणिक गणना के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का काल ईसा पूर्व १५४२ वर्ष बनता है। योरुपियन ढंग से ईसा पूर्व ३०२ वर्ष बनता है।

(८) भारत युद्ध से पहले समय-समय पर भारतवर्ष में चक्रवर्ती महाराजा होते रहे हैं। इन चक्रवर्ती महाराजाओं का प्रभाव-क्षेत्र पूर्ण यूरेशिया

अफ्रीका तथा हिन्दसागर के द्वीप रहा है।

(९) भारत युद्ध के पश्चात् तो अश्वमेध यज्ञ बहुत कम हुए हैं। जो हुए भी उनका प्रभाव क्षेत्र भारत के भी एक अंश मात्र में ही रहा है। राजसूय यज्ञ तो कोई भी महाराज कर नहीं पाया।

(१) भारत युद्ध के पहले तो समय-समय पर ऋषि-महर्षि उत्पन्न होते रहे हैं। भारत युद्ध के पश्चात् ऋषियों की परम्परा लुप्त हो गई। अर्थात् वेद में मार्मिक तत्त्वों को बताने वाले नहीं रहे।

(११) बौद्ध धर्म का प्रचार अशोक काल तक जनसाधारण तक ही रहा था। सम्राट् अशोक का बौद्धधर्म को राज्य-धर्म बनाने से ब्राह्मणों का घोर पतन हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी के परिणामस्वरूप अनेक मत-मतान्तर उत्पन्न हो गए।

• • •